प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर लिमिटेड,
हीराबाग, बम्बई ४.

दूसरी बार
मार्च, १९५६

मूल्य डेढ़ रुपया

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६, केलेवाड़ी, गिरगाँव, बम्बई ४.

भूमिका

शरत्-साहित्यके प्रस्तुत भागमें जागरण, आगामी काल, आनेकी आशामें, और भला बुरा नामक चार असम्पूर्ण रचनाएँ और अक्षरणीया संग्रहीत हैं। असम्पूर्ण रचनाओंको शरत्चन्द्रने भिन्न-भिन्न पत्रिकाओंमें धारावाहिक रूपसे लिखना शुरू किया था। इनमें केवल जागरणकी लिखाई ही कुछ अधिक अग्रसर हो पाई थी। आगामी कालके २६ पृष्ठ ही लिखे गए थे। बाकी दोनोंका तो केवल आरम्भ किया गया था। ये रचनाएँ जिन पत्रिकाओंमें पहले-पहल प्रकाशित हुई थीं उनका उल्लेख यथास्थान कर दिया गया है। इनका हिन्दी अनुवाद पहली बार प्रकाशित हो रहा है।

जागरणकी पहली किश्त मासिक वसुमती, कार्तिक १३३० (ई० १९२३) में प्रकाशित हुई। यह असहयोग आन्दोलनकी पृष्ठभूमिको लेकर लिखा गया है। जमींदारकी बेटी नायिका आलेख्यका बैरिस्टर-प्रेमिक एक स्थलपर कहता है कि "असहयोग आन्दोलनमें बोल्शेविक प्रोपेगेंडा और उनसे मिली रकम ही इसके पीछे काम कर रही है।...सरकार इसके सम्बन्धमें अनेक तथ्य बटोर चुकी है।...बड़ी होशियारीकी जरूरत है, गाफिल रहनेपर जायदादसे हाथ धोना पड़ सकता है।" इसके उत्तरमें नायिकाके सुधारवादी और उदार पिताकी बातें बड़े ही मार्केकी हैं। वह कहते हैं—"प्रजाकी मनःस्थितिमें भारी परिवर्तन आ गया है। अब यह चाहे शिक्षाका परिणाम हो, चाहे युगधर्म हो और चाहे जमींदारी अत्याचारोंका नतीजा हो। जनता अब जमींदारी प्रथाका नाश चाहती है, दो-रोज पहले हो या दो-रोज बाद, जमींदारी मिटेगी जरूर। जमींदारोंको विदा होना होगा। तुम किसी भी तरह उन्हें बचा नहीं सकोगे।" यहाँ शरत्चन्द्र बंकिमचन्द्र और रवीन्द्रनाथसे काफी आगे बढ़े दिखते हैं। जमींदारी-प्रथाको खत्म करनेके बारेमें इतना स्पष्ट मत उस समय तक शायद ही किसी कथाकारने व्यक्त किया हो। नायकके बोल्शेविक होनेवाले अपप्रचारके खोखलेपनको शरत्-चन्द्रके तेरह साल बाद प्रेमचन्दने भी अपने अन्तिम ऐतिहासिक लेख 'महाजनी सभ्यता' में बड़े कड़े शब्दोंमें याद किया है।

'अरक्षणीया' शरत्चन्द्रकी बड़ी कहानियोंमें है। कुछ लोग इसे उपन्यास भी मानते हैं। यह आश्विन १३२३ में 'भारतवर्ष' मासिक पत्रिकामें प्रकाशित हुई और कार्तिक १३२३ (नवम्बर १९१६) में पुस्तकाकार छपी। अरक्षणीया, वाम्हनकी बेटी और ग्रामीण समाज इन तीनोंमें परिवारके अन्दर होनेवाले सामाजिक अत्याचार और उत्पीड़नको लिया गया है। रवीन्द्रनाथने भी 'गोरा' आदिमें इस ओर सकेत और कटाक्ष किया है, लेकिन शरत्चन्द्रने इसके विरुद्ध अपनी सारी शक्ति लगा दी है। उच्च वर्णके हिन्दू समाजके विवाहसम्बन्धी विधि-विधान आजके लिए कितने घातक हैं, हमारी जिन्दगीको वे किस प्रकार अशान्तिकर, निष्ठुर और नैतिकताविहीन बना देते हैं, इसका चित्रण 'अरक्षणीया' में बड़ी सहृदयता, कलाकारिता और सयमके साथ किया गया है। रूपहीना, पितृहीना और निर्धन नायिका ज्ञानदा अपने चरित्र और सहनशीलतासे प्रत्येक सहृदय पाठकको दहला देती है। ज्ञानदाओंकी समस्याका समाधान समाजकी और समस्याओंसे अलग नहीं है। इनके समाधानकी ओर भारतीय समाज बढ़ रहा है, यही आशाकी बात है।

'अरक्षणीया' के कई हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। वे शब्दश. अनुवाद नहीं हैं। कुछ अनुवादोंमें अनुवादकोंने कितनी ही बातें अपनी ओरसे जोड़ दी हैं, कहीं सक्षिप्त कर दिया है, कहीं छायानुवाद मात्र कर दिया है। वर्त्तमान अनुवादमें इन त्रुटियोंसे बचनेकी पूरी कोशिश की गई है।

स्वाधीनता कार्यालय, कलकत्ता
२८ अगस्त १९५२

महादेव साहा

सूची



जागरण

१

वैरिस्टर मिस्टर आर्. एम. रे ब्राह्मसमाजी नहीं थे। असल हिंदू तो वह थे ही नहीं। हो सकता है कि 'विलायतसे लौट आनेवालोंकी बिरादरी' में उनका शुमार न भी हो। मगर यह सच है कि माँ-बापने अपने इस इकलौतेका नाम जब श्री राधामाधव राय रखा तो उस वक्त सपनेमें भी इन मिस्टर आर्. एम. रेकी कल्पना बेचारोंको न हुई होगी। खान-पान, रहन-सहन और वेष-भूषाके सम्बन्धमें भी उनके माँ-बापकी कल्पना यहाँतक नहीं पहुँची थी। खैर, वे आज जीवित नहीं हैं। पता नहीं, अपने पुत्रकी इस गति-विधिपर स्वर्गवासी माता-पिता सिर धुन रहे हैं या आँसू बहा रहे हैं।

राधामाधव छोटे थे, तभी उनके माँ-बापका देहात हो गया। हैजेके कारण सात रोजके अन्दर ही दोनों चल बसे। लड़केको मैट्रिक भी न करा पाये बेचारे! हाँ, राधामाधवके लिए जमींदारी और भारी रकमके तौरपर बहुसंख्यक प्रजाका गाढ़ा खून एवं विश्वासपात्र चतुर कर्मचारी अवश्य छोड़ गये। लेकिन, यह पुरानी बात है। अब तो 'साहब' की उम्र पचासको भी पार कर आई है। उस राजशेखर दीवानका भी आज पता नहीं। अतिथि-अभ्यागतोंकी आव-भगत और देवी-देवताका सेवा-सत्कार—सब कुछ बन्द हो चुका है। आज-कल तो अँग्रेजी-दाँ मैनेजर है। पुराने पुश्तैनी मकानकी जगह अब यह फैशनेबुल बिल्डिंग खड़ी है। कौमियत या राष्ट्रीयताकी छाप न मालिकबाबूपर पड़ी है, न इन वस्तुओंपर ही। और, यह भी नहीं कि साहब नये तौर-तरीकोंमें बिल्कुल आकण्ठ-मग्न हों। अलगसे निचोड़नेपर जितना कुछ रस निकलता है, अभीतक राधामाधव उतने ही भरसे अपनेको और अपनी साहबियतको भी निभाते आये हैं।

राधामाधव वैरिस्टर होकर देश लौटे और अपनी ही तरहके एक 'साहब'-

की विदुषी लड़कीसे विवाह किया। प्रैक्टिस वह अयोध्या, प्रयाग, बंबई और पंजाबमें करते रहे। बीच-बीचमें पत्नी और पुत्र-पुत्रीसमेत तीन बार विलायत भी घूम आये। लड़का डिफ्थीरियाका शिकार होकर मर गया। तीन वर्ष हुए, पत्नी भी असाध्य रोगोंसे आक्रांत होकर चल बसीं। तबसे रे साहबने प्रैक्टिस छोड़ रखी है। जरूरतके मुताबिक रुपये-पैसे न रहनेसे हो, पत्नी-विछोहके कारण होनेवाले वैराग्यसे हो—चाहे किसी भी निमित्तसे हो, सभी कुछ छोड़-छाड़कर रे साहब पश्चिम भारतके एक बड़े शहरमें आ बसे, साथ आई सिर्फ साहबियत और लड़की मात्र।

इस प्रकार रे साहब वहाँ निर्विघ्न जीवन बिता रहे थे कि सहसा महात्मा गांधीके असहयोग-आन्दोलनकी तरंगें दुर्निवार होकर आसमानको छूने लगीं। साहब बहादुरकी शांति और वैराग्य स्वप्नकी बात हो गये, विप्लवी वातावरण उनके हृदयको विलोने लगा। लगता था कि निर्भय-निरातंक शुद्ध-शांत तपस्वीकी लम्बी तपस्यासे जो द्रोहहीन असहयोग आविर्भूत हुआ है उसकी उद्दाम गतिको रोकनेका सामर्थ्य किसीमें नहीं है, जहाँ-कहीं जितना भी कुछ दुःख-दैन्य है, अन्याय अत्याचार और लोभ-मोहका कूड़ा-कचरा युग-युगसे जहाँ जितना-कुछ संचित होता रहा है—आन्दोलनकी यह प्रबल धारा सबको बहा ले जायगी, अभद्र एवं अकल्याणकर कोई भी वस्तु बच नहीं रहेगी।

कलकत्तेकी डाक अभी-अभी आई थी। बाहरके बरामदेमें आराम-कुर्सीपर बैठकर रे साहब अत्यन्त मनोयोगपूर्वक आन्दोलनकी खबरें पढ़ रहे थे। नीचे पोर्टिकासे मोटरकी आवाज आई और दो मिनट बाद बाहर जानेकी पोशाकमें एक जवान लड़की सामनेसे निकली। यह थी साहबकी लड़की—कुमारी आलेख्य राय। सूरत उसकी गोरी नहीं थी। बंगाली 'साहब' लोगोंकी लड़की गोरी नहीं होती। साबुन और पाउडरके अधिकाधिक उपयोगसे और कोई फायदा भले न हुआ हो, मगर धूसर वह जरूर थी। फिर भी लड़की देखनेमें खूबसूरत थी। चेहरेपर और आँखोंमें समझदारीकी आभा मौजूद थी। स्वस्थ और जवान होनेके कारण उसकी समूची देह सलोनी लग रही थी। उम्र बाईस-तेईससे ज्यादा नहीं होगी।

आलेख्यने कहा—इन्दुके बंगलेमें आज हमारा टेनिस-टूर्नामेंट है, वहीं जा रही हूँ। लौटनेमें शायद देर हो कुछ।

साहबने नजरें अखबारके कालमसे हटा लीं और लड़कीकी ओर देखा। उनकी दृष्टि उत्तेजनासे दमक रही थी, चेहरेपर आवेग एवं आशंकाकी छाया साफ-साफ

पड़ रही थी। लड़कीकी बात कानोंके अन्दर गई हो, ऐसा नहीं लगता। दीप्त मुद्रामें वह बोल उठे—देखती हो बेटी, यह सब क्या हो रहा है? होकर रहेगा यह—मैं तो पहलेसे ही कहता आ रहा हूँ।

लड़की बापको भली-भाँति पहचानती थी। संसारमें जो भी कुछ जहाँ कहीं होता है, उसकी भवितव्यता अनिवार्य रहती है और रे साहबको पहलेहीसे उसका आभास मिल जाता है। आलेख्यकी समझमें नहीं आया कि पिताजी किस घटनाके सम्बन्धमें कह रहे हैं। उसने कहा—क्या हुआ है बाबा?

पहली जैसी ही उत्तेजित मुद्रामें रे साहब बोल उठे—क्या हुआ है? और क्या होगा! दो असहयोगी छात्रोंको पकड़ ले गये हैं, हर्बीतोब मशक्कतकी सजा देकर मजिस्ट्रेटने उन्हें जेल भेज दिया है। और भी पाँच-सात लड़कोंकी गिरफ्तारीका आदेश दिया है उसने—देखें, इन्हें क्या सजा मिलती है!

थोड़ी देर चुप रहकर फिर बोल पड़े—जो होगा वह मैं जानता हूँ... स-परिश्रम करावास और सो भी बारह-बारह महीनेसे कमके लिए नहीं।

इतना कहकर लंबी साँस छोड़ी साहबने। आलेख्य अपने पिताकी इन बातोंपर ध्यान नहीं देती और इस वक्त तो उसे फुर्सत भी नहीं थी। टूर्नामेण्टकी चिंतामें ही बेचारीका ध्यान निमग्न था। फिर भी संगी-साथीहीन, शोक-जर्जर और अकालवृद्ध पिताके आग्रह एवं आशंकाकी उपेक्षा करके आलेख्य बाहर निकल जायगी, सो कैसे होगा! नजदीकमें कुर्सी पड़ी थी एक, हत्थेपर झुककर वह खड़ी हो गई और बापसे पूछा—उन दोनों लड़कोंने आखिर किया क्या था?

"थोड़ा नहीं" पिताने कहा—"किया उन्होंने भी बहुत कुछ। चारों ओर वे गाँधीजीके असहयोगी विचारोंका प्रचार करते फिरे। देशवासियोंसे पुकार-पुकारकर उन्होंने कहा—तुम लोग मार-काट मत करो, किसी व्यक्ति विशेष या अँग्रेजके प्रति विद्वेष-भावना अपने अंदर न आने देना। दुराचारी, अधर्मपरायण और असत्य-प्रिय मौजूदा सरकारसे किसी प्रकारका संपर्क मत रखो। नौकरीकी लालचमें पड़कर इसके आगे नाक मत रगड़ो। विद्या-प्राप्तिके लिए इसके स्कूल-कालेजके हातेके अन्दर पैर मत रखो। इन्साफकी आशासे इसकी कचहरीकी ओर मत बढ़ो, अदालतकी छाँह तकसे बचते रहो।"

आलेख्यने कहा—मतलब यह कि वे समूचे देशमें अराजकता फैलाना चाहते हैं।

"और क्या!"—रे साहब बोले—"मेरी तो कुछ समझमें ही नहीं आ रहा।"

लड़की बोली—फिर तो इनका जेल जाना ही मुनासिबि है। सच तो यह है कि समूचे देशमें फिजूलकी उथल-पुथल इन्होंने मचा रखी है।

पिता महोदय पुत्रीकी बातोंपर पूर्ण सहमति नहीं व्यक्त कर पाये। तनिक ठिठक करके साहबने कहा—नहीं, यह उथल पुथल फिजूलकी हो, ऐसी बात नहीं। सरकारका भी कसूर है।

आलेख्य सरकारके पक्षमें या विपक्षमे शायद ही कुछ जानती हो। अखबारी दुनियामें उसकी तनिक भी दिलचस्पी नहीं थी। स्वदेश या परदेश—कहाँ क्या हो रहा है, इसे लेकर अपने दिमागको परेशान करना प्रयोजनशून्य लगता था आलेख्यको।

सामनेकी घड़ीपर नजर फेंककर वह जरा सँभली। अभी दस-एक मिनट समय शेष था। अकेले छोड़ जानेके पूर्व किसी न किसी बहाने पिताको सजीवित एवं सचेतन करनेमें इन स्वल्प क्षणोंका उपयोग कर लेनेके लोभसे वह बोली—जबानसे चाहे जो कहो मगर दिलसे तो तुम इन्हीं लोगोंको प्यार करते हो बाबा! अभी उस रोज हड़तालके समय आंदोलनकारियोंने पत्थर मारकर इन्दुकी कारका बगल-वाला शीशा चूर-चूर कर डाला...सुनकर तुमने कहा—इतना बड़ा कांड हो तो इस प्रकारकी छोटी-मोटी दुर्घटनाएँ हो ही जाती है। कारमें उस वक्त इन्दुके पिता बैठे थे। मान लो, उनपर अगर चोट पड़ती तो?

तनिक अप्रतिभ होकर पिताने कहा—ना, ना, तुमने मुझे गलत समझा आलो! इस तरहकी उद्दंडता मुझे कतई पसद नहीं, वैसा करनेवालोंको सजा मिलनी चाहिये। फिर भी कहूँगा, उस रोज मोटरमें बैठकर बाहर निकलना मिस्टर घोषके लिए उचित नहीं था। देशकी बहुसख्यक जनताके साग्रह अनुरोधका तिरस्कार अनुचित नहीं है क्या?

आलेख्यके स्वरमें गर्मी आ गई। वह कहने लगी—रहने भी दो, अनुरोध! अनुरोध होनेहीसे अनुरोध हो जायगा? मैं तो कहूँगी—अनुचित अनुरोध चाहे किसी भी ओरसे क्यों न किया जाय, उसकी उपेक्षा ही मर्दानगी है। वैसे साहसके लिए इन्दुके पिता धन्यवादके भाजन हैं।

कैसे तुम्हें मालूम हुआ कि यह अनुरोध अन्यायपूर्ण था?—रे साहब जरा उत्तेजित होकर बोले।

आलेख्य बोली—अपनी गाड़ीमें बैठकर बाहर निकलनेका उन्हें पूरा अधिकार है। इसमें किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित करना ही अन्याय होगा।

"बेटी, तुम्हारी यह बात महज मामूली है" पिताने कहा।

"हाँ, बाबा, मामूली बात ही कह रही हूँ। दुनियामें ऐसे लोगोंकी ही संख्या ज्यादा है जो साहसपूर्वक इस तरह सोचते हैं और ऐसी ही बात करते हैं।"

उस रोज मोटरका शीशा टूट-फूट गया था। इन्दुके यहाँ इस दुर्घटनाको लेकर कड़वी-तीखी जो भी बातें हुई थीं, सभी कुछ आलेख्यको याद था। स्मृतिका वही सूत्र यह पकड़े हुए थी। उसका स्वर इसीसे और भी उत्तप्त हो उठा। वह फिर बोली, "उन्होंने कोई अन्याय नहीं किया। अन्याय किया उन डरपोक लोगोंने कि जिनकी पनाह लेकर स्वदेशी गुडे बेदाग बचे रहे। मुझे इसमें रत्तीभर भी शक नहीं है।"

साहबका चेहरा उतर गया। आलेख्यको भी पलक मारते ही ख्याल आया—अस्वस्थ होते हुए भी बाबा उस रोज सबेरे पाँव-पैदल डाक्टरके यहाँ गये थे और वैसे ही चलकर घर लौटे थे। मेरी बातें कदाचित् पिताजीको अपने कार्यकलापकी तीव्र आलोचना जैसी न भासित हों, इस संकोचके मारे आलेख्य सुन्न हो उठी। अपने अस्वस्थ एवं दुर्बलात्मा पिताको वह भली भाँति जानती थी। उनकी देह कभी सबल न रही, मन उनका कभी दृढ़ न रहा। इसीसे, बावजूद सांसारिक सुविधाओंके, वह अपने जीवनमें कोई बड़ा काम नहीं कर पाये। दोस्तों और दुश्मनोंकी किस्म-किस्मकी बातें बेचारोंको सुननी पड़ी हैं। और तो और, स्त्री तक रे साहबकी प्रखर आलोचना करती रही! किन्तु इन आलोचनाओंका परिणाम कहाँ कुछ निकला! नहीं निकला। सारी जिंदगी इसी तरह कटी है—लेकिन अब जिंदगीके इस आखिरी छोरपर आकर लड़कीके मुँहसे भर्त्सनाओंकी वही पुनरावृत्ति सुनकर परिताप पराकाष्ठापर नहीं पहुँच जायगा?

आलेख्य हड़बड़ाकर पिताके करीब आ गई। उनके कन्धेपर अपना एक हाथ रखकर स्नेहके स्वरमें उसने कहा—यह मत सोचना बाबा, कि मैं तुम्हारे किसी कामको अनुचित या अन्यायपूर्ण समझ रही हूँ।

बेटीकी इस बातपर बापको तनिक अचरज हुआ। साहबने पूछा—कौन-सा काम आलो?

पुरानी बात साहबके ध्यानसे उतर गई थी।

आलेख्य पिताके मुँहकी ओर झुक गई और बोली—कोई काम नहीं बाबा, कोई काम नहीं। बुरा काम तो कोई तुम कर ही नहीं सकते हो। फिर भी उस रोज तुम गिरा स्वास्थ्य लेकर डाक्टरके यहाँ पैदल ही जाने-आनेको मजबूर किये गये और यह सब जिनके चलते हुआ, बाबा, वे क्या साधारण अन्यायी थे? कितना भारी अत्याचार था यह उनका!

साहबको याद आई। स्नेहसे अभिभूत होकर वह लड़कीके माथेपर हाथ फेरने लगे। हाथ फेरते फेरते पूछा—तो, इसीसे तुम आन्दोलनकारियोंपर इतनी नाराज हो?

पिताको भुलाने-भुलवानेके लिए आलेख्यको कोई खास प्रयास नहीं करना पड़ता। नकली गुस्सेकी आवाजमें वह बोल पड़ी—न होऊँ नाराज!

नहीं बेटा—रे साहब मुसकुराकर बोले—ना, रंज होना मुनासिब नहीं। उनका यह आचरण उल्टे मुझे अच्छा ही लगा था। न छोटा न बड़ा, न नीच न ऊँच, सब बराबर। सभीको अपने-अपने पैरोंके बूते चलना पड़ा उस रोज। पैर जब भगवानने दिये हैं तो फिर उनके इस्तेमालमें लाज कैसी? लाज क्या, कुछ नहीं! इसका तजुर्बा जैसा मुझे उस रोज हुआ वैसा कभी नहीं हुआ था। बहुत दिनों तक यह घटना मुझे याद रहेगी बेटी!

यह भी भला कोई दलील हुई! ..आलेख्य मन ही मन हँसी, मगर कुछ बोली नहीं। बातको उसने और आगे बढ़ाना नामुनासिब समझा। घड़ीकी सुई पाँचपर पहुँचते ही उसने कहा—चलो न तुम भी बाबा, हमारा टूर्नामेण्ट देखने। और, इन्दुकी माँ तुम्हें देखकर कितनी खुश होंगी, कह नहीं सकती!

रे साहबका घरसे बाहर निकलना असम्भव था, खासकर जबसे पत्नीका देहांत हुआ है। मकान और उसका ढका-घिरा बरामदा—धीरे धीरे यही उनके लिए समूचे विश्वमें परिणत हो गया था। निष्क्रियता एवं जड़ताके कारण शरीरका बुरा हाल था परन्तु बाहर निकलनेका प्रसंग छिड़ने मात्रसे जूड़ी चढ आती। इस वक्त लड़कीके मुँहसे बाहर चलनेका प्रस्ताव सुनकर साहब हड़बड़ा उठे, कहा—अभी! इस बे वक्तमें?

यही तो बाहर निकलनेका समय है बाबा!—लड़की हँसती हुई बोल गई।

"लेकिन बहुत सारी चिट्ठियाँ जो लिखनी हैं! अच्छा, तुम भला जल्द लौट आओ। रात ज्यादा न हो जाय। मैं तबतक इन सबसे निपट लूँ।"—इतना कहकर रे साहब फिर अखबारके कालमोंमें डूब गये।

आलेख्य !—लड़कीका यह नामकरण माँने ही किया था, प्रायः नवीनताके मोहमें पड़कर। हिन्दुओंकी किसी देव-देवीके साथ लेशमात्र भी सादृश्य न मालूम हो, हो सकता है, यह अभिसन्धि भी माँके मनके किसी कोनेमें दबी पड़ी हो। लेकिन पिताको लड़कीका यह नाम रत्तीभर भी पसन्द नहीं आया। इस नामके उच्चारण मात्रमें भी वह एक प्रकारकी बाधाका अनुभव करने लगे। लिहाजा, साहब लड़कीको बराबर 'आलो' ही कहते आये हैं। सीधा-साधा यही नाम लोगोंकी जुबानपर चढ़ा बैठा है। इन्दुके साथ उसकी जान-पहचान छुटपनकी ही थी। इन्दुकी माँ और उसकी माँ स्कूलकी सहपाठिनी थीं, रहना भी उनका कुछ अर्सेतक एक ही बोर्डिङ्गमें हुआ था। दोनोंमें खूब ही घनिष्ठता थी, आमरण बन्धु थीं दोनों। इन्दुका भाई—कमलकिरण—बैरिस्टर बननेके लिए जब विलायत जाने लगा तो निश्चय हुआ था कि लौट आनेपर उसीको दामाद बनाएँगी। गत वर्ष बैरिस्टर के० के० घोष होकर कमलकिरण विलायतसे वापस आ गया। उसके माँ-बापने कई बार रे साहबको दिवंगत पत्नीकी वचन-बद्धताका स्मरण दिलाया है, मगर रे साहबसे 'हाँ' या 'ना' करते बनता ही नहीं, अपने मनको स्थिर करना उनके लिए पहाड़ हो गया है। मानसिक दुर्बलताकी भी आखिर कोई परिधि होती है! इन्दुके यहाँ टूर्नामेण्ट देखनेके निमन्त्रण-मात्रसे क्यों साहबने और तरफसे हटाकर अखबारके कालमोंपर नजर गड़ा दी, इसका मतलब आलेख्यके लिए जो भी हो किन्तु इन्दुकी माँ कुछ और ही समझतीं। वह आलेख्यको बहू बना लेनेके अपने प्रयत्नोंमें अब भी शिथिल नहीं हुई थीं।

इन्दुकी माको पता था कि आलेख्य जैसी लड़कियाँ समाजमें रूप और गुणकी दृष्टिसे दुर्लभ नहीं हैं। परन्तु अस्वस्थ एवं वृद्ध पिताकी मृत्युके बाद जो जायदाद आलेख्यके हाथ लगेगी, उसकी दुर्लभतामें इन्दुकी माँको तिल-भर भी संशय नहीं था। दूसरी ओर कमलकिरण भी कोई मामूली लड़का नहीं था। शिक्षित, सुरूप, पक्के-पुराने बैरिस्टर पिताका जूनियर। भविष्य उसका अत्यन्त उज्ज्वल है। कमलके प्रति माँ वचनबद्ध हुई थीं—आलेख्यको पता है। इन्दु और उसकी माँ जब-तब उससे इस बातका जिक्र जरूर करतीं। इस बारेमें सभी निश्चित एवं निश्चिन्त थे—संशयात्मा रे साहबका मन स्थिर होनेमें विलम्ब हो सकता है, लेकिन एक न एक दिन मनको स्थिर जब उन्हें ही करना पड़ेगा तो इस ओरसे (वरपक्षसे) उतावली नहीं दिखाई जायगी। आलेख्यके समक्ष ही इन्दुकी माँ अपने पतिसे कहतीं—मैं तो इसमें संशयका कोई कारण नहीं देखती। असहमत होते तो इस तरह रे साहब क्या

आलेख्यको इस घरमें आने देते ? वह भलीभाँति जानते हैं कि उनकी लड़की अपनोंके ही बीच, अपने ही घर जा रही है। ठीक है न बेटी आलो ?

कमलकी उपस्थितिमें आलेख्यकी कनपटी सुर्ख हो आती। मर्दोंके न रहनेपर अनुमतिकी मुद्रामें वह स-सकोच कह उठती—आप माँकी तरह हैं मेरे लिए, चाचाको यह बात अच्छी तरह मालूम है।

इसी तरह पिछला साल बीता था।

टेनिस टूर्नामेण्टकी परिसमाप्तिपर इन्दुके यहाँ चाय और साधारण जलपानका भी आयोजन था। काफी देर हो गई मगर इस विलम्बकी ओर आलेख्यका ध्यान नहीं था। टेनिस वह बढ़िया खेलती थी। कानपुरके खिलाड़ी आज आलेख्यसे पराजित हो गये थे। विजयकी खुशीमें उसका मन मस्त था। इन्दु गा रही थी कि बीचमें घड़ीकी ओर देखकर आलेख्य उठ पड़ी और सगी साथीहीन पिताकी याद आते ही विदा लेनेकी साधारण शिष्टता तकका उसे ध्यान न रहा, जल्दी-जल्दी उसे नीचे उतर आना पड़ा।

मोटर तैयार थी। शोफरने उसका दरवाजा खोल दिया। बैठते ही श्रांत शरीर-यष्टिको उसने शिथिल करके छोड़ दिया, वह निढाल होकर ढठंग गई। रात अँधेरी नहीं थी। चाँद जरा ऊपर उठ आया था। अ-दूरस्थित किसी विलायती लताकुंजके तीव्र सौरभसे साँस भारी-भारी हो उठी। खूब खेलनेसे वह बेहद थक गई थी, किन्तु धमनियोंमें तरुण रक्त प्रखरतापूर्वक खौल रहा था। वह सोच रही थी—बिना कुछ कहे-सुने इस तरह चुपचुप भाग आना कहाँतक ठीक हुआ...कि इतनेमें परिचित-सी आवाज आई—भाग आई!

आलेख्य चौंक उठी और बोली—उन्होंने कुछ कहा है तुमसे क्या ?

"नहीं", कमलने मुस्कराकर कहा "सिवाय मेरे, और किसीको मालूम ही नहीं हुआ। मगर इन निगाहोंको धोखा देना जरा मुश्किल है आलो, समझीं ?"

चाँदनी साफ नहीं थी कि आलेख्यका चेहरा अच्छी तरह दिखाई पड़ता। वह अपनेको सँभालकर बोली—तुम्हें तो मालूम ही है, घरपर बाबा अकेले हैं। रातको तनिक भी देर करनेसे उनकी परेशानी बढ़ जाती है।

"पता है", गर्दन हिलाकर कमल बोला "और इसीलिए तुम शीघ्रता करो।"

मोटर स्टार्ट हुई, शोफर ड्राइव करने लगा तो कमलने फुस-फुसाकर आलेख्यके कानोंमें कहा—कहो तो पहुँचा आऊँ तुम्हें ?

आलेख्यको संकोच हुआ परंतु वह 'ना' नहीं कर सकी। इतना भर उसने जरूर पूछा—लौटकर आओगे किस तरह?

कमलकिरणने कहा—लौटनेका भी तुमने खूब कहा। कैसी साफ और सुन्दर रात है, देख नहीं रही हो? टहलते-टहलते आ जाऊँगा, आगंतुकोंको पता भी न चलेगा।

दरवाजा खुद ही खोलकर कमल मोटरमें दाखिल हो गया, आलेख्यके बगल-हीमें वह बैठा।

दूरी कुछ नहीं, बस, पाँच-छः मिनटका रास्ता था। मतलबकी बातोंके लिए इतना समय पर्याप्त होता है। लेकिन दोनोंमें कुछ बात नहीं हुई। दोनों अगल-बगल बैठे रहे। गाड़ी रे साहबके बंगलेके अहातेमें घुसी और पोर्टिकोंमें आकर खड़ी हो गई। आलेख्यको खटका था कि मोटरकी आवाज सुनकर पिताजी ऊपर बरामदेसे झाँकेंगे। लेकिन ऐसी कोई बात नहीं थी। दोनों गाड़ीसे उतरे। शोफर मोटर ले गया। आलेख्यने दबी जबानसे कमलको विदा किया और स्वयं हालके अदर घुसी।

"साहब कहाँ है?" बैरासे आलेख्यने पूछा।

सलाम करके बैरा बोला—ऊपर हैं।

आलेख्य सीढ़ियोंसे ऊपर पहुँची। पिताके कमरेमें जाकर देखा तो अवाक् रह गई—आलमारी खुली पड़ी है, कागज-पत्तर और फाइलें चारों ओर फैली पड़ी हैं। साहब एक बैराकी मददसे खुद ही दो बड़े-बड़े बक्सोंमें कागज-पत्र रख रहे हैं।

"यह क्या बाबा! कहीं जा रहे हो क्या?"

साहबने बेटीकी ओर देखा और खड़े होकर कहा—देख तो बेटा, कैसा कुकांड मच गया है! तभी कहा था मैंने···गाँधी सब कुछ चौपट कर डालेगा। ये स्वदेशी गुंडे मुल्कको तहस-नहस करके छोड़ेंगे, यह मैं पहले ही जानता था...

पाकिटसे एक कागज निकालकर रे साहबने आलेख्यकी ओर फेंका और कहा—सरकार इन्हें जेल नहीं भेजेगी तो मुल्क जरूर ही बर्बाद हो जायगा।

अभी तीन ही चार घण्टे पहले रे साहबने कैसी उल्टी बातें की थीं! फिजूल है उन बातोंको याद करना—आलेख्यने चुपचाप उस कागजको उठा लिया और लैम्पके प्रकाशमें जाकर खड़ी हो गई, एक ही साँसमें समूचा खत पढ़ डाला उसने। चिट्ठी थी मैनेजरकी, जमींदारीसे आई थी। उसने खिन्न होकर, बल्कि सक्रोध, लिखा है—जमींदारीका हाल अच्छा नहीं। इलाकेमें उथल-पुथल मची

हुई है। चिट्ठीपर-चिट्ठी उसने लिखी है, आदेश माँगा है बार-बार। लेकिन इधरसे कुछ भी जवाब नहीं मिला। उल्टे आन्दोलनकारियोंको सहारा दिया जा रहा है। गुंडे यहाँ तक सिर-चढ़े हो गये हैं कि खुले आम मैनेजरका अपमान करते हैं। अमरपुर-बाजारमें विदेशी कपड़ोंकी बिक्री गुंडोंने रुकवा दी है। अमला-फैला लेकर मैनेजर खुद पेठियामें मौजूद थे फिर भी गुंडोंको ऐसा करनेका साहस हुआ। इससे जमींदारीकी आय बिल्कुल घट गई है। मैनेजरने आखिर मैजिस्ट्रेटकी शरण ली। आंदोलनकारियोंने उधर रैयतको भड़का दिया तो अब वसूल तहसील बन्द है, कोई लगान नहीं दे रहा। लूट-पाटका खतरा बढ़ गया है। सरकारी खजानेमें मालगुजारी जमा करनेका वक्त सिरपर है, मगर यहाँ दो कौड़ी भी वसूल नहीं हो पाई है। जल्द-से-जल्द कोई रास्ता निकालना होगा। अफवाह लोगोंमें यह फैला दी गई है कि मालिक जबतक नहीं आ लेते तबतक कुछ नहीं होगा।

खत पढ़कर आलेख्यका चेहरा फक हो गया। भारी गलेसे उसने पूछा—तो बाबा, तुम खुद ही जा रहे हो ?

" दूसरा चारा ही क्या रह गया है ? " रे साहब बोले, " बेटा, जाऊँगा और जल्द ही लौट आऊँगा। एक ही रोजमें सब दुरुस्त हो जायगा। मिस्टर घोषसे कहता जाऊँगा, वह सुबह शाम तुझे देख जाया करेंगे। कोई तकलीफ नहीं होगी तुझे। "

लड़कीने इन बातोंकी तरफ ध्यान नहीं दिया। बोली—मैनेजरने बारबार तुम्हें आगाह किया, फिर भी तुम नहीं सँभले !

साहब तमककर बोले—सँभला नहीं हूँ ? किया नहीं है कुछ ? अरे बहुत कुछ किया है बेटी ! शायद खतका जवाब भी दिया है।

आलेख्य कुछ क्षणोंतक पिताके मुँहकी ओर देखती रही, फिर बोली—नहीं बाबा, तुम भूल गये हो ! है न ?

साहबके गलेकी आवाज नीचे उतर आई। वह बोले—भूल कैसे जाऊँगा ! अभी तो उस रोज अपने ही हाथसे लिखा था, " लोग अगर विलायती कपड़ा पहनना नहीं चाहते तो बेकार है उसकी बिक्री। इस तरह खरीद-फरोख्तसे फायदा नहीं, बल्कि नुक्सान ही है। "

बीचहीमें सहमकर आलेख्यने जानना चाहा—यह तुमने किसे लिखा था बाबा ? मैनेजरने तो तुम्हारे किसी पत्रकी चर्चा नहीं की है...

चिन्तित मुखमुद्रामें साहबने कहा—ये जो कलकत्तेसे आकर गाँव-गाँवमें रात्रि-पाठशालायें खोले बैठे हैं। रैयतों-कमकरोंकी बातें लिखकर मुझसे आदेश माँगा था—तो इसमें हर्ज ही क्या? जो मर्जी आए, करें वे लोग। मेरा क्या? मुझे तो बस अपनी मालगुजारी-भर चाहिये।

आलेख्यने पूछा—तो, हमारे मौजेमें भी रात्रिपाठशाला खोली गई है!

"अवश्य!" पिता सगर्व बोले, "अवश्य! मैंने खुद ही तो उन्हें लिखा था, कि मन्दिरका नाट्यभवन खाली पड़ा रहता है, चाहें तो उसीमें काम चलावें। किरासीनका ही तो खर्चा लगेगा न?"

आलेख्यने कहा—सो, मिट्टीका वह तेल भी कचहरीसे ही दिया जाता है?'

"हुक्म तो दिया है, अब अगर न मिलता हो तो यहाँसे मैं क्या करूँ!"

वह कुछ देर तक चुप रही, बापकी ओर देखती रही फिर बोली—बाबा, उस कमरेमें जाकर तुम बैठो। मैं यह सब ठीक कर लेती हूँ। तुम्हारे साथ मैं भी जाऊँगी।

विस्मित स्वरमें रे साहबने कहा—तुम चलोगी?

"हाँ"—आलेख्यने जवाब दिया—"लगता है मेरे गये विना काम नहीं चलनेका।"

२

यह पहला अवसर था कि आलेख्य पिताके साथ अपने पूर्वजोंके निवासगृहमें आ उपस्थित हुई। उम्र ज्यादा नहीं थी लेकिन अबतक तीन बार वह युरोप हो आई थी। दार्जिलिंग और सिमला तो शायद ही किसी साल छूटता होगा। चायपार्टी और डिनर—बेशुमार दावतोंमें वह शामिल हो चुकी है। जब माँ जिन्दा थी, तब खुद अपने यहाँ भी दावतोंके त्रुटिहीन आयोजनमें हाथ बटाया है आलेख्यने। समाजोचित सभी आवश्यक बातोंका उसे ज्ञान है। गाना-बजाना, दौड़-धूप, खेल, सभा-सोसाइटीके तौर-तरीके सब उसे मालूम हैं। कहाँ, कब, कैसी पोशाक जरूरी है; कौन रंग और कौन-सा फूल किस मौसमसे मैच खाता है, इसकी उसे भली-भाँति जानकारी थी। अभिरुचि और फैशनके सम्बन्धमें मालूम करनेको उसके लिए शायद ही कुछ बच रहा हो। हाँ नहीं मालूम है तो बस एक यही बात कि ये चीजें आखिर आती कहाँसे हैं और किस तरह। माँ और बेटी

अभीतक इतना भर जानकर ही निश्चिन्त थीं कि बंगालकी एक देहातमें कोई एक गाँव है, वहीं उनका कल्पवृक्ष है। न पानीकी जरूरत, न देख-भालकी, बस जरा-सा हिला-डुला भर दो कि उसकी डालोंसे सोना-चाँदी झर-झर-झर-झर बरसने लगता है—जब चाहोगे, तभी बरसेगा। माँने तो इस ओर ध्यान देनेकी न कभी आवश्यकता ही समझी और न कभी माननेको तैयार ही हुईं, परन्तु बेटीने कभी-कभी अवश्य देखा है—इतनी अधिक फिजूलखर्चीके लिए रकम जुटाते-जुटाते बीच-बीचमें पिताजी जाने कैसे खिन्न और म्लान हो उठते हैं। उसे पिताजीकी बातोंसे कई बार ऐसा भी आभास मिला है कि रहन-सहनमें इतना अधिक फैलाव न हो तो भी काम चल सकता है। और जवाबके तौरपर माँके मुँहसे बराबर वह यही सुनती रही कि समाजमें रहनेपर इतना न करके निर्वाह असंभव है।

पिताको आलेख्यने कभी प्रतिवाद करते नहीं पाया। चुपचाप इस प्रकार चेतनाशून्य होकर वह बैठ जाते कि धूमधाम और चहल-पहलके बीच गृहपतिका यह रवैया बेतुका-सा लगता। परन्तु क्षणभर बाद ही रे साहबकी यह निर्जीव मुखमुद्रा गायब हो जाती, और काम-काज तथा उत्सव आयोजनके दर्म्यान इस प्रकारकी निर्लिप्तता अधिक देरतक भला टिक भी कैसे पाती? निमन्त्रितोंकी कारें आनेका समय हो गया है . मिस्टर अमुक आ गये हैं, मिस्टर अमुकको जल्दी जाना है...ऐसे वातावरणमें गृहपतिका अविचलित या निर्लिप्त रहना असम्भव होता। ऐसेमें ज्यादा सोचनेका मौका ही कहाँ मिलता!

बचपनसे इसी तरह लड़कीके दिन बीते हैं और आगे भी बीत जायेंगे—माँ अपने समक्ष ही आलेख्यको शिक्षित बना गई हैं।

चार ही छ रोज पहले वे यहाँ आये थे। जमींदारका मकान ठहरा, बड़े आदमीका बड़ा घर—नई तरहसे बनाया गया था, बड़े आदमियोंकी अभिरुचिके अनुकूल ही। कोई त्रुटि नहीं, कुछ कसर नहीं। तथापि आलेख्यको इस मकानमें कई प्रकारकी असुविधा अनुभव हो रही थी। बैठक, खानेका घर, सोनेका घर—सभीको नए सिरेसे पेण्ट कराना होगा, नहीं तो आलेख्यसे इस मकानमें रहा ही न जायगा। दरवाजे, खिड़कियाँ, चौखट किस कदर भद्दे रँगे हुए हैं! आलेख्य अपने सामने फिरसे उनपर वार्निश करवाएगी। असबाब तो देखो, मांधाताके जमानेके बेडौल, बेढंगे! न सूरत, न शकल! धूल इनपर ऐसी जमी हुई है कि रंगका पता लगाना मुश्किल है! ना बाबा, इस घरमें रहना है तो आँखें खोलकर

भला कैसे रहा जाएगा ! जैसे भी हो, चार-पाँच हजारसे कममें काम नहीं चलनेका...

यह प्रस्ताव लेकर आलेख्य उस रोज सवेरे पिताके सामने हाजिर हुई। वह एक अल्पवयस्क ब्राह्मण अध्यापकसे बातें कर रहे थे। परिचय देते हुए लड़कीसे बोले—पण्डित श्री रामनाथ न्यायरत्न, अपने पुरोहित खानदानके नाती हैं आप। यहाँसे करीब ही अपनी जमींदारीका एक मौजा है वराहपुर। पुश्त-दर-पुश्तसे चली आती हुई अपनी चटसार (पाठशालामें) पढाते हैं।...और, यह मेरी लड़की आलेख्य राय—बेटी, इन्हें प्रणाम करो !

पिताका यह आदेश सुनते ही आलेख्यके वदनमें आग लग गई। साक्षात् गुरुको छोड़कर और किसीको भूमिष्ठ होकर प्रणाम करनेका रिवाज उन लोगोंमें (ब्राह्म-समाजियोंमें) नहीं है। तिसपर यह अन-चीन्हा आदमी पुरोहित-खानदानका ठहरा ! इन लोगोंके विरुद्ध बचपनसे ही वह अनेक-अनेक अभियोग सुनती आई है। उसके हृदयमें यह संस्कार बद्धमूल हो गया था कि इन पण्डितों-पुरोहितोंकी कूपमंडूकता, दृष्टिशून्यता और गतानुगतिकता ही देशकी अधोगतिका कारण है, इन्हींके हठ और विरोधके चलते वे हिन्दू-समाजसे बहिष्कृत हैं। अभी ऐसे ही लोगोंमेंसे एक व्यक्तिके पैरोंकी ओर झुकना होगा, इससे आलेख्यकी आत्मा विद्रोह कर उठी। हाथ उठाकर नमस्कारकी एक मामूली मुद्रासे उसने पिताके आदेशका पालन किया...इतना भर, फिर भी वह ताड़ ही गई कि उक्त पुरोहित-वंशी अध्यापकने उसके इस सामान्य नमस्कारका उत्तर नहीं दिया, टकटकी लगाकर वह आलेख्यकी ओर ताकता भर रहा !

लड़कीकी पलकें उठीं और फौरन गिर भी पड़ीं। वह पितासे ही बातें करने आई थी और अपरिचितको अपरिचितहीकी तरह उपेक्षित करके पितासे बातें करने लगी—लेकिन प्रतिपल वह महसूस करती रही कि अपरिचित अध्यापककी अभद्र-विस्मित दृष्टि पीछेकी तरफसे उसे छेदती आती है।

आलेख्य कह रही थी—घरका क्या हाल है, देखा है बाबा तुमने ?

" क्यों ठीक ही तो है बेटी ! "—अचरज-भरी आवाजमें रे साहब बोले।

लड़कीने ओठ सिकोड़ लिये, कहती गई—यही तुम्हारी नजरोंमें ' ठीक ' है ? बैठक और खानेका घर, दोनों ? मेरी रायमें तो नये सिरेसे बिना पुताये-रँगायें उनमें न बैठा ही जा सकेगा और न खाया ही जा सकेगा। अच्छा, तुम्हारे आदमी

यहाँ कर क्या रहे थे ? एक-एक करके इन्हें जवाब दे देना चाहिए। पुराने नौकरोंसे काम नहीं चलेगा, सबके सब फाँकीबाज हो गये हैं।

सिर हिलाकर रे साहबने सहमति व्यक्त की, लेकिन धीरे-धीरे बोले—बात तो ठीक है। हो भी तो बहुत दिन गये, जमाना गुजर गया। बिना रहे-सहे घर-बारमें रौनक आयेगी कहाँसे ?

"सो, वह बात और है।" आलेख्यने कहा, "और यह सब तो नौकरोंकी लापरवाहीसे चौपट हो रहा है। मैनेजरसे लेकर नौकर-चाकर, माली-मेहतर सभीसे मैं कैफियत तलब करूँगी, और क़सूरके लिए कड़ी सजा दूँगी। इसमें तुम रुकावट मत डालना बाबा, हाँ!"

साहबने हँसकर कहा—मैं क्यों रोकूँगा बेटी, सभी कुछ तो तुम्हारा है। अपने आदमियोंको तुम अनुशासनमें लाओगी, इसमें नाहक मैं ही क्यों अड़चन बनूँगा ? अच्छी तरह जानता हूँ, और चाहे कुछ करो मगर अन्याय तुम किसीके साथ नहीं कर सकतीं।

लड़की मन ही मन खूब खुश हुई, बोली—फर्नीचर सारेके-सारे बेकार हो गये हैं, कबाड़ीके हवाले कर दूँगी। नये मँगवानेमें कमसे-कम चार-पाँच हजार तो लगेंगे ही।

इतनी रकम ?—शंकित स्वरमें वृद्धने कहा—लेकिन इस जंगलमें रह तो तुम सकोगी नहीं! दो रोजके लिए आई हो, इतना खर्च करके नये सिरेसे घर बसा जाओगी और फिर सारा इसी तरह बर्बाद हो जायगा।

निषेध मुद्रामें आलेख्यने सिर हिलाया। कहा—तै कर लिया है बाबा, अबकी यहीं रह जाएँगे। जाना भी हुआ तो कमसे-कम दो बार प्रतिवर्ष हम जरूर आवेंगे। नजर न रखनेपर सब सत्यानाश हो जायेगा, यह अब मैं भली-भाँति समझ गई हूँ।

प्रसन्न होकर पिताने बार-बार माथा हिलाया और बोले—इतने दिनों बाद भी अगर यह सब बात तेरी समझमें आई, तो इससे बढ़कर और क्या खुशखबरी मेरे लिए होगी ?

फिर रे साहब अध्यापक महाशयकी ओर मुखातिब होकर बोले—ठीक है न अमरनाथ, इतने दिनों बाद लड़की असल बात समझ पाई तो यह कैसी अच्छी बात है!

अमरनाथने 'हाँ' या 'ना' कुछ नहीं कहा। मगर लड़की मुसकुराकर बोली—यह समझनेमें इतने दिन मुझे नहीं, तुम्हें जरूर लगे हैं बाबा! दस-पन्द्रह साल भी पहले अगर यह बात तुम्हारी समझमें आई होती, तो इस वक्त मुझे नए सिरेसे यह सब नहीं करना पड़ता।

लड़कीकी बातोंका विरोध करनेकी हिम्मत वृद्ध पितामें नहीं थी, लेकिन चेहरेसे साफ था कि वह अत्यन्त उद्विग्न हो उठे हैं। उन्होंने कहा—तो ऐसी हड़बड़ी भी क्या पड़ी है, मजेमें चलने दो काम।

गर्दन हिलाती हुई लड़की बोली—ना, बाबा, सो तो नहीं होनेका...

इतना कहकर आलेख्यने चट्से एक तार पिताके हाथमें थमा दिया, अँग्रेजी उपन्यासके अन्दरसे निकालकर। पाकिटसे चश्मा निकालकर उस तारको रे साहबने दो तीन बार देखा और फिर वापस लड़कीको दे दिया। हलकी-सी साँस लेकर वह बोले—तभी तो! अपनी और बहनोंको लेकर कमलकिरण कलकत्ते आ रहे हैं। हो सकता है, घोष साहब भी आवें। अच्छा, बेटी, कब तक वे लोग आ रहे हैं, लिखा है कुछ?

कलकत्ते पहुँचकर सूचित करेंगे शायद—लड़की बोली।

चश्मा हटाकर उसे खोलके अंदर किया, फिर उसको पाकिटमें रखते हुए समस्त मुंडव्यापी गंजे चाँदको सहलाते रहे। कुछ क्षण बाद बोले—तभी तो!

बुढापेके असमय शिकार अपने पिताकी आर्थिक दुरवस्थाका अन्दाज ठीक-ठीक न रहनेपर भी आलेख्यको इधर कुछ दिनोंसे इस तरहका शक जरूर हो रहा था। इस वक्त वह यह सवाल उठाती भी नहीं, लेकिन रे साहबने खुद ही पूछ लिया—कितनी रकम चाहिये आलो! निहायत जरूरी—

अन्दर ही अन्दर हिसाब लगाकर आलेख्यने कहा—ठीक ठीक बताना तो मुश्किल है मगर सोनेके लिए कम-से-कम चार-एक कमरे चाहिये ही, चार-एक ड्रेसिंग टेबुल, दस-एक इजी चेयर...

दस-एक?—आशंकित स्वरमें साहब बोल उठे। तनिक रुककर अध्यापककी ओर मुँह करके कहा—अमरनाथ, खेद है कि तुम्हारे प्रवासी छात्रोंकी कुछ भी मदद मैं कर नहीं पाऊँगा!

लगता तो मुझे भी ऐसा ही है रायमहाशय!—जरा मुसकुराकर अमरनाथ बोले।

गुस्सेके मारे आलेख्यका रोआँ-रोआँ सुलग उठा। देखो तो इसकी गुस्ताखी! घरेलू प्रसग छिड़ते ही जिम अपरिचित-अभद्र व्यक्तिको यहाँसे उठ जाना चाहिये था वह न सिर्फ बैठा ही रहा, बल्कि स्थिति-दुःस्थितिकी आलोचनामें प्रकारांतरसे योग दे बैठा, सो भी व्यग-विद्रूपकी भंगीमें! पिताके लिए इस व्यक्तिने जिस सबोधनका इस्तेमाल किया था वह तो पुत्रीके कानोंमें और भी अधिक सुई चुभो रहा था! इतना कुछ होनेपर भी चिरकालीन शिक्षा-दीक्षाने इस वक्त उसे असयत नहीं होने दिया। बाहरके इस भिखारीकी ओर घोर अमान्यता और अपेक्षाका अवलंबन करके ऊपर-ऊपर वह मुसकुराई और पितासे बोली—इतना न होनेसे कैसे काम चलेगा बाबा? अलावा इसके, गद्दीकी मरम्मत करवाना है, कार्पेट खरीदना है, चाय और डिनर-सेट मँगवाने होंगे ·तीन चार हजार तो लग ही जाएँगे, ज्यादा भी लग सकते हैं।

लम्बी साँस खींचकर बूढ़े रे साहब बोले—हाँ, इतना तो लग ही जायगा बेटी!

पिताके इस सुदीर्घ निःश्वासके उपरांत हँसना लड़कीके लिए कठिन था, फिर भी वह जबरन् हँसी और बोली—जैसा समाज, वैसी रीति। उन लोगोंका सेवा-सत्कार तुम 'राइट रॉयल इंडियन स्टाइल' (राजोचित उदार भारतीय परंपरा) के अनुसार मिट्टीके सकोरों और केलेके पत्तोंसे तो कर नहीं सकोगे। ईजी चेयरके बदले कुशोंकी आसनी डाल देनेसे आतिथ्य पूर्ण हो जायगा सो भी नहीं। और चारा ही क्या है?

क्षणभर चुप रहकर रे साहब बोले—अच्छा, सब ठीक करना होगा। दूसरा कोई उपाय जब है ही नहीं तो यही होगा। तो, तुम एक फेहरिस्त बना लो बेटी!

गर्दन हिलाकर आलेख्य बोली—मैं सब ठीक कर लूँगी बाबा, तुम जरा भी फिक्र मत करना।

क्षणभर चुप रहकर वह फिर बोली—इसमें तुम्हारी सोच फिकिरकी तो कोई बात थी ही नहीं, सिर्फ इस ओर तुमने थोड़ी नजर रखी होती।

रे साहब कुछ नहीं बोले। मन ही मन, सम्भवतः यही सोचने लगे कि दो आँखें तो इस वक्त भलीभाँति खुली ही हैं फिर भी दुश्चिंताका अत नहीं। लड़कीने कहना जारी रखा—लेकिन तुमको अब मैं कुछ नहीं करने दूँगी। जो भी करना होगा, खुद करूँगी। जाने कबसे यह फिजूलखर्ची यहाँ चली आ रही है—बे-रोक बे लगाम! इतने आदमियोंकी क्या जरूरत थी? आँखोंसे देख नहीं पाते, कानोंसे

सुन नहीं पाते—ऐसे दो-चार नहीं, बीस-पचीस आदमी बैठे-ठाले खा रहे हैं! हमारी आँखोंमें धूल झोंकते-झोंकते ही क्या ये निठल्ले समूची जिंदगी काट लेंगे? सभीको बर्खास्त कर दूँगी मैं, नवजवानोंको बहाल करूँगी। आधे नौकरोंसे डबल काम निकलेगा। ठाकुरद्वारोंको ही ले लो, कितने हैं! इनके पीछे कितनी भारी रकम बर्बाद होती है! दस-बारह हजार तो मैं इसी मदसे बचा लूँगी।

बूढे मालिक इतनी देर आनेवाले अतिथियोंके बारेमें सोचते रहे, आलेख्यकी बातोंपर उनका ध्यान नहीं था। परन्तु उसकी बातोंकी पिछली कड़ी सुनते ही वह चौंक उठे। कहा—किस मदसे बचाओगी बेटी? देवताकी प्राप्य सेवासे? जिन्होंने यह संपत्ति उपार्जित की, देव-सेवाके लिए इतनी रकम वे ही पूर्वज निश्चित कर गये हैं। देवोत्तर संपत्तिपर तू भला कैसे अपना हाथ डालेगी?

आलेख्यने इसपर कहा—अपव्ययका यह दोष मैं उन्हीं पूर्वजोंके मत्थे तो डाल रही हूँ बाबा, खुद तुमने तो एक प्रतिमा भी स्थापित नहीं की। फिजूलखर्चीका यह सिलसिला वे ही चालू कर गये हैं, ठीक है। लेकिन भूल या त्रुटि भले किन्हींकी ओरसे शुरू हुई हो, दुरुस्त तो उसे करना ही होगा। तुम्हें तो याद ही होगा बाबा, माँ बारबार यह सब बंद करनेको कहती रहीं!

पिता चुपचाप पुत्रीके मुँहकी ओर देखते रह गये—एकटक, निर्निमेष। उन विस्मित-क्षुब्ध दृष्टियोंके समक्ष आलेख्यको लज्जाका अनुभव हुआ और मानो उसीसे त्राण पानेके लिए वह सहसा बोल पड़ी—इस मूर्तिपूजापर तुम्हारी आस्था है क्या?

रे साहब बोले—मेरे विश्वास या अविश्वासपर तो इन प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा हुई नहीं बेटी!

तो क्यों तुम मूर्तिपूजाका यह भार ढोओगे?

मैं कहाँ ढो रहा हूँ बेटी? जिन्होंने इनकी स्थापना की थी, मेरे वे बाप-दादा ही उनका भार ढोये जा रहे हैं, हाँ आज भी! जिन पुतलों—देवी-देवताओंपर तुम्हारा विश्वास नहीं, उन्हें वंचित करो यह मैं नहीं होने दूँगा।

पिताकी इस निम्नस्तरीय दुर्बलताका तीखा जवाब आलेख्य देने जा रही थी किन्तु सहसा विस्मित होकर वह उस जवाबको भूल गई। जो अध्यापक अभीतक चुपचाप बैठा था, अकस्मात नीचे झुककर रे साहबके जूतोंकी तल्लीका उसने अपने हाथोंसे स्पर्श किया और धूल उठाकर माथेसे लगा ली।

बात क्या है अमरनाथ, यह तुमने क्या किया!

अमर सविनय बोला—कुछ नहीं महाशय, अभीतक आपको जो प्रणाम नहीं किया था, यह उसी त्रुटिका मार्जन हुआ।

साहबने कहा—त्रुटि कैसी भाई? मुझ-जैसे आदमीको आखिर तुम प्रणाम क्यों करोगे? मैं तो कहा जा सकता है कि ब्राह्मण ही नहीं।

सो तो खैर आप जानें—अमरके शब्द थे—मैंने तो अपना कर्तव्य भर पालन किया है, बस। बिना जाने-बूझे आदमी न जाने कितनी और कैसी भूलें करता रहता है।

बात शायद वृद्धकी समझमें आई नहीं। बोले—सो तो है ही अमरनाथ! भूल-भ्रमकी कोई सीमा है! किन्तु मुझे प्रणाम न करना तुम्हारी भूल नहीं थी, मैं अब प्रणामके योग्य रहा नहीं।

अमरनाथने रे साहबके इस कथनका कोई उत्तर नहीं दिया, चुप होकर खड़ा रहा।

चुप न रह सकी आलेख्य। पीछे पड़कर बातें सुना देनेकी न उसकी शिक्षा है, न वैसा स्वभाव ही है उसका। किन्तु इस समय उसके विस्मयकी मात्रा क्रोधमें परिणत होकर असह्य हो उठी थी। आलेख्यने कहा—अब तो इनके प्रवासी छात्रोंकी सहायता तुम्हें करनी ही होगी बाबा!

वृद्ध भद्रजनको यह व्यंग छू भी न पाया। आंतरिक सकोचसे वह बोले—सहायता देना ही तो कर्तव्य है बेटी, मगर क्या सोचती हो? इस वक्त क्या हम मदद देनेकी हालतमें हैं भी!

लड़कीने कहा—सहायता ही करना हो तो छिपकर करना बाबा! देव-द्विज-भक्तिकी तुम्हारी बातें कहीं फैल गईं तो मुसीबत होगी!

मुसीबत!—अचंभेके स्वरमें पिताने कहा

हाः हाः हाः, हो. हो. होः—अध्यापक जोरोंसे हँस पड़ा। बोला—मुसीबतकी इसमें क्या बात है? आप रत्ती-भर न डरें। ड्रेसिंग टेबुलों और चमचों-काँटों-डिशोंके ढेरके नीचे सब कुछ दब जायगा।

चोट करनेका अवसर पाकर इस व्यक्तिके प्रति आलेख्यके मनकी कटुता जो कुछ कम हो रही थी सहसा प्रतिपक्षीके परिहासके प्रत्याघातसे और क्रूर हो उठी। सब कुछ भूल-भालकर आलेख्यने कहा—दब सकता है सही लेकिन जूतोंके तलेकी

धूलका दाम भी तो आपको देना होगा न!

कहनेको यह कह तो गई वह, परन्तु शर्मके मारे अपने आप ही सिकुड़ भी गई। वह समझ ही नहीं पाई कि ऐसी फाँपकी बात किस तरह उसके मुँहसे निकल आई। रे साहबने अत्यंत विस्मित होकर बेटीके चेहरेकी ओर देखा। वह चाहे जितने भोले-भाले रहे हों, आलेख्यने आगतुकपर जो तीर छोड़ा था उसका मतलब उनसे छिपा नहीं रह सका। नौकरने आकर सूचना दी कि बड़ी देरसे कुछ सज्जन बाहर बैठकमें प्रतीक्षा कर रहे हैं।

बोलो, आता हूँ—साहबने नौकरको विदा किया और उठे। नरम लहजेमें कहा—यह तुमने गलत कहा बेटी!

फिर अमरनाथकी तरफ होकर बोले—बैठो तुम भाई, अभी आया।

रे साहब बाहर गये। आलेख्य पिताके साथ न जा सकी, वहीं बैठी रही। पिताके ओझल होते ही निहायत शर्मिन्दा होनेसे आहिस्ते-आहिस्ते वह बोली—आपसे मेरा परिचय नहीं था किन्तु अपनी अशिष्टताके कारण मैं खेदका अनुभव कर रही हूँ। आपसे जो कुछ अभी मैंने कहा, सो ठीक नहीं किया।

हाँ, ठीक नहीं किया—अध्यापकने कहा।

आलेख्यको मगर अमरनाथकी यह सीधी-सी बात भी अच्छी न लगी। क्षणभर चुप रहकर उसने कहा—पिताके प्रति कोई सम्मान प्रदर्शित करे, लड़कीके लिए यह प्रसन्नताकी बात होती है। मेरे बाबा बड़े ही भले आदमी हैं। उनके प्रति छलनाका बर्ताव आपको भी शोभा नहीं देता।

छलना!—अमरनाथने चौंककर कहा—छलना कैसी?

आलेख्यने पूछा—आडंबरपूर्वक पैरोंकी धूल सिरपर लेना कहाँतक ठीक था?

ठीक तो वह था ही—अध्यापक बोले।

आलेख्यने कहा—बात अगर ऐसी है तो फिर मैं कुछ भी नहीं कहूँगी। अपनी भूल मैं कबूल करती हूँ।

फिर वह उठकर जाने लगी कि सहसा रुककर बोली—एक बात आपसे और पूछ लूँ। पुरोहिताई आपका पेशा है। बाबाके मनोबलको क्षीण पाकर आपका उच्छ्वसित हो उठना स्वाभाविक है। किन्तु जिनका धार्मिक विश्वास अन्य प्रकारका हो, ब्राह्मणों और देवताओंके लिए जिनमें रत्तीभर भी मान्यता न हो, वे लोग यदि इस प्रकार असत्यको प्रश्रय दें तो आप ही इसे अनुचित नहीं मानेंगे?

अध्यापकने सिर हिलाकर कहा—नहीं, बिल्कुल नहीं। अन्याय या अनुचित तभी होता जब कि स्नेहको दुर्बलतामें पड़कर वह आपको सहारा देते, उनका अपना अविश्वास यदि उनके कर्तव्यमें रुकावट पैदा करता।

अध्यापककी बातोंमें खरोंच थी, आलेख्यकी भौंहें टेढ़ी हो गईं। उसने कहा—अपना विश्वास चाहे जैसा भी रहे, सनातनसे जो जैसा चला आया है उसको उसी प्रकार चलने देना चाहिये—आपका यही मतलब है न?

हँसकर अध्यापक बोले—यह आपकी विलायती किस्मकी मामूली-सी दलील हुई। अपने विश्वासका आखिर एक औचित्य होता ही है। उसके बादकी बातें आप नहीं जानतीं। फिर इस प्रकारकी युक्तियोंसे और कोई लाभ तो होगा नहीं, हाँ, कटुता अवश्य बढ़ेगी। मगर जाने भी दीजिए, मन्दिरके देवी-देवता सच हों चाहे झूठ, बोलते-बतियाते तो वे हैं नहीं। भोग-नैवेद्य न पानेपर भी वे प्रतिवाद नहीं करेंगे। किन्तु इतनी लागतके विदेशी आईने और बर्तन-बासन, चीज-वस्त खरीदनेपर जो एतराज करेगा वह चुप नहीं रह जायेगा, कुछ कहेगा भी। हो सकता है, जोरोंसे कहे। सो, ऐसा काम आप मत कीजियेगा।

इस बार अध्यापकके शब्दोंमें तुच्छताका कुछ ऐसा आभास मिला आलेख्यको, कि उसने अपनेको न केवल तिरस्कृत, बल्कि लांछित महसूस किया। वह कुपित हो उठी। विस्मयविमुग्ध आँखोंसे बारबार उस व्यक्तिकी ओर देखती रही। पहनानेमें हाथ-कते सूतका गाढ़ा था, चादर भी कंधेपर खादीकी ही थी। पैर खाली थे। यह सब लक्ष्य करते ही सहज-कठिन स्वरमें आलेख्यने पूछा—आपका सम्बन्ध असहयोग-आन्दोलनसे तो नहीं है?

"है"—अध्यापकका उतर था।

"यहाँ वटुकदेव किसका नाम है, जानते हैं?"

"जानता हूँ, मेरा ही नाम है वटुकदेव।"

"तभी तो"—आलेख्य बोली—आ गया समझमें सब कुछ। परन्तु आप हमें विदेशी वस्तुएँ खरीदनेसे रोकेंगे किस प्रकार? मेरी प्रजाको लगान देनेसे रोकेंगे?

"असम्भव नहीं"—अध्यापकने कहा—"बड़ी मुश्किलसे बेचारे रुपया जुटा पाते हैं।"

"फिर भी विदेशी बर्तन-बासन हमने अगर खरीद ही लिये तो आप तोड़-फोड़की कोशिश करेंगे ?"

अध्यापकने कहा—तोड़-फोड़ क्यों, आपको खरीदने ही नहीं देंगे।

आलेख्य जरा देरके लिए स्तब्ध रह गई। बड़ी ही मुश्किलसे उसने अपने गुस्सेको काबूमें किया। फिर शान्त स्वरमें कहा—देखिए अमरनाथबाबू, बाबा सीधे साधे आदमी हैं मगर मैं वैसी नहीं हूँ। इसीसे तो मुझे आना पड़ा। आप लोगोंका यह आन्दोलन अच्छा है, या बुरा, पता नहीं। अच्छा भी हो सकता है। लेकिन मेरी रैयतसे, मेरी तहसील-वसूलसे, मेरी जमींदारीसे, मेरी दुनियासे आप अपने आन्दोलनको अलग ही रखिएगा। पुलिसको मैं पसन्द नहीं करती, उसके हाथों देशवासियोंको दण्डित करने-करानेमें मुझे तकलीफ होगी—हाथ-पैर बाँधकर मुझे आप लाचार मत बना दीजिएगा—

इतना कहकर वह उत्तरकी प्रतीक्षा किये बिना ही द्रुतगतिसे चल पड़ी। अमरनाथने पुकारकर कहा—अगर ऐसा हो तो आप अपने तईं न्याय नहीं कर रही हैं।

आलेख्य दरवाजेके पास ठमककर खड़ी हो गई, कहा—न्याय या अन्यायकी मेरी धारणा आपकी धारणासे नहीं भी मिल सकती है।

इतना कहकर वह बाहर निकल गई। जो व्यक्ति वहाँ रह गया वह अवाक् होकर उस मुक्त द्वारकी ओर टकटकी लगाये बैठा रहा।

३

जमींदारीके कामोंमें उत्साहित पाकर रे साहब लड़कीपर बहुत खुश हुए।

मकानोंकी झाड़-पोंछ, लिपाई-पुताई, रंगाई, माल-असबाबका रद्दोबदल—एक ओर यह सब शुरू हुआ और दूसरी ओर जमींदारीके ढीले-ढाले ढाँचोंमें सिल-सिलापन आने लगा; रोज-ब-रोज कड़े-कड़े कानून-कायदे जारी होने लगे। दुनियाके कामोंसे अनभिज्ञ होनेपर भी इस लड़कीमें ऐसी क्षमता छिपी हुई होगी—पेन्शन-याफ्ता डिप्टीमजिस्ट्रेट मैनेजर बाबूनकको इस बातका पता नहीं था। उन्हें आलेख्यकी काबिलियतको स्वीकार करना पड़ा। सुबहसे लेकर शामतक, मैनेजर बाबूको दम मारनेकी भी फुरसत नहीं मिलती। दखल, कब्जा, खाता-खतियान, रोकड़ रोडसेस,

किसे क्या कहते हैं और कैसे कहाँ क्या हुआ करता है—आलेख्य विस्तारपूर्वक मैनेजर बाबूसे सभी मुद्दोंपर बहस करती। मैनेजर बाबूके पसीना छूट जाता। नौकरोंमेंसे किसकी क्या ड्यूटी है, कितना कौन पाता है, मुस्तैद रहनेसे कितना काम किससे लिया जा सकता है—यह सब मालूम करते आलेख्यको देर नहीं लगी। वही उम्रके कुछ नौकरोंपर पहलेहीसे उसकी निगाह थी। जिरहकी चोटमें मैनेजरने यह बात कबूल कर ली कि ऐसे बुड्ढोंसे रत्तीभर फायदा नहीं, और यह भी कि, इससे पहले कई बार साहब तक यह बात पहुँचा दी गई है लेकिन नतीजा कुछ नहीं निकला। साहबकी राय यह थी कि नौकरी बजाते-बजाते जिनकी उम्र पक चुकी है, जो बूढे हो गये हैं, जोर जबरदस्ती करके उनसे काम लेनेकी आवश्यकता नहीं। जमींदारीका काम नये नौकरोंको बहाल कर लेनेसे चल जायगा। और अब, इसीसे नौकरोंकी पल्टन खड़ी हो गई है।

आलेख्यने कहा—और इसीसे बाबाका खर्चा पूरा नहीं पड़ता।

मैनेजर ब्रज बाबू चुप रह गये।

" मैं काम चाहती हूँ, सदावर्त नहीं चलाना है मुझे। "

" आप जो कहेंगी, वही होगा "—ब्रज बाबूने दुहराकर कहा।

दोन-तीन रोज हुए, रे साहब अपने पुराने दोस्तोंसे मिलने कलकत्ते गये हुए थे। इस बीच आलेख्यने एक रोज मैनेजरको बुलवाया। उसके हाथमें छोटी-सी पुर्जी थमाती हुई बोली—समूचे महीनेकी तनखाह देकर इन्हें आप जवाब दे दीजिएगा। बाबा अत्यन्त दुर्बल प्रकृतिके मनुष्य हैं, उनसे यह सब कहनेकी आवश्यकता नहीं।

काँपते हाथसे ब्रजबाबूने पुर्जी ले ली। चश्माके अन्दरसे एक-एक नाम पढकर उनका गला पथरा गया। जरा सँभलकर वह बोले—जो हुकुम, लेकिन यह नयन गांगुली बड़ा ही गरीब है बेचारा! उसका —

" गरीबोंके लिए दुनियामें दूसरा इन्तजाम है। "

" सो तो है, लेकिन "—ब्रजबाबूने दबे स्वरमें कहा।

इसी ' लेकिन ' में आलेख्यने मैनेजरको लटका रखा, आगे नहीं बढने दिया। कहा—देखिए मैनेजर बाबू, बहस मैं बिलकुल नहीं चाहती। अच्छी तरह सोच-समझकर ही मैंने तय किया है, आप अब जा सकते हैं।

जैसी आज्ञा—बूढे ब्रजबाबू हाथमें पुर्जी थामे धीरे-धीरे बाहर निकले।

जमींदारकी शिक्षित लड़कीका मिजाज कैसा होता है, इसका आभास आज उन्हें मिला था। प्रतिवाद करनेकी बेचारेकी हिम्मत हुई ही नहीं। ऐसा न हो कि उनका भी नाम बुड्ढों और अपाहिजोंकी लिस्टमें आ जाय। मैनेजर बाबू यह भी अच्छी तरह जानते थे कि जिनकी नौकरी आज मारी गई है वे लोग कह देने भरसे चुप नहीं बैठेंगे; आवेदन-निवेदन, अर्जी-अपील, सही-सिफारिश आदि नौकर-शाही दुनियामें जो भी कुछ प्रचलित है सभी जुगत वे भिड़ायेंगे, मानेंगे नहीं।

हुआ भी वही। अगले दिन चार दरखास्तें आईं, उन्हें व्रजबाबूने आलेख्यके पास भेज दिया। निवेदनपत्रोंमें बंगालकी दरिद्रताका इतिहास और उसके कारण उल्लिखित थे। हरेकने अपने-अपने परिवारकी विधवाओंका जिक्र किया है और रो-कलपकर जतला दिया है कि सिवा इस दरबारके, उनके लिए और कोई जगह नही है।

किन्तु कोई भी युक्ति आलेख्यको पिघला न सकी। हर दरखास्तके हाशियेपर अप-टु-डेट स्टाइलमें उसने लिख दिया—वह लाचार है, कि वह कुछ नहीं कर सकती। व्रजबाबू यही उम्मीद किये हुए थे। उन्होंने सभीको अकेलेमें बुलाया और कहा—साहब जबतक कलत्तेसे नहीं आ लेते तबतक धीरज रखो, आँसूकी अगर कुछ भी कीमत हो तो वह सिर्फ उस 'खूसट' बूढ़ेसे ही हासिल हो सकेगी।

तीन-चार रोजके बाद सुबह आलेख्य अपनी बैठकके बरामदेमें बैठकर सामने कुछ नक्शे फैलाये हुए थी, पेण्टिंगके कुछ डिजाइन भी थे। उसे डाइनिंग-रूमके लिए एक-दो खाके पसन्द करने थे कि इतनेमें निहायत बूढ़ा एक आदमी वहाँ आ गया। सूरत-शकलसे बीमार, फटे-पुराने-मैले कपड़े, जिनपर बदरंग चिप्पियाँ पड़ी थीं—यही उसका पहनावा था।

"कौन?" सिर उठाकर आलेख्यने जानना चाहा।

तुतलाहटके कारण आदमी फौरन कोई जवाब नहीं दे पाया। कहा—मैं नयन गांगुली हूँ।

आलेख्यने उसे पहचाना और रूखी आवाजमें कहा—क्या है?

अपनी बात कहनेकी कोशिशमें अगत्या उसे फिर मुँह-आँखकी आकृति बिगाड़नी पड़ी, आखिरमें कहा—मेरी लड़कीका नाम है दुर्गा। उसने कहा है, तुम वहाँ जाओ सीधे उनके पास, नौकरी अवश्य मिल जायगी। मेरे एक दोहता (दौहित्र) है, गणपति। बड़ा ही बुद्धिमान,..

इस व्यक्तिकी शक्ल-सूरतपर नजर डालते ही आलेख्यको नफरत हुई थी। बे-सिर-पैरकी उसकी बातें सुनकर आलेख्यने समझ लिया कि जिन्हें जवाब दिया गया है उन सभीमें यही बुड्ढा सबसे बढ़कर निकम्मा है। नक्शों और डिजाइनों-परसे निगाह अलग किये बगैर ही वह बोली—मैं कुछ नहीं कर पाऊँगी, तुम बाहर जाओ बाबा!

बुड्ढा फिर भी नहीं हिला, पहलेकी तरह ही अचल अडिग खड़ा रहा। अपनी दुनियाका हाल-अहवाल बताने लगा—तेरह रुपयेकी इस रोजीको छोड़कर जिन्द-गीका और कोई सहारा नहीं। ब्राह्मणीका स्वर्गवास बहुत पहले हो चुका है। पाँच साल हुए, लड़का उठ गया। दामाद आसाम गया नौकरी करने, तो वहीं संन्यास धारण कर लिया, अब उसका पता ही नही लग रहा है।

तंग आकर आलेख्यने कहा—तुम्हारे घरकी खबरें सुननेकी न मेरी इच्छा है और न वक्त ही है उतना। बाबा, तुम जाओ यहाँसे।

गांगुलीने मानो सुना ही नहीं, बोलता ही रहा अपना दुख। आलेख्यने बैरेको बुलाया और बुड्ढेको जबरन् बाहर किया। फिर वह अपने काममें मन जमाकर बैठ गई।

कलकत्तेसे कुछ-कुछ माल असबाब आने लग गये थे। दूसरे रोज सवेरे एक कीमती और भारी आईना आलेख्य अपने शयनकक्षमें रखवा रही थी कि एक दस-साला गरीब लड़केका हाथ थामे मैनेजर बाबू सामने आये। लड़केका बदन नंगा था, कमरसे फटा-पुराना मैला अँगोछा झूल रहा था। रोते-रोते आँखें लाल होकर सूज आई थीं। आलेख्यने अचरजसे उसकी तरफ देखा तो ब्रजबाबू बोले—बे-वक्त आपको परेशान करने आया हूँ, मजबूरी थी—

कामोंमें मशगूल रहते समय इनमेंसे कोई आ जाता है, तो वह प्रसन्न नहीं हो पाती। घोष साहब वगैरह आने ही वाले थे परन्तु यहीं बहुत सारे कामकाज बाकी पड़े थे। आलेख्य बोली—बहुत जरूरी काम है क्या?

ब्रजबाबूने गर्दन हिलाकर कहा—नयन गांगुलीके वेतनमें फी महीना पाँच-पाँच रुपयोंकी कटौती की गई थी, किन्तु पीछे आपने आश्वासन दिया था कि कुछ सोचा जायगा—

अप्रसन्न मुद्रामें आलेख्यने जवाब दिया—अब मैं इसकी जरूरत नहीं देख रही।

ब्रजबाबूकी इसपर कुछ कहनेकी हिम्मत नही हुई। लड़केको लेकर चुपचाप

वह लौट जा रहे थे। आलेख्यको कौतूहल हुआ, उसने जानना चाहा—यह लड़का कौन है मैनेजर बाबू, गांगुलीका दोहता ?

लड़केने स्वयं ही सिर हिलाकर 'हाँ' किया और रो पड़ा। व्रज बाबू आहिस्ते-आहिस्ते कह गये—कल मोदीने गांगुलीको चावल-दाल देनेसे इन्कार कर दिया। उसे गांगुलीकी बर्खास्तगीका पता लग चुका था और शायद पहलेकी कुछ रकम उसकी बाकी थी। चौका-चूल्हा सब बन्द, किसीने घरमें कल कुछ खाया नहीं। मृत पुत्र और लापता दामादके शोकसे गांगुलीका होश यों भी ठिकाने नहीं था। जाने क्या सोचकर उसने कनेरकी गुठलीको पीसकर पी लिया और आत्महत्या कर डाली। अब बिना पुलिसके आये दाह-संस्कार तक नहीं हो सकता।

आलेख्य चौंककर बोली—आत्महत्या ! किसने की ?

लड़का रो रहा था, बोला—नानाने।

"नाना ? नयन गांगुली ? आत्महत्या कर ली उन्होंने ?"

"जी हाँ,—" व्रजबाबूने कहा—"सवेरे मरे हैं। पाँच रुपये मिलें, तो इन लोगोंका बड़ा ही उपकार होगा।"

मैनेजरने लड़केसे कहा—"बेटा, हाथ जोड़कर कहो—माँ, हमें पाँच रुपयोंकी भिक्षा मिले। बोलो बेटा !"

लड़केने रोते-रोते व्रजबाबूकी बातको दुहरा दिया, वह हाथ जोड़े हुए था। आलेख्य एकटक छोकरेकी तरफ देखती रह गई, मूर्तिकी तरह निस्तब्ध !

छोकरेको लेकर व्रजबाबू चले गये। उनकी समझमें यह बात अच्छी तरह आ गई कि दाहसंस्कारसे लेकर श्राद्धपर्यन्त सब काम सम्पन्न होंगे—रुपयेके अभावमें कोई काम गांगुलीका रुक नहीं जायगा। मगर आलेख्यको सभी कुछ अर्थहीन प्रतीत होने लगा—कमरोंकी पेण्टिंग, साज-सामान, माल-असबाब, ठाट-बाट सब उसके लिए बे-मतलब हो उठे। वहाँसे वह उठ गई, और बैठकमें एक कुर्सीपर चुपचाप आ बैठी।

मिस्त्रीने आकर कहा—सरकार, आलमारी किस जगह रखी जायगी ?

छोड़ दो अभी—आलेख्यने उतरे स्वरमें कहा। रसोईयेने आकर पूछा—खाना क्या बनेगा ?

आलेख्य बोली—कुछ भी बना लो, मुझसे मत पूछो।

मरम्मतके कामको लेकर एक ठीकेदार आया, रुखाईकी चोट खाकर उसे भी

लौट जाना पड़ा। बारबार आलेख्यके मनमें यही बात उठने लगी कि उसे कुछ नहीं चाहिये, इस देशमें वह अब किसीको मुँह दिखानेके लायक नहीं रह गई। विलायती तौर-तरीकेपर बिलकुल नये ढंगसे काम शुरू करते ही ऐसा भारी धक्का खाना होगा, इसकी उसे कल्पना तक नहीं थी। आखिर यह हो क्या गया? द्वेष किसीके प्रति उसके हृदयमें नहीं था, किसीके प्रति कोई अन्याय उसने नहीं किया है। हाँ, शायद एक भूल उससे हुई, किन्तु उसके लिए ऐसा भारी दण्ड! उस व्यक्तिने और कुछ नहीं, सीधे आत्महत्या ही करके बदला लिया!

छोटे ओहदेके एक नौकरको आलेख्यने अकेलेमें बुलाया और उससे एक-एक करके सारी बातें मालूम कर लीं। नयन गांगुलीकी यह नौकरी चालीस साल पुरानी थी। इसमें कभी व्यवधान नहीं पड़ा। सचमुच ही वह महादरिद्र था। छोटे-छोटे दो कच्चे घरोंके अलावा, इस दुनियामें अपनी कहलानेको और कोई जायदाद उसके नहीं थी। तेरह रुपये माहवारवाली यह नौकरी ही बेचारेको जिन्दगीका सहारा रही। इसीपर गांगुलीका समूचा संसार निर्भर था। यह सभी बातें सत्य थीं।

क्या चीज है तेरह रुपया! और एक दरिद्र परिवारका खाना पीना आशा-आकांक्षा, आनन्द-उल्लास इसी तुच्छ रकमके सहारे सालों चालू रहे।

ये चन्द रुपये! कितनी छोटी रकम है यह! जूतोंके जोड़े आलेख्यके पास पड़े हैं। एक भी जोड़ा इनमेंसे इत्ती-सी छोटी रकममें खरीदना असम्भव होगा। क्या कीमत है इन चन्द रुपयोंकी! लेकिन आज एक आदमी अपनी जान देकर इस तुच्छ रकमका यथार्थ मूल्य उसे बता गया—आँखोंमें उँगली डालकर दिखला गया! इस वक्त आलेख्यके हृदयमें आँधी उठी हुई है। दिनभर भूखे छोकरेकी हिचकियाँ उसे कानोंमें आ-आकर चुभने लगीं—इस आर्तनादका ओर छोर आलेख्यको मिल नहीं रहा था।

वह गुम-सुम बैठी थी। पिछले खर्चे एक एक करके उसे याद आने लगे। अपना, अपनी माँका, परिचित बधु बांधवोंका अपने सभ्य समाजका विविध आहार-विहार, उत्सव-आयोजन, आमोद-प्रमोद, खेल-कूद-मनोरंजन, आभूषण-अलंकार, परिधान, साज-राज, यान-वाहन, आरोप-आडम्बर—इन सभी मदोंमें होनेवाले खर्चकी रकमका ख्याल करके आलेख्यकी नसोंका खून सर्द होने लगा। नजदीक ही तिपाई-पर नये आइनेका बिल पड़ा था। आकड़ापर निगाह पड़ते ही उसने सोचा - इतने-में तो नयन गांगुली पांच साल अपना संसार चलाता! आखिर क्या जरूरत थी इस कीमती आइनेकी?

आज शामकी ट्रेनसे रे साहब लौटनेवाले थे। पितामें मानसिक दुर्बलता थी, इसलिए उनके प्रति आलेख्यकी घोर अश्रद्धा थी। यह शिक्षा उसे अपनी माँसे मिली थी। दूसरेकी अनुचित और अन्यायपूर्ण बातोंका प्रतिवाद रे साहबसे नहीं बन पड़ता, एक प्रकारकी दृष्टिलज्जा उन्हें ऐसा करनेसे रोकती है। उनकी इस कमजोरीका फायदा उठाकर न जाने कितने आदमियोंने कितने प्रकारके उपद्रव-उत्पात मचाये हैं! रे साहबने इन खुराफातोंके खिलाफ कभी मुँह नहीं खोला। आलेख्य अब कमर कस चुकी थी, इन तमाम उपद्रवोंकी जड़पर ही वह कुठाराघात करने लगी थी। पुराने अहदी और निकम्मे नौकरोंको बर्खास्त करनेका उसका प्रस्ताव सुनकर ब्रज बाबूने दबी आवाजमें कहा था—साहबकी राय ऐसी नहीं है। आलेख्यने तब मैनेजरकी इस बातपर ध्यान ही नहीं दिया। पिताकी उसी कमजोरीका ख्याल करके, उनकी अनुपस्थितिमें ही, उसने इस सवालको हल कर लेना चाहा था। परन्तु वृद्ध अकर्मण्य यह नयन गांगुली आप ही अपनी हत्या करके आलोकके लिए आज सर्वथा अकल्पित-अज्ञात एक नई दिशाका द्वार जब उन्मुक्त कर गया, तो एकांतमें बैठे बेचारीको ऐसा भास हुआ कि अनेक नये प्रश्नोंका समाधान करनेकी आवश्यकता आ पड़ी है। अनुपस्थित, शक्तिहीन पिताको याद करके मन ही मन वह कहने लगी—हृदयकी दुर्बलता और कोमलता एक चीज नहीं है बाबा, तुम्हें समझनेमें हमने हमेशा भूल की है लेकिन कभी तुमने शिकायत नहीं की!

पिताकी याद आते ही आलेख्यको लगा कि दुनिया सिर्फ दुकान ही नहीं है। बटखरेसे तौलकर दर बाँध देनेसे ही मनुष्यका मनुष्यके प्रति कर्तव्य समाप्त नहीं हो जाता। क्षमताहीन मनुष्यको भी जीनेका अधिकार है—काम करनेका उसका सामर्थ्य लुप्त हो गया है, जिंदा रहनेका उसका अधिकार एकमात्र इसी हेतुसे छीना नहीं जा सकता।

पहले सवेरे और तिपहरिया (अपराह्न) में कचहरी लगती। आलेख्यने आफिस-रूलके मुताबिक कचहरीका वक्त ११ से ४ तक बाँध दिया था। इस दर्म्यान वह खुद ही मैनेजरके करीब बैठकर काम-काज देखा करती। लेकिन आज वह कर्मचारियोंको अपना चेहरा न दिखा सकी, अपने आपको उसने बैठक तक ही महदूद रखा। बाहर निकली ही नहीं। आज उसे खाना-पीना, कुछ भी काम अच्छा नहीं लगा।

लौट जाना पड़ा। बारबार आलेख्यके मनमें यही बात उठने लगी कि उसे कुछ नहीं चाहिये, इस देशमें वह अब किसीको मुँह दिखानेके लायक नहीं रह गई। विलायती तौर-तरीकेपर बिलकुल नये ढंगसे काम शुरू करते ही ऐसा भारी धक्का खाना होगा, इसकी उसे कल्पना तक नहीं थी। आखिर यह हो क्या गया? द्वेष किसीके प्रति उसके हृदयमें नहीं था, किसीके प्रति कोई अन्याय उसने नहीं किया है। हाँ, शायद एक भूल उससे हुई, किन्तु उसके लिए ऐसा भारी दण्ड! उस व्यक्तिने और कुछ नहीं, सीधे आत्महत्या ही करके बदला लिया!

छोटे ओहदेके एक नौकरको आलेख्यने अकेलेमें बुलाया और उससे एक-एक करके सारी बातें मालूम कर लीं। नयन गांगुलीकी यह नौकरी चालीस साल पुरानी थी। इसमें कभी व्यवधान नहीं पड़ा। सचमुच ही वह महादरिद्र था। छोटे-छोटे दो कच्चे घरोंके अलावा, इस दुनियामें अपनी कहलानेको और कोई जायदाद उसके नहीं थी। तेरह रुपये माहवारवाली यह नौकरी ही बेचारेको जिन्दगीका सहारा रही। इसीपर गांगुलीका समूचा संसार निर्भर था। यह सभी बातें सत्य थीं।

क्या चीज है तेरह रुपया! और एक दरिद्र परिवारका खाना-पीना आशा-आकांक्षा, आनन्द-उल्लास इसी तुच्छ रकमके सहारे मानों चालू रहे।

ये चन्द रुपये! कितनी छोटी रकम है यह! जूतोंके जोड़े आलेख्यके पास पड़े हैं। एक भी जोड़ा इनमेंसे इत्ती-सी छोटी रकममें खरीदना असम्भव होगा। क्या कीमत है इन चन्द रुपयोंकी! लेकिन आज एक आदमी अपनी जान देकर इस तुच्छ रकमका यथार्थ मूल्य उसे बता गया—आँखोंमें उँगली डालकर दिखला गया! इस वक्त आलेख्यके हृदयमें आँधी उठी हुई है। दिनभर भूखे छोकरेकी „हिचकियाँ उसे कानोंमें आ-आकर चुभने लगीं—इस आर्तनादका ओर छोर आलेख्यको मिल नहीं रहा था।

वह गुम-सुम बैठी थी। पिछले खर्चे एक एक करके उसे याद आने लगे। अपना, अपनी माँका, परिचित बंधु बांधवोंका अपने सभ्य समाजका विविध आहार-विहार, उत्सव-आयोजन, आमोद-प्रमोद, खेल-कूद-मनोरंजन, आभूषण-अलंकार, परिधान, साज-बाज, यान-वाहन, आरोप-आडम्बर—इन सभी मदोंमें होनेवाले खर्चकी रकमका ख्याल करके आलेख्यकी नसोंका खून सर्द होने लगा। नजदीक ही तिपाई-पर नये आइनेका बिल पड़ा था। आंकड़ापर निगाह पड़ते ही उसने सोचा - इतने-में तो नयन गांगुली पाँच साल अपना संसार चलाता! आखिर क्या जरूरत थी इस कीमती आइनेकी?

आज शामकी ट्रेनसे रे साहब लौटनेवाले थे। पितामें मानसिक दुर्बलता थी, इसलिए उनके प्रति आलेख्यकी घोर अश्रद्धा थी। यह शिक्षा उसे अपनी माँसे मिली थी। दूसरेकी अनुचित और अन्यायपूर्ण बातोंका प्रतिवाद रे साहबसे नहीं बन पड़ता, एक प्रकारकी दृष्टिलज्जा उन्हें ऐसा करनेसे रोकती है। उनकी इस कमजोरीका फायदा उठाकर न जाने कितने आदमियोंने कितने प्रकारके उपद्रव-उत्पात मचाये हैं! रे साहबने इन खुराफातोंके खिलाफ कभी मुँह नहीं खोला। आलेख्य अब कमर कस चुकी थी, इन तमाम उपद्रवोंकी जड़पर ही वह कुठाराघात करने लगी थी। पुराने अहदी और निकम्मे नौकरोंको बर्खास्त करनेका उसका प्रस्ताव सुनकर व्रज बाबूने दबी आवाजमें कहा था—साहबकी राय ऐसी नहीं है। आलेख्यने तब मैनेजरकी इस बातपर ध्यान ही नहीं दिया। पिताकी उसी कमजोरीका ख्याल करके, उनकी अनुपस्थितिमें ही, उसने इस सवालको हल कर लेना चाहा था। परन्तु वृद्ध अकर्मण्य यह नयन गांगुली आप ही अपनी हत्या करके आलोकके लिए आज सर्वथा अकल्पित-अज्ञात एक नई दिशाका द्वार जब उन्मुक्त कर गया, तो एकांतमें बैठे बेचारीको ऐसा भास हुआ कि अनेक नये प्रश्नोंका समाधान करनेकी आवश्यकता आ पड़ी है। अनुपस्थित, शक्तिहीन पिताको याद करके मन ही मन वह कहने लगी—हृदयकी दुर्बलता और कोमलता एक चीज नहीं है बाबा, तुम्हें समझनेमें हमने हमेशा भूल की है लेकिन कभी तुमने शिकायत नहीं की!

पिताकी याद आते ही आलेख्यको लगा कि दुनिया सिर्फ दुकान ही नहीं है। बटखरेसे तौलकर दर बाँध देनेसे ही मनुष्यका मनुष्यके प्रति कर्तव्य समाप्त नहीं हो जाता। क्षमताहीन मनुष्यको भी जीनेका अधिकार है—काम करनेका उसका सामर्थ्य लुप्त हो गया है, जिंदा रहनेका उसका अधिकार एकमात्र इसी हेतुसे छीना नहीं जा सकता।

पहले सवेरे और तिपहरिया (अपराह्न) में कचहरी लगती। आलेख्यने आफिस-रूलके मुताबिक कचहरीका वक्त ११ से ४ तक बाँध दिया था। इस दर्म्यान वह खुद ही मैनेजरके करीब बैठकर काम-काज देखा करती। लेकिन आज वह कर्मचारियोंको अपना चेहरा न दिखा सकी, अपने आपको उसने बैठक तक ही महदूद रखा। बाहर निकली ही नहीं। आज उसे खाना-पीना, कुछ भी काम अच्छा नहीं लगा।

इसी तरह जब सारा दिन कट गया, शाम होने ही वाली थी। खिड़कीसे झाँककर आलेख्यने देखा, स्टेशनसे खाली बग्गी लौटी आ रही है, साहब नहीं आये। उनके आने-जानेके प्रोग्राममें कभी गड़बड़ी नहीं होती थी। निश्चित समयपर पिताके न आनेपर आलेख्यको चिंता भी हुई और एक प्रकारके छुटकारेका भी अहसास हुआ। वह अच्छी तरह जानती थी, पिता जरा भी नाराज न होंगे, एक भी कठोर शब्द उनके मुँहसे नहीं निकलेगा। परन्तु उनके मूक-व्यथित प्रश्नका उत्तर वह क्या देगी? यह समस्या बड़ी ही विषम थी। आज पिताजी नहीं आये, चलो जान बची—इसी गुन-धुनमें पड़ी आलेख्य तनिक-सी शांतिका अनुभव कर रही थी कि नौकरने आकर खबर दी—पंडितजी मिलने आये हैं।

"कौन पंडितजी? कहाँ हैं वह?"

चिकके पाससे ही आवाज आई—मैं हूँ अमरनाथ, यहीं हूँ।

"आइए"—आलेख्य उठकर खड़ी हो गई। 'ना' करनेका न तो उसे मौका ही मिला, न फुरसत ही मिली।

हाथ जोड़कर आलेख्यने नमस्कार किया, किंतु अध्यापक महानुभाव आज भी उसी रोजकी तरह अचल मुद्रामें खड़े रहे। बदलेमें नमस्कार करनेकी रत्ती-भर भी चेष्टा उनकी ओरसे नहीं हुई। आलेख्यने देखा अवश्य, परन्तु आज उसका मन संतुलन खो बैठा था। वह किसीकी भूलको पकड़नेकी स्थितिमें आज नहीं थी।

पंडितजी स्वयं कुर्सीपर बैठ गये। क्षणभर बाद उन्होंने कहा—विशेष प्रयोजनसे ही अभी आपके पास मुझे आना पड़ा है, अन्यथा इस समय आपको कष्ट नहीं देता।

गाँव-घरमें कहीं कोई बात हो, यह शख्स उसकी जड़में किसी न किसी तरह जुड़ा रहता है—नयन गांगुलीकी आत्महत्याके संबंधमें ही महाशयजी कुछ टोह लेने आये होंगे—आलेख्यने सोचा—मैं सब समझती हूँ। उसने यह भी सोच लिया कि पिताकी अनुपस्थितिमें इस व्यक्तिसे किस प्रकार बातचीत करनी होगी, क्या जवाब देना होगा। अपनेको दृढ़ करके, शांत स्वरमें उसने कहा—कहिए?

पंडितजी कुछ मुसकुराये और बोले—आज आपका हृदय अति खिन्न है, यह बात और कोई चाहे न समझे परंतु मैं तो भली-भाँति समझ रहा हूँ। अस्तु, उस बारेमें बातें करने नहीं आया हूँ मैं। मैं आपका शत्रु नहीं हूँ।

आलेख्यको लगा कि यह आदमी अभी व्यंग-वाणी ही छेड़ने आया है। फिर भी

वह चंचल नहीं हुई, मनको उसने कावूमें रखा। सहज-भावसे ही वह बोली—आप अभी अपनी वात कीजिए।

अध्यापक महाशय अमरनाथ वावूने कहा—कल हाट (पेठ) का दिन है, मगर आज ही पुलिस आ गई है शहरसे। सव घेर लिया है। आपने यह काम क्यों किया?

आलेख्य चौंक उठी। जिस रोज वह यहाँ आई, उसीके दूसरे रोज सवेरे विना किसी खास जानकारीके ही डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेटको एक पत्र उसने भेज दिया था। हाटके वारेमें जो भी कुछ उस पत्रमें लिखा गया था, उसमेंसे अधिकतर अफवाहें और कानाफूसीपर ही निर्भर वातें थीं। इस पत्रका क्या नतीजा निकलेगा, आलेख्यको पता नहीं था। हो सकता है, मजिस्ट्रेटतक पत्र न भी पहुँचा हो! हो सकता है, पत्रपर मजिस्ट्रेटका ध्यान ही न गया हो! काफी अर्सा गुजर गया था, आलेख्य खुद भी यह सव भूल गई थी। और आज इतने दिनों वाद उसे यह खबर मिली।

आलेख्यने नर्मीसे ही कहा—ठीक तो है, पुलिसके आ जाने मात्रसे क्या हर्ज हुआ?

पंडितजीने कहा—आप वाहर थीं, आपको क्या पता! लेकिन मुझे तो सव पता है। आसानीसे इसका अन्त नहीं होनेवाला है! असभव नहीं, दो-चार लाशें भी गिर सकती हैं।

"लाश!"—आलेख्य डरकर वोली "लाश गिरेगी? किसकी?"

"वता नहीं सकता। हो सकता है, मेरी भी लाश गिरे।"

"आपकी?"

"असम्भव नहीं। आत्मसम्मानके नामपर यदि मरना पड़ा, तो मुझे ही अगुआई करनी होगी...अभी जरा जल्दीमें हूँ। और एक जगह जाना है, दूर। कल सवेरे आपको समय है?

आलेख्यने परेशान स्वरमें कहा—हो सकता है। आप जव वुला भेजेंगे उसी वक्त मैं हाजिर होऊँगी। वावा हैं नहीं। मगर आप झूठमूठका डर मुझे न दिखावें।

अमरनाथकी आवाजमें आक्रमणका उत्ताप लेशमात्र भी नहीं था। वह मुसकुराते उठे, खड़े होकर वोले—ना, रौव या आतंक जमानेकी आदत मुझे नहीं है। लेकिन कल सवेरे थोड़ा वक्त मेरे लिए जरूर निकालिएगा।

इसी तरह जब सारा दिन कट गया, शाम होने ही वाली थी। खिड़कीसे झाँककर आलेख्यने देखा, स्टेशनसे खाली बग्गी लौटी आ रही है, साहब नहीं आये। उनके आने-जानेके प्रोग्राममें कभी गड़बड़ी नहीं होती थी। निश्चित समयपर पिताके न आनेपर आलेख्यको चिंता भी हुई और एक प्रकारके छुटकारेका भी अहसास हुआ। वह अच्छी तरह जानती थी, पिता जरा भी नाराज न होंगे, एक भी कठोर शब्द उनके मुँहसे नहीं निकलेगा। परन्तु उनके मूक-व्यथित प्रश्नका उत्तर वह क्या देगी? यह समस्या बड़ी ही विषम थी। आज पिताजी नहीं आये, चलो जान बची—इसी गुन-धुनमें पड़ी आलेख्य तनिक-सी शांतिका अनुभव कर रही थी कि नौकरने आकर खबर दी—पंडितजी मिलने आये हैं।

"कौन पंडितजी? कहाँ हैं वह?"

चिकके पारसे ही आवाज आई—मैं हूँ अमरनाथ, यहीं हूँ।

"आइए"—आलेख्य उठकर खड़ी हो गई। 'ना' करनेका न तो उसे मौका ही मिला, न फुरसत ही मिली।

हाथ जोड़कर आलेख्यने नमस्कार किया, किंतु अध्यापक महानुभाव आज भी उसी रोजकी तरह अचल मुद्रामें खड़े रहे। बदलेमें नमस्कार करनेकी रत्ती-भर भी चेष्टा उनकी ओरसे नहीं हुई। आलेख्यने देखा अवश्य, परन्तु आज उसका मन संतुलन खो बैठा था। वह किसीकी भूलको पकड़नेकी स्थितिमें आज नहीं थी।

पंडितजी स्वयं कुर्सीपर बैठ गये। क्षणभर बाद उन्होंने कहा—विशेष प्रयोजनसे ही अभी आपके पास मुझे आना पड़ा है, अन्यथा इस समय आपको कष्ट नहीं देता।

गाँव-घरमें कहीं कोई बात हो, यह शख्स उसकी जड़में किसी न किसी तरह जुड़ा रहता है—नयन गांगुलीकी आत्महत्याके संबंधमें ही महाशयजी कुछ टोह लेने आये होंगे—आलेख्यने सोचा—मैं सब समझती हूँ। उसने यह भी सोच लिया कि पिताकी अनुपस्थितिमें इस व्यक्तिसे किस प्रकार बातचीत करनी होगी, क्या जवाब देना होगा। अपनेको दृढ़ करके, शांत स्वरमें उसने कहा—कहिए?

पंडितजी कुछ मुसकुराये और बोले—आज आपका हृदय अति खिन्न है, यह बात और कोई चाहे न समझे परंतु मैं तो भली-भाँति समझ रहा हूँ। अस्तु, उस बारेमें बातें करने नहीं आया हूँ मैं। मैं आपका शत्रु नहीं हूँ।

आलेख्यको लगा कि यह आदमी अभी व्यंग-वाणी ही छेड़ने आया है। फिर भी

वह चचल नहीं हुई, मनको उसने काबूमें रखा। सहज-भावसे ही वह बोली—आप अभी अपनी बात कीजिए।

अध्यापक महाशय अमरनाथ बाबूने कहा—कल हाट (पेठ) का दिन है, मगर आज ही पुलिस आ गई है शहरसे। सब घेर लिया है। आपने यह काम क्यों किया?

आलेख्य चौंक उठी। जिस रोज वह यहाँ आई, उसीके दूसरे रोज सबेरे बिना किसी खास जानकारीके ही डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेटको एक पत्र उसने भेज दिया था। हाटके बारेमें जो भी कुछ उस पत्रमें लिखा गया था, उसमेंसे अधिकतर अफवाहें और कानाफूसीपर ही निर्भर बातें थीं। इस पत्रका क्या नतीजा निकलेगा, आले-ख्यको पता नहीं था। हो सकता है, मजिस्ट्रेटतक पत्र न भी पहुँचा हो। हो सकता है, पत्रपर मजिस्ट्रेटका ध्यान ही न गया हो। काफी अर्सा गुजर गया था, आलेख्य खुद भी यह सब भूल गई थी। और आज इतने दिनों बाद उसे यह खबर मिली।

आलेख्यने नर्मीसे ही कहा—ठीक तो है, पुलिसके आ जाने मात्रसे क्या हर्ज हुआ?

पंडितजीने कहा—आप बाहर थीं, आपको क्या पता। लेकिन मुझे तो सब पता है। आसानीसे इसका अन्त नहीं होनेवाला है। असभव नहीं, दो-चार लाशें भी गिर सकती हैं।

"लाश!"—आलेख्य डरकर बोली "लाश गिरेगी! किसकी?"

"बता नहीं सकता। हो सकता है, मेरी भी लाश गिरे।"

"आपकी?"

"असम्भव नहीं। आत्मसम्मानके नामपर यदि मरना पड़ा, तो मुझे ही अगुआई करनी होगी...अभी जरा जल्दीमें हूँ। और एक जगह जाना है, दूर। कल सबेरे आपको समय है?

आलेख्यने परेशान स्वरमें कहा—हो सकता है। आप जब बुला भेजेंगे उसी वक्त मैं हाजिर होऊँगी। बाबा हैं नहीं। मगर आप झूठमूठका डर मुझे न दिखावें।

अमरनाथकी आवाजमें आक्रमणका उत्ताप लेशमात्र भी नहीं था। वह मुस-कुराते उठे, खड़े होकर बोले—ना, रौब या आतंक जमानेकी आदत मुझे नहीं है। लेकिन कल सबेरे थोड़ा वक्त मेरे लिए जरूर निकालिएगा।

इतना कहकर अध्यापक महाशय बाहर निकले।

४

शाम अभी अभी हुई है। नौकर लैंप नहीं दे गया है अभी। थकावट, पछतावा और चिन्ताके भारसे बुरी तरह दबकर आलेख्य चुपचाप बैठी थी। ऊपर शयनकक्षमें जाय और सो रहे, इतना भी सामर्थ्य अपनेमें वह नहीं पा रही थी।

उसी वक्त एक वृद्ध व्यक्तिने चिक हटाकर अन्दर पैर रखा। आलेख्य विस्मय और विरक्तिसे सीधी होकर बैठी और बोली—कौन?

सामनेकी एक कुर्सी सावधानीसे अपनी ओर खींचकर बूढ़े सज्जन बैठ गये, फिर बोले—मेरा नाम निमाई भट्टाचार्य है। अमरनाथसे मेरा दूरका रिश्ता है, वह मेरा पोता लगेगा। अमरनाथ ही क्यों, पास-पड़ोसमें जितने हैं सभी मेरे पोते होंगे। उमरमें मुझसे बड़ा इस हल्केमें और कोई नहीं है। तुम्हारे पिता राधामाधव बचपनमें मुझे चाचा कहते थे। मैं अपने अन्तिम दिन काशीमें बिता रहा था। इस बार ऐसी गर्मी वहाँ पड़ी कि मुझसे रहा नहीं गया। अहा! बंगालका क्या कोई देश मुकाबला करेगा! दूसरा कोई देश ऐसा नहीं—स्वर्ग! तुम कैसी हो? तुम्हारे पिता कैसे हैं?

आलेख्यने गर्दन हिलाकर कहा—बाबा अच्छे हैं। लेकिन यहाँ हैं नहीं, बाहर गये हैं। क्या काम था?

"मगर, आज ही तो राधामाधवके लौटनेकी बात थी?"

"थी लेकिन अभीतक वह आये नहीं हैं। आनेपर कल आप मुलाकात कर लीजिएगा।"

आलेख्यके मुँहकी ओर देखकर वह जरा मुसकुराए और बोले—ना बेटी, ना। मेरी स्थिति अच्छी है, मैं कुछ माँगने नहीं आया हूँ। अमरनाथसे सुन रखा है, तुम विलायत भी हो आई हो। सुशिक्षित लड़कियोंके प्रति मेरा अत्यन्त स्नेह है। उनसे कुछ बातें कर लेनेका मोह मुझे रहा है परन्तु कभी मौका ही नहीं मिला। इस तरहकी लड़कियाँ एक नगण्य वृद्धसे बात करना भला क्यों चाहने लगीं? सोचा, घरके पास ही तुम रह रही हो। ऐसी सुविधा फिर मिले या न मिले। और मैं तो बेटी, पका आम हूँ, के रोज टिकूँगा? लेकिन तुम इस बूढ़ेपर नाराज तो नहीं हो गई हो?

"जी नहीं"—आलेख्य लजा गई, नम्र होकर बोली—"तबियत ठीक नहीं थी आज!"

निमाई बोले—यह भी मैं सब सुन चुका हूँ। अमरनाथ सब कुछ बता गया है मुझे। बड़ा ही अच्छा लड़का है। इस उम्रका दूसरा कोई नहीं दिखाई पड़ता जो अमरनाथकी बराबरी करे।...पगलेने आत्महत्या कर ली! हाय! दुखकी लपटें वह बर्दाश्त न कर सका। भगवान् जिसकी शक्तिका हरण कर लेते हैं वह आदमी, आदमी नहीं रह जाता है बेटी! बारबार यही सोचता हूँ। गांगुलीके मकानके पाससे ही रास्ता है, उधरहीसे तो आया हूँ। दाह-संस्कारके लिए लाशको लोग ले गये, वे अभीतक श्मशानसे लौटे नहीं थे। अन्दर उसकी लड़की गला फाड़-फाड़कर रो रही थी—आहा! तनिकसे पापका इतना भारी दण्ड! चीजें आईं और गईं मगर धब्बा जिंदगीभर नहीं मिटनेका। सोचा मैंने, भीतर जाकर कहूँ कि दुर्गा, चीख-चिल्लाकर क्या करेगी? कोसना बेकार है! बेचारीको क्या पता था कि इतना बड़ा कुकांड हो जायगा। पता होता तो कभी तुम्हारे पिताको वह (आलेख्य) जवाब नहीं देती दुर्गा! मेरा परिचय नहीं है, फिर भी मैं उसे भली-भाँति पहचानता हूँ। जो होना था, हो गया। जो बच रहा वह तो आजीवन पछतायगा! इस कलंकका टीका कभी नहीं मिटेगा! गहराईसे सोचता हूँ तो यह ठीक नहीं लगता। इस दुर्घटनाने गांगुलीकी लड़कीको जैसी चोट पहुँचाई है, उससे रत्तीभर भी कम चोट तुमको नहीं लगी है बेटी!

आलेख्य पहलेसे ही परेशान थी। अब इस वृद्ध आगंतुककी अनावश्यक बातोंसे वह और भी तंग आ गई। बूढ़े सज्जन अपनी बात जब कह चुके तो विस्मयके क्षणभर वह चुप रही और फिर उनकी ओर देखने लगी। तब बोली—किसने कहा आपसे यह सब? कैसे आपको मालूम हुआ कि मुझे चोट पहुँची है?

वृद्धने कहा—अमरनाथने तो यही बतलाया था।

आलेख्य धीरे-धीरे बोली—वाह, क्या खूब अटकल भिड़ाई है अमरनाथ बाबूने भी! उनकी बात वही जानें। गांगुली महाशय नौकरीसे भली-भाँति छुटकारा पा चुके थे। अपनी जमींदारीका काम कायदेसे चलानेकी कोशिश करना तो कोई गुनाह नहीं?

निमाईने कहा—गुनाहकी बात तो अमरनाथने की नहीं, एक बार भी उसने अपराधी रूपमें तुम्हारा जिक्र नहीं किया है।

" मैंने तो बस अपने कर्तव्यका पालन मात्र किया । "

यह सुनकर बूढेने अँधेरेमें आलेख्यके मुँहको ठिकियाकर देखनेकी कोशिश की और मुसकुरा दिया। बोले—इधर-उधरकी बातें करके सत्तर सालके इस बुड्ढेको तुम ठगोगी, सो नहीं होगा बेटी ! ' कर्तव्य ' कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसको नाप-जोखकर देखा जाय। एक अबूझ, अपग दुखिया आदमी तुम्हारा दाना-पानी खा-पीकर अपना वक्त काट रहा था। तुमने उसका दाना-पानी बद कर दिया तो उसने आत्महत्या कर ली !—केवल कर्तव्यकी दुहाई देकर अब तुम अपने सतापपर पर्दा नहीं डाल सकतीं। बेचारेकी बदनसीब लड़की गला फाड़ फाड़कर मरी जा रही है, नाती रोते रोते मसान गया है—इस दुखका न आदि है न अत। मुझसे मत छिपाओ बेटी, मैं तो सब देख रहा हूँ। गमके मारे तुम्हारा कलेजा फटा जा रहा है.. चादरकी खूँटसे बूढेने अपनी गीली आँखोंको पोंछना शुरु किया कि सामनेसे 'खट' की आवाज आई। निमाई चौंक उठे। अभीतक आलेख्य अपनेको थामकर सब बाते सुन रही थी किन्तु बूढेकी बातके खतम होते ही सामनेके टेबुलपर उसने जोरसे माथा पटका और हू हू करके वह वहीं रो पड़ी।

बूढे निमाई गुमसुम बैठे रहे। आलेख्यको उन्होंने रोने दिया, समझा-बुझाकर चुप करनेकी कोशिश नहीं की। ऐसा करना उन्हें अप्रासगिक लगा। पाँच-छ मिनट बाद वह स्वयं उठ बैठी और आँखें पोंछने लगी। स्नेहपूर्ण और कोमल स्वरमें निमाईने कहा—यह मै जानता था बेटी ! तुमने हृदय ऐसा न पाया होता तो यह सारी लिखाई-पढाई बेकार साबित होती है न ? जमींदारीका यह भारी बोझ तुम्हारे बूतेका नहीं बेटी।

वह और कभी शायद ही किसीके सामने इस प्रकार अपनी कमजोरीको जाहिर होने देती, लेकिन आज इस अपरिचित व्यक्तिके समक्ष मर्यादा-पालनकी रत्तीभर भी कोशिश आलेख्यने नहीं की। यह उसके बूतेसे बाहरकी बात थी। भीगी आँखोंसे और टूटे स्वरमें वह बोली—आपके देशमें रहने आई थी मैं, परन्तु इस घटनाके बाद किसीको मुँह नहीं दिखा सकूँगी।

क्षणभर सोचकर बूढे सज्जन बोले—यह सकोच, यह लज्जा झूठी है—ऐसा मै नहीं कहूँगा, इस तरहकी सांत्वना झूठी होगी। हमेशाके लिए अगर यह सब कुछ छोड़कर चली जा सको, तभी जाना सार्थक होगा, नहीं तो बेकार। यह

नहीं हो सकता कि यहींका रस चूसकर तो बाहर तुम जिन्दगी बिताओ और यहाँके अपने आश्रित जनकी आत्महत्याकी जिम्मेवारीसे बरी रहो। यहाँकी लाज-शरम दबाकर ही दूसरी जगह यदि अपना मुँह दिखला सको, तो मेरी रायमें, फिर तुम यहीं रहो बेटी। लोगोंको ठगनेकी क्या जरूरत है !

मेरा तो इसमे कुछ अपराध नहीं—आलेख्यने कहा—यहाँवाले मगर यह बात नहीं मानेंगे।

यह तो खैर ठीक होगा भी नहीं कि वे ऐसा मानें।

आलेख्य सहसा कठोर हो गई, बोली—आप गलतीपर हैं।

हो सकता है—निमाईने फौरन जवाब दिया—लेकिन आज तुम्हें मैं आशीर्वाद देता हूँ। तुममे इतना साहस हो कि एक दिन इस सत्यको स्वीकार कर ले सको।

नौकर लालटेन लाकर दे गया। उस रोशनीमें आलेख्य अपना मुँह ऊपर नहीं उठा सकी। निमाई कहता गया—पढी-लिखी लड़की हो तुम, दूरसे मैं तुम्हें देखने आया हूँ। जो शिक्षा तुम्हें मिली है उसके कारण तुम्हारे हृदयपर यही खचित हो गया है कि दुनियामे योग्यता (काबलियत) ही सबसे बड़ी वस्तु है। लेकिन, हमारा यह सोनेका देश कभी और किसी भी रूपमें इस बातको मान नहीं सका। इस देशमें अपग, कमजोर, अयोग्य-अकर्मण्यको भी रोटी-कपड़ा पानेका हक है। अयोग्य होनेके कारण वह जिन्दा रहनेके अपने अधिकारसे वंचित नहीं किया जा सकता। मगर गांगुलीको तुमने इस अधिकारसे वंचित कर दिया। उसके दुःख एवं दुर्दशाकी सभी बातें तुम्हें मालूम थीं, फिर भी प्राणोंके मूल्यके तौरपर तुमने बेचारेसे खाता-सरिश्ता लिखनेकी योग्यताकी माँग की ! तुमने तय कर लिया कि जो तुम्हारा काम नहीं करेगा उसका वेतन, उसके दाना-पानीकी छोटी-सी रकम तुम्हारे केस-बाक्समें जमा होती जाय। है न बेटी ?

आलेख्यका गला फिर भर आया, वह बोली—बात यहाँतक बढ जायगी, यह मैंने कभी सोचा ही नहीं था। मैं ऐसी क्षुद्र नहीं हूँ।

“ यह मैं जानता था, तभी तो तुम्हारी पढाईका जिक्र कर बैठा। ” वृद्ध बोलते गये “ अमरनाथ कहता था, तुम्हारा खर्च भारी है। कपड़े-लत्ते, जूते-मोजे, आइना-कन्घी, साबुन-तेल, स्नो-क्रीम, पाउडर-लिपिस्टिक... भारी रकम उठ जाती है इन चीजोंपर। एक आदमीकी रोटी-कपड़ेकी जरूरतसे अपनी इन विलास-सामग्रीकी

जरूरतको बड़ी समझनेकी कुशिक्षा यदि कहीं तुम्हें मिली हो तो उसे आज भुला देना ही बेहतर होगा। तुम्हें यह तथ्य हृदयंगम कर लेना होगा कि कमजोर—नाकाबिल आदमीको भी जीनेका हक है। संयोगसे, आज तुम इतनी बड़ी जमींदारीकी अधिस्वामिनी हो। तुम्हारी प्रसाधन-सामग्री जुटती रहे, इसलिए एक आदमीको आत्म-हत्या करना होगा—यह नहीं चलनेका। जिस सामाजिक नियमके अनुसार इतना बड़ा अन्याय तुम कर पाई, बावजूद पुराना होनेके, वह नियम मानव समाजका श्रेष्ठ एव चरम विधान नहीं हो सकता। मैं तो खैर बुड्ढा हो चुका हूँ, वह दिन देखनेका अवसर मुझे प्राप्त नहीं होगा किन्तु ऐसा समय शीघ्र ही आनेवाला है। अक्षम्य, अकर्मण्य कहकर आज तुम जिनके अधिकारोंका अपहरण कर रही हो उनके ही बाल-बच्चे तुमसे कैफियत तलब करेंगे। मानवताके उस न्यायालयमें जमींदारीके जोरसे ही किसीकी कोई दलील सगत एवं सच्ची नहीं मान ली जायगी, मेरी यह बात गाँठ बाँध लो बेटी!

निमाईकी बातोंका आलेख्यने विश्वास कर लिया हो, ऐसी बात नहीं। और वक्त होता तो वह इन अप्रिय-कठोर बातोंसे नाराज हो उठती। किन्तु, आज बेचारीकी मानसिक स्थिति ठीक नहीं थी। उत्कण्ठा, सकोच एव धैर्यपूर्वक उसने जिज्ञासा की—क्या आप सोचते हैं, प्रजा विद्रोह करेगी? रैयत क्या इसी रूपमें सोच रही है?

निमाईने कहा—बेटी, 'विद्रोह' शब्द कानोंको अच्छा नहीं लगता है, बहुतोंको नापसन्द है यह शब्द। और, सूझ-बूझ या मनोभाव कोई कायमी चीज नहीं होता, इसकी अपनी कोई जगह नहीं हुआ करती, यानी परिस्थिति और शिक्षाके ही फल हैं मनोभाव। एक दूसरेसे कन्धा मिलाकर द्रुत गतिसे प्रजाजन जिस ओर बढ रहे हैं, मैंने अभी उसी ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित किया है। अब इन्हें ठगा नहीं जा सकता। समझदार लोगोंने अफीम खिलाकर आजतक इन्हें सुला रखा था, आज भूखकी आगसे इनकी नींद टूट गई है। खाली पेट लेकर ये लोग पुरानी नीति-रीति, कानून-कायदेके जोरसे मान जाएँगे, ऐसा मत सोचो बेटी!

आलेख्य कुछ क्षण चुप रही, सोचकर फिर बोली—तो यह सब क्या हमारी विदेशी शिक्षाका ही दोष है?

"दोषकी बात तो मैंने कही नहीं, हाँ, इतना अवश्य कहा है कि यह उसीका फल है।"

"कुफल !"—आलेख्य बोली ।

निमाई हँस पड़े। कहा—बात जरा छितरा गई बेटी, खैर । सुफल-कुफलकी बात तो मैंने की नहीं, हाँ, फलकी बात कर रहा था मैं । इन्हीं आँखोंसे देखा है, एक पत्ता तम्बाकू और छः पैसेकी मजदूरीपर लोग दिनभर काम करते थे । इसीमें उनके परिवारका भरण-पोषण हो जाता था, मजेमें काम चलता था बेटी ! मुल्कमें रुपयेकी कमी उन दिनों जरूर थी मगर खाने-पीनेकी चीजोंका इफरात था । रेल नहीं, जहाज नहीं—विदेशी साहब और स्वदेशी मारवाड़ी मुल्कका अनाज उन दिनों बाहर नहीं भेज पाते थे और न करोड़ोंका मुनाफा बटोर पाते थे । उन्हें कोटि-कोटि लोगोंकी जिन्दगीको बर्बाद करनेका आज-कलका-सा मौका नहीं मिलता था । भुक्खड़ोंके मुँहसे छीने कौरोंको सोना-चाँदीमें तबदील करनेवाले जुए-बाज सटोरिये उन दिनों नहीं पैदा हुए थे ।—बूढ़ेकी आँखें छल-छला आईं लेकिन वह कहते गये—बेटी, मैं जब छोटा था उन दिनों, जिंदा रहनेकी योग्यताको प्रमाणित करनेके लिए ऐसा कड़ा इम्तिहान किसीको नहीं देना पड़ता था । आज अपने देशकी क्या दशा है ! मुट्ठीभर जंगली अनाज भी अब बर्बाद नहीं जा सकता । अक्लवाले और पूँजीवाले मिलकर उसे सोना चाँदीमें बदल देते हैं—अर्थ-शास्त्रके विद्वानोंकी रायमें यह भारी शुभ लक्षण होगा लेकिन गाँव-गाँवकी खाक छाननेवाले हम जैसे लोग अच्छी तरह जानते हैं कि यह कैसा 'शुभ लक्षण' है !

निमाईकी आवाज और मुखमुद्रासे आलेख्यके अन्दर एक टीस-सी उठी । अपनेको सँभालकर वह बोली—ट्रेन और स्टीमरको आप अच्छा नहीं समझते हैं ?

निमाई हँसकर बोले—कोई भी वस्तु इस तरह एकदम अच्छी या खराब नहीं बतलाई जा सकती, दूसरी वस्तुओं और व्यक्तियोंके साथ मिलाकर उसे देखना होता है और तभी उसकी अच्छाई या बुराईका पता चलता है ।

आलेख्य भी मुसकुराई और बोली—यह तो हुए बातोंके पैंतरे। असलियत मुझसे सुनिये । आप लोगोंका पंडित-समाज विदेशी शिक्षाके बिल्कुल खिलाफ है । आप लोगोंकी दृढ धारणा है कि विदेशवासियोंका जो कुछ भी होता है वह बुरा ही होता है और आप लोगोंकी जो भी वस्तु होगी, वह अच्छी ही होगी । उनकी विद्या और विज्ञानको जबतक आप लोग ग्रहण नहीं कर लेते, तबतक विचारोंको किस प्रकार संतुलित कर पाइयेगा ?

जरूरतको बड़ी समझनेकी कुशिक्षा यदि कहीं तुम्हें मिली हो तो उसे आज भुला देना ही बेहतर होगा। तुम्हें यह तथ्य हृदयंगम कर लेना होगा कि कमजोर—नाकाबिल आदमीको भी जीनेका हक है। सयोगसे, आज तुम इतनी बड़ी जमींदारीकी अधिस्वामिनी हो। तुम्हारी प्रसाधन-सामग्री जुटती रहे, इसलिए एक आदमीको आत्म-हत्या करना होगा—यह नहीं चलनेका। जिस सामाजिक नियमके अनुसार इतना बड़ा अन्याय तुम कर पाई, बावजूद पुराना होनेके, वह नियम मानव समाजका श्रेष्ठ एवं चरम विधान नहीं हो सकता। मैं तो खैर बुड्ढा हो चुका हूँ, वह दिन देखनेका अवसर मुझे प्राप्त नहीं होगा किन्तु ऐसा समय शीघ्र ही आनेवाला है। अक्षम्य, अकर्मण्य कहकर आज तुम जिनके अधिकारोंका अपहरण कर रही हो उनके ही बाल-बच्चे तुमसे कैफियत तलब करेंगे। मानवताके उस न्यायालयमें जमींदारीके जोरसे ही किसीकी कोई दलील संगत एवं सच्ची नहीं मान ली जायगी, मेरी यह बात गाँठ बाँध लो बेटी।

निमाईकी बातोंका आलेख्यने विश्वास कर लिया हो, ऐसी बात नहीं। और वक्त होता तो वह इन अप्रिय-कठोर बातोंसे नाराज हो उठती। किन्तु, आज बेचारीकी मानसिक स्थिति ठीक नहीं थी। उत्कण्ठा, सकोच एवं धैर्यपूर्वक उसने जिज्ञासा की—क्या आप सोचते हैं, प्रजा विद्रोह करेगी? रैयत क्या इसी रूपमें सोच रही है?

निमाईने कहा—बेटी, 'विद्रोह' शब्द कानोंको अच्छा नहीं लगता है, बहुतोंको नापसन्द है यह शब्द। और, सूझ-बूझ या मनोभाव कोई कायमी चीज नहीं होता, इसकी अपनी कोई जगह नहीं हुआ करती, यानी परिस्थिति और शिक्षाके ही फल हैं मनोभाव। एक दूसरेसे कन्धा मिलाकर द्रुत गतिसे प्रजाजन जिस ओर बढ रहे हैं, मैंने अभी उसी ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित किया है। अब इन्हें ठगा नहीं जा सकता। समझदार लोगोंने अफीम खिलाकर आजतक इन्हें सुला रखा था, आज भूखकी आगसे इनकी नींद टूट गई है। खाली पेट लेकर ये लोग पुरानी नीति-रीति, कानून-कायदेके जोरसे मान जाएँगे, ऐसा मत सोचो बेटी।

आलेख्य कुछ क्षण चुप रही, सोचकर फिर बोली—तो यह सब क्या हमारी विदेशी शिक्षाका ही दोष है?

"दोषकी बात तो मैंने कही नहीं, हाँ, इतना अवश्य कहा है कि यह उसीका फल है।"

"कुफल !"—आलेख्य बोली ।

निमाई हँस पड़े । कहा—बात जरा छितरा गई बेटी, खैर । सुफल-कुफलकी बात तो मैंने की नहीं, हाँ, फलकी बात कर रहा था मैं । इन्हीं आँखोंसे देखा है, एक पत्ता तम्बाकू और छः पैसेकी मजदूरीपर लोग दिनभर काम करते थे । इसीमें उनके परिवारका भरण-पोषण हो जाता था, मजेमें काम चलता था बेटी ! मुल्कमें रुपयेकी कमी उन दिनों जरूर थी मगर खाने-पीनेकी चीजोंका इफरात था । रेल नहीं, जहाज नहीं—विदेशी साहब और स्वदेशी मारवाड़ी मुल्कका अनाज उन दिनों बाहर नहीं भेज पाते थे और न करोड़ोंका मुनाफा बटोर पाते थे । उन्हें कोटि-कोटि लोगोंकी जिन्दगीको बर्बाद करनेका आज-कलका-सा मौका नहीं मिलता था । भुक्खड़ोंके मुँहसे छीने कौरोंको सोना-चाँदीमें तबदील करनेवाले जुए-बाज सटोरिये उन दिनों नहीं पैदा हुए थे ।—बूढ़ेकी आँखें छल-छला आईं लेकिन वह कहते गये—बेटी, मैं जब छोटा था उन दिनों, जिंदा रहनेकी योग्यताको प्रमाणित करनेके लिए ऐसा कड़ा इम्तिहान किसीको नहीं देना पड़ता था । आज अपने देशकी क्या दशा है ! मुट्ठीभर जंगली अनाज भी अब बर्बाद नहीं जा सकता । अक्लवाले और पूँजीवाले मिलकर उसे सोना चाँदीमें बदल देते हैं—अर्थ-शास्त्रके विद्वानोंकी रायमें यह भारी शुभ लक्षण होगा लेकिन गाँव-गाँवकी खाक छाननेवाले हम जैसे लोग अच्छी तरह जानते हैं कि यह कैसा 'शुभ लक्षण' है !

निमाईकी आवाज और मुखमुद्रासे आलेख्यके अन्दर एक टीस-सी उठी । अपनेको सँभालकर वह बोली—ट्रेन और स्टीमरको आप अच्छा नहीं समझते हैं ?

निमाई हँसकर बोले—कोई भी वस्तु इस तरह एकदम अच्छी या खराब नहीं बतलाई जा सकती, दूसरी वस्तुओं और व्यक्तियोंके साथ मिलाकर उसे देखना होता है और तभी उसकी अच्छाई या बुराईका पता चलता है ।

आलेख्य भी मुसकुराई और बोली—यह तो हुए बातोंके पैंतरे । असलियत मुझसे सुनिये । आप लोगोंका पंडित-समाज विदेशी शिक्षाके बिल्कुल खिलाफ है । आप लोगोंकी दृढ़ धारणा है कि विदेशवासियोंका जो कुछ भी होता है वह बुरा ही होता है और आप लोगोंकी जो भी वस्तु होगी, वह अच्छी ही होगी । उनकी विद्या और विज्ञानको जबतक आप लोग ग्रहण नहीं कर लेते, तबतक विचारोंको किस प्रकार सतुलित कर पाइयेगा ?

वृद्ध सज्जन माथा झुकाए क्षणभर कुछ सोचते रहे, फिर आँखें उठाकर उन्होंने आलेख्यकी ओर देखा और कहा—अपने मुँह अपना परिचय देनेमें सकोच महसूस कर रहा हूँ किन्तु तुम्हारी वातोंसे, लगता है कि मै यहाँ अपनेको छिपाये रखनेका अपराधी हूँ। मैं एक अच्छा अध्यापक रहा हूँ, अमरनाथ मेरा ही विद्यार्थी था। मुझसे पढकर ही उसने एम्०ए० किया है। सस्कृत भी उसे मने ही पढाई थी। तुमने अभी जिस विद्या एवं विज्ञानकी तरफ सकेत किया, उसमें पारंगत मैं नहीं हो पाया, तथापि उनसे बिल्कुल अनभिज्ञ नहीं हूँ बेटी!

निमाईकी बातें सुनकर आलेख्य चौंक उठी, मानो किसीने गालपर तमाचा मार दिया हो। चेहरा सुर्ख हो आया। बूढे आगतुकने उसकी ओर चुपचाप देखा और बोले—आज तो थकी हो बेटी, जाओ, ऊपर जाकर आराम करो। अमरनाथ यदि किसी मुसीबतमें न पड़ा, तो वह भी और मै भी—दोनों जनें कल आवेंगे, अभी मैं चला—

इतना बोलकर वह उठे। फिर कुछ कहना चाहा लेकिन कहा नहीं, अपनेको रोक लिया और बाहर चले गये।

५

रे साहब दूसरे रोज वापस आये तो नयन गांगुलीकी आत्महत्याका समाचार सुना। सुनते ही वह दग रह गये। लड़कीसे बिना कुछ बोले-चाले ही, सीधे वह नयन गांगुलीके घरकी तरफ चले गये। आलेख्यने यहाँ तक नहीं सोचा था।

रे साहब दिनांतमें जब अदर आये उस वक्त चेहरा खुश ही नजर आ रहा था। इस घटनाके बारेमें उनकी चुप्पी फिर भी नहीं टूटी। नयन गांगुलीकी लड़कीसे उन्होंने क्या कुछ कहा, क्या किया वहाँ—आलेख्य जरा भी मालूम न कर पाई। वह रात इसी तरह कटी।

अगले रोज, प्रात काल आलेख्य पिताके पास आई। उसके हाथमें एक पत्र था। वह बोली—आज शामकी ट्रेनसे घोष साहब आनेवाले हैं, इदु साथ होगी।

"कौन, घोष साहब?"

आलेख्यने माथा हिलाकर कहा—नहीं, नहीं, कमलकिरण। घोष साहब और इदुकी मा शायद पाँच-छ. रोज बाद आएँगे।

" अच्छा "—पिताने कहा।

आलेख्य बोली—उनके स्वागत-सत्कारका कोई भी इन्तजाम नहीं कर पाई हूं।

" नहीं कर पाई हो! पाँच-छः रोजमें कर लेगी, सो तो होगा न?"

पहलेकी भाँति सिर हिलाती हुई आलेख्य बोली—असम्भव है बावा!—कुछ क्षण रुककर फिर कहा—एक दुर्घटना हो गई है। तुमने भी सुना ही होगा। बड़े ही दुखकी बात है।

" हाँ "—साहब बोले।

" उन लोगोंके लिए क्या कुछ तय किया है?"

" कुछ नहीं—अभी तक कहाँ कुछ इन्तजाम कर पाया!"

इतना कहकर साहब चुप हो रहे।

रे साहबने कभी लड़कीका तिरस्कार नहीं किया है। उसके हृदयको कभी चोट नहीं पहुँचाई। और कोई रह नहीं गया था। इस बुढ़ापेमें समूची माया-ममताका एक मात्र आधार यह आलेख्य ही थी उनके लिए। इस लड़कीके समक्ष अपनेको उन्होंने धीरे-धीरे एक शिशु रूपमें परिणत कर लिया था। वही उनकी अभिभावक बन बैठी थी। लड़कीसे असहमत या विरुद्ध होकर कुछ करने-धरनेकी उनकी क्षमता स्वभावतः गायब हो गई थी।

आलेख्यने पूछा—क्यों नहीं कोई इन्तजाम कर आये?

साहबने कहा—मालिक तो तुम ठहरीं। मैं तो छुट्टी पा चुका हूँ। सारे अधिकार तुम्हारे हाथोंमें दे दिये हैं, अच्छाईका भी भार तुमपर और बुराईका भी भार तुम्हींपर। जो भी करना होगा, तुम्हीं करोगी।

गीली आवाजमें आलेख्यने कहा—नासमझीकी वजहसे अगर कुछ गलती कर बैठूँ, तो उसे तुम नहीं तो और कौन दुरुस्त करेगा?

पिता बोले—मैं ही कौन बड़ा समझदार हूँ! कमसे कम, दुनियाको तो समझदारीका कोई सबूत अबतक नहीं दे पाया हूँ। बिना समझे-बूझे कुछ गलती तुम अगर कर बैठी हो तो भगवान् उसे दुरुस्त कर देंगे। जिन्होंने बुद्धि दी है उन्हें ही उसे सुधारनेकी चिन्ता है।

साहबकी भीगी निगाह खुली खिड़कीसे परे किसी अनिर्दिष्ट शून्यमें जाकर टिक रही। पिताको इस मुद्रामें आलेख्यने इससे पहले कभी नहीं देखा, वह अवाक् रह गई। वह बचपनसे यही समझती रही है कि उसके पिता सोलहों आने साहब

हैं। धार्मिक वार्तोपर कभी वह बातें नहीं छेड़ते। यह भी जाहिर नहीं होने देते कि ईश्वरमें उनकी निष्ठा है कि नहीं। इसीसे घर-बाहर सभी लोग उनको ईश्वरके प्रति अविश्वासी समझते हैं। फिर भी पुराने जमानेसे चले आये हुए पूजा-पाठ, जप-अनुष्ठान सभी पूर्ववत् चलते रहे। रे साहबने किसी धर्मादाके किसी कामको बन्द नहीं करवाया, सबको चलने दिया। आलेख्यकी माँ इसे बराबर रे साहबकी धर्मभीरुता एवं दिलकी कमजोरी कहा करती थी। आलेख्यकी खुद भी पिताके बारेमें यही धारणा हो गई थी—परन्तु, इस वक्त पिताकी ऐसी मुद्राने आलेख्यको उनके स्वभावकी एक दूसरी विशेषताकी तरफ आकृष्ट किया।

धीरे-धीरे आलेख्य बोली—जबतक तुम जीवित हो तबतक यह भार तुम्हीं उठाए रहो बाबा!

"क्यों बेटी?"

"मैंने तुम्हारे आदेशका उलंघन किया है।"

वृद्ध पिताने अचरजमें भरकर लड़कीके चेहरेकी ओर देखा और तब पूछा—कौनसे आदेशका आलो? मुझे तो किसी भी आदेशकी बात याद नहीं आ रही।

आलेख्य चुप रही। नीचा मुँह किये, आँचलकी किनारीको वह अंगुलीमें लपेटने लगी।

पिता बोले—क्यों, चुप क्यों हो बेटी?

आलेख्य फिर भी कुछ देर चुप रही। पीछे अभिमानी स्वरमें आहिस्तेसे बोली—आते ही तुम मुझसे बोले जो नहीं! मैं तो सौ बार कबूल करती हूँ बाबा, मुझसे यह भारी अन्याय हुआ। सपनेमें भी नहीं सोचा कि गांगुली महाशय मुझे इतनी भारी सजा दे जाएँगे। तुम्हें तक मैं अपना मुँह दिखा नहीं पा रही हूँ—देश छोड़कर कहीं चली जाऊँगी मैं बाबा—

आलेख्य फफककर रो पड़ी। साहब करीब आकर उसके माथेपर हौले-हौले अपना हाथ फेरने लगे, बोले कुछ नहीं। इस तरह कुछ समय बीता, पाँच-छः मिनटसे ज्यादा नहीं। किन्तु इतनी थोड़ी अवधिमें ही अपने दुर्बलहृदय बूढ़े पिताका जो परिचय उसे आज प्राप्त हुआ वह मीठा भी था और अवर्णनीय भी। बीस सालकी इस जिन्दगीमें पिताका ऐसा परिचय आलेख्यको और कभी नहीं मिल सका। उसे खेद होने लगा कि माँ अपने जीवनमें ऐसी अपूर्व मिठासका कोई आभास न पा सकीं, दुर्भाग्य उनका! पिता समाज (ब्राह्म-समाज) में कभी

नहीं जाते थे, उपासनामें भी उन्होंने कभी भाग नहीं लिया। माँको बाबाके प्रति क्षोभ था—नास्तिक कहींके! अपने पतिकी कमजोरी स्वजन-परिजनके बीच उनके लिए संकोचका निमित्त थी। यों पिताके प्रति आलेख्यका प्यार मामूली नहीं था, लेकिन माँसे विरासतमें उसे इस व्यक्तिके लिए अश्रद्धा ही मिली थी। बीमार, भोले और सहनशील पतिको वह सदैव कायर, दिलका कमजोर समझकर उपेक्षा करती रही। आलेख्यकी भी पिताके प्रति कुछ वैसी ही उपेक्षा रही। उसी पिताके प्रति आज वह भक्ति, श्रद्धा और प्यारसे विगलित हो उठी। इस रूपमें अपने पिताको देखनेका सुअवसर आलेख्यको कभी नहीं मिला। नाना प्रकारकी उक्तियों और विभिन्न मतों द्वारा पिताके स्वभावकी यह दिशा उससे ओझल कर रखी गई थी। पश्चात्ताप और आत्म-धिक्कारसे उसकी अन्तरात्मा भर रही थी। माथेपर पिता अब भी हाथ फेर रहे थे और वह सोचती जा रही थी—अपनी ही तरह लाचार-कमजोर समझकर बाबा पुराने आश्रित नयन गांगुलीको प्यार करते रहे होंगे। इतनी बड़ी दुर्घटना हो चुकी, उसे न होने देनेका पछतावा उनके हृदयको अवश्य ही जला रहा होगा। इसीसे वह चुपचाप गांगुलीकी लड़की और दोहतेको जाकर देख आये; जाने उन बेचारोंके लिए क्या कर आये हैं! और इतना बड़ा अन्याय जिसके द्वारा हुआ उससे साहबने एक शब्द भी नहीं कहा, निगाह तक उसके प्रति नहीं बदली उनकी! दोनों ओरकी चोटें उन्होंने झेल लीं, कोई शिकवा-शिकायत नहीं। लड़कीके कंधोंपर जो भार डाला था, गलती करनेपर भी उसे वापस नहीं लिया कि शर्मके मारे बेचारी जान दे देगी! दुनिया इसे भी एक तरहकी कमजोरी कहेगी। लेकिन आलेख्यने अब साफ देखा कि पिताके इस बर्तावमें विश्वास और स्नेहकी शक्ति मौजूद है।

पल्लेसे आँसू पोंछकर आलेख्यने कहा—बाबा, दुनियादारीका बोझा तुम चाहे न लो अपने कंधेपर, लेकिन मुझे रास्ता जरूर दिखाते रहना।

साहब हँसकर बोले—तुमसे क्या छिपा है बेटी, दुनियादारीके रास्तेपर मैं सबसे पिछड़ गया हूँ। पीछेका ही रास्ता मैं बता सकता हूँ मगर वह सभीके पसंदकी बात नहीं।

आलेख्य बोली—मुझे तो पसंद होगी!

"हो तो ठीक है, बता दूँगा। मगर यह जरूरी नहीं है।"

आलेख्य क्षणभर मौन रही, फिर बोली—हमारी रफ्तार तेज थी। लेकिन तुम

क्यों पीछे रह जाते थे, सो मैं अब समझ रही हूँ। अबसे तुम्हारे चरण-चिह्नोंपर ही चल सकूँ, यही आशीष तुम देना!

"पगली!"—साहबने कहा और हँसकर आलेख्यके माथेपर एक बार और हाथ फेर दिया—बुड्ढेके साथ कदम मिलाकर भला तू कैसे चल पायगी? तुम लोगोंके अन्दर उतना धीरज कहाँ?

तुम्हें देखकर बारबार यही बात मनमें उठ-बैठ रही है कि दौड़कर चलना ही प्रगति नहीं। पहले तुम्हारी धीमी रफ्तारसे हम खीज उठते थे, हमारी समझके अनुसार तुम पिछड़े रहते थे। अब आजसे तुम्हारे ये चरण-चिह्न ही मेरे पथ-प्रदर्शक बनें।

साहब स्थिर होकर लड़कीकी बातें सुन रहे थे। परन्तु उनका हाथ अब भी आलेख्यके माथेपर फिर रहा था, मानों पाँचों अँगुलियोंसे पिताकी स्निग्ध आशीष पुत्रीके अंग-अंगमें संचारित हो रही हो।

कुछ देर इस तरह बीतनेपर आलेख्य बोली—बाबा, कल तुम्हारे बूढ़े चाचा आये थे।

"बूढ़े चाचा!"—साहबको कन्याकी बातपर आश्चर्य हुआ।

आलेख्य बोली—बचपनमें तुम उन्हें चाचा कहा करते थे। उनका नाम है निमाई भट्टाचार्य।

विस्मयमें भरकर रे साहबने पूछा—वह अभी तक जीवित हैं? ऐसा महान् और यथार्थ मनुष्य अब कहाँ दिखाई पड़ता है? किसी प्रकारका अ-सत्कार तो यहाँ उनका नहीं हुआ?

"ना"—आलेख्यने माथा हिला दिया। बोली—वह आए थे मेरा परिचय पाने और अपना परिचय देने। पुराने युगका बंगाल कैसा खुशहाल था! फल-फूल, धन-धान्य, शोभा-सौंदर्य, क्या नहीं था यहाँ! मेरे कसूरका ओर-छोर नहीं। मेरे पापका प्रायश्चित्त नहीं, यह मैं मानती हूँ। नयन गांगुलीकी ही बात कहती हूँ। मेरी गलतीसे उन्हें आत्महत्या करनी पड़ी। परन्तु हमारे देशमें क्या अब एककी भी जान बचानेकी क्षमता नहीं रह गई? इस स्वर्णभूमिको जिन्होंने ऐसा कंगाल बना दिया है उनके अपराधकी ही भला क्या कोई सीमा है?

साहबने गहराईसे साँस छोड़ी और बोले—हूँ। उन दिनों गांगुलीको अन्नके अभावसे आत्महत्या नहीं करनी पड़ती। नौकरीसे बरखास्त होनेपर भी उसके लिए जीनेका इन्तजाम रहता। दो मुट्ठी अन्नका अभाव नहीं होता उन्हें—

आलेख्यने कहा—निकम्मा कहकर गांगुलीको मैंने नौकरीसे अलग कर दिया। उन दिनों ऐसा होनेपर भी वह बे आसरा न होते और न मुझे ही बदनामीसे इस तरह शर्मिन्दा होना पड़ता।—कुछ क्षण वह मौन रही और कहने लगी—बाबा, तुम लोग कहा करते हो कि ऐश्वर्य और सभ्यता दोनों ही दृष्टिसे समाज आगे जा रहा है; और, बंगालकी प्रगतिके अग्रदूत हमीं हैं—निमाई भट्टाचार्य इसीसे तो मुझे मिलने आए थे। लेकिन यह एक भारी तमाशा है बाबा, गांगुलीकी पीड़ित उद्भ्रांत आत्माका भला हो, सभ्यता क्या है, यह तो पूरी राक्षसी है! जो सभ्यता गरीबोंके मुँहका कौर—जन-साधारणका जीवन अपनी मुट्ठीमें करके उन्हें मरनेको लाचार बना दे वह राक्षसी नहीं तो और क्या कहलाएगी? बाबा, मुझे नहीं चाहिए यह सभ्यता। मैं असभ्य ही रहूँगी। यह फार्स जितनी जल्दी बंद हो उतना ही अच्छा।

साहबने मुँह उठाकर देखा। आलेख्यके दुखी दिलकी उत्तेजनाको कम करनेकी नीयतसे शांतिपूर्वक कहा—और उपाय ही क्या है बेटी? गरीब हमेशा ही धनी आदमियोंकी मुट्ठीमें रहे हैं, सृष्टिका यही विधान है।

आलेख्यकी उफान थमी नहीं, उसने कहा—यह विधान कितना भी पुराना क्यों न हो, किसी तरह भी हम इसे अच्छा नहीं कह सकते। दौलतमंद और गरीब दुनियामें होते हैं तो हुआ करें लेकिन किसीकी जानका इस कदर किसीकी मुट्ठीमें आकर गिरफ्तार हो जाना बहुत ही बुरा है बाबा! ऐसा विधान मंगलकारी नहीं; अमंगलकारी है। इस विधानसे न तो गरीबोंका भला हो सकता है, न धनवानोंका ही। मुट्ठीके तनिक-से दबावमें जिसका आदमी जान गँवा बैठता है वह तो अपने मुँहसे कुछ कह ही नहीं सकता। कहते हैं, गांगुलीका दिमाग ठीक नहीं था। लेकिन, यह मैं कैसे भूल पाऊँगी कि मेरे एक इसी आईनेमें उस बेचारेकी पाँच वर्षोंकी जिंदगी कैद है! मेरे जूते-कपड़े और दूसरे सामान अपने अंदर जाने कितने गांगुलियोंकी जीवन-यात्राको दबोचे हुए हैं।

उसकी इन बातोंको सुनकर रे साहब सन्न रह गये। भयसे उन्हें रोमांच हो आया। हँसनेकी उन्होंने बड़ी कोशिश की और कहा—इस पागलपनकी भी आखिर कोई हद है! इतनी दूरतक सोचेगी तो दुनियामें तू रहेगी कैसे?

आलेख्यने जवाब दिया—तुम्हारे कपारपर भी अगर बूढ़े आदमीके खूनके छींटे पड़े होते!

क्यों पीछे रह जाते थे, सो मैं अब समझ रही हूँ। अबसे तुम्हारे चरण-चिह्नोंपर ही चल सकूँ, यही आशीष तुम देना।

"पगली!"—साहबने कहा और हँसकर आलेख्यके माथेपर एक बार और हाथ फेर दिया—बुड्ढेके साथ कदम मिलाकर भला तू कैसे चल पायगी? तुम लोगोंके अन्दर उतना धीरज कहाँ?

तुम्हें देखकर बारबार यही बात मनमें उठ-बैठ रही है कि दौड़कर चलना ही प्रगति नहीं। पहले तुम्हारी धीमी रफ्तारसे हम खीज उठते थे, हमारी समझके अनुसार तुम पिछड़े रहते थे। अब आजसे तुम्हारे ये चरण-चिह्न ही मेरे पथ-प्रदर्शक बनें।

साहब स्थिर होकर लड़कीकी बातें सुन रहे थे। परन्तु उनका हाथ अब भी आलेख्यके माथेपर फिर रहा था, मानों पाँचों अँगुलियोंसे पिताकी स्निग्ध आशीष पुत्रीके अंग-अंगमें संचारित हो रही हो।

कुछ देर इस तरह बीतनेपर आलेख्य बोली—बाबा, कल तुम्हारे बूढ़े चाचा आये थे।

"बूढ़े चाचा?"—साहबको कन्याकी बातपर आश्चर्य हुआ।

आलेख्य बोली—बचपनमें तुम उन्हें चाचा कहा करते थे। उनका नाम है निमाई भट्टाचार्य।

विस्मयमें भरकर रे साहबने पूछा—वह अभी तक जीवित हैं? ऐसा महान् और यथार्थ मनुष्य अब कहाँ दिखाई पड़ता है? किसी प्रकारका अ-सत्कार तो यहाँ उनका नहीं हुआ?

"ना"—आलेख्यने माथा हिला दिया। बोली—वह आए थे मेरा परिचय पाने और अपना परिचय देने। पुराने युगका बंगाल कैसा खुशहाल था! फल-फूल, धन-धान्य, शोभा-सौंदर्य, क्या नहीं था यहाँ! मेरे कसूरका ओर-छोर नहीं। मेरे पापका प्रायश्चित्त नहीं, यह मैं मानती हूँ। नयन गांगुलीकी ही बात कहती हूँ। मेरी गलतीसे उन्हें आत्महत्या करनी पड़ी। परन्तु हमारे देशमें क्या अब एककी भी जान बचानेकी क्षमता नहीं रह गई? इस स्वर्णभूमिको जिन्होंने ऐसा कंगाल बना दिया है उनके अपराधकी ही भला क्या कोई सीमा है?

साहबने गहराईसे साँस छोड़ी और बोले—हूँ। उन दिनों गांगुलीको अन्नके अभावसे आत्महत्या नहीं करनी पड़ती। नौकरीसे बरखास्त होनेपर भी उसके लिए जीनेका इन्तजाम रहता। दो मुट्ठी अन्नका अभाव नहीं होता उन्हें—

आलेख्यने कहा—निकम्मा कहकर गांगुलीके [illegible]
उन दिनों ऐसा होनेपर भी वह बे आसरा न होते [illegible]
तरह शर्मिन्दा होना पड़ता।—कुछ क्षण वह मौन [illegible]
तुम लोग कहा करते हो कि ऐश्वर्य और सभ्यता [illegible]
रहा है; और, बंगालकी प्रगतिके अग्रदूत इन्हीं है— [illegible]
मुझसे मिलने आए थे। लेकिन यह एक भारी तमाशा है [illegible]
उद्भ्रांत आत्माका भला हो, सभ्यता क्या है, [illegible]
सभ्यता गरीबोंके मुँहका कौर—जन-साधारणका [illegible]
मरनेको लाचार बना दे वह राक्षसी नहीं तो और [illegible]
नहीं चाहिए यह सभ्यता। मैं असभ्य ही रहूँगी। [illegible]
उतना ही अच्छा।

साहबने मुँह उठाकर देखा। आलेख्यके दुखी [illegible]
नीयतसे शांतिपूर्वक कहा—और उपाय ही क्या है [illegible]
आदमियोंकी मुट्ठीमें रहे हैं, सृष्टिका यही विधान है।

आलेख्यकी उफान थमी नहीं, उसने कहा— [illegible]
क्यों न हो, किसी तरह भी हम इसे अच्छा नहीं [illegible]
गरीब दुनियामें होते हैं तो हुआ करें लेकिन [illegible]
मुट्ठीमें आकर गिरफ्तार हो जाना बहुत ही बुरा है [illegible]
नहीं, अमंगलकारी है। इस विधानसे न तो [illegible]
धनवानोंका ही। मुट्ठीके तनिक-से दबावमें [illegible]
वह तो अपने मुँहसे कुछ कह ही नहीं सकता। [illegible]
नहीं था। लेकिन, यह मैं कैसे भूल पाऊँगी [illegible]
रेकी पाँच वर्षोंकी जिंदगी कैद है! मेरे जैसे [illegible]
जाने कितने गांगुलियोंकी जीवन-यात्राको [illegible]

उसकी इन बातोंको सुनकर रे साहब [illegible]
आया। हँसनेकी उन्होंने बड़ी कोशिश [illegible]
आखिर कोई हद है! इतनी दूरतक सोचे [illegible]

आलेख्यने जवाब दिया—तुम्हारे [illegible]
छींटे पड़े होते!

क्यों पीछे रह जाते थे, सो मैं अब समझ रही हूँ। अबसे तुम्हारे चरण-चिह्नोंपर ही चल सकूँ, यही आशीष तुम देना !

"पगली !"—साहबने कहा और हँसकर आलेख्यके माथेपर एक बार और हाथ फेर दिया—बुड्ढेके साथ कदम मिलाकर भला तू कैसे चल पायगी ? तुम लोगोंके अन्दर उतना धीरज कहाँ ?

तुम्हें देखकर बारबार यही बात मनमें उठ-बैठ रही है कि दौड़कर चलना ही प्रगति नहीं। पहले तुम्हारी धीमी रफ्तारसे हम खीज उठते थे, हमारी समझके अनुसार तुम पिछड़े रहते थे। अब आजसे तुम्हारे ये चरण-चिह्न ही मेरे पथ-प्रदर्शक बनें।

साहब स्थिर होकर लड़कीकी बातें सुन रहे थे। परन्तु उनका हाथ अब भी आलेख्यके माथेपर फिर रहा था, मानों पाँचों अँगुलियोंसे पिताकी स्निग्ध आशीष पुत्रीके अग-अगमें सचारित हो रही हो।

कुछ देर इस तरह बीतनेपर आलेख्य बोली—बाबा, कल तुम्हारे बूढ़े चाचा आये थे।

"बूढे चाचा ?"—साहबको कन्याकी बातपर आश्चर्य हुआ।

आलेख्य बोली—बचपनमें तुम उन्हें चाचा कहा करते थे। उनका नाम है निमाई भट्टाचार्य।

विस्मयमें भरकर रे साहबने पूछा—वह अभी तक जीवित हैं ? ऐसा महान् और यथार्थ मनुष्य अब कहाँ दिखाई पड़ता है ? किसी प्रकारका अ-सत्कार तो यहाँ उनका नहीं हुआ ?

"ना"—आलेख्यने माथा हिला दिया। बोली—वह आए थे मेरा परिचय पाने और अपना परिचय देने। पुराने युगका बगाल कैसा खुशहाल था ! फल-फूल, धन-धान्य, शोभा-सौंदर्य, क्या नहीं था यहाँ ! मेरे कसूरका ओर-छोर नहीं। मेरे पापका प्रायश्चित्त नहीं, यह मैं मानती हूँ। नयन गांगुलीकी ही बात कहती हूँ। मेरी गलतीसे उन्हें आत्महत्या करनी पड़ी। परन्तु हमारे देशमें क्या अब एककी भी जान बचानेकी क्षमता नहीं रह गई ? इस स्वर्णभूमिको जिन्होंने ऐसा कगाल बना दिया है उनके अपराधकी ही भला क्या कोई सीमा है ?

साहबने गहराईसे साँस छोड़ी और बोले—हूँ। उन दिनों गांगुलीको अन्नके अभावसे आत्महत्या नहीं करनी पड़ती। नौकरीसे बरखास्त होनेपर भी उसके लिए जीनेका इन्तजाम रहता। दो मुट्ठी अन्नका अभाव नहीं होता उन्हें—

आलेख्यने कहा—निकम्मा कहकर गांगुलीको मैंने नौकरीसे अलग कर दिया। उन दिनों ऐसा होनेपर भी वह बे आसरा न होते और न मुझे ही बदनामीसे इस तरह शर्मिन्दा होना पड़ता।—कुछ क्षण वह मौन रही और कहने लगी—बाबा, तुम लोग कहा करते हो कि ऐश्वर्य और सभ्यता दोनों ही दृष्टिसे संसार आगे जा रहा है, और, बंगालकी प्रगतिके अग्रदूत हमीं हैं—निमाई भट्टाचार्य इसीसे तो मुझे मिलने आए थे। लेकिन यह एक भारी तमाशा है बाबा, गांगुलीकी पीड़ित उद्भ्रांत आत्माका भला हो, सभ्यता क्या है, यह तो पूरी राक्षसी है। जो सभ्यता गरीबोंके मुँहका कौर—जन-साधारणका जीवन अपनी मुट्ठीमें करके उन्हें मरनेको लाचार बना दे वह राक्षसी नहीं तो और क्या कहलाएगी? बाबा, मुझे नहीं चाहिए यह सभ्यता। मैं असभ्य ही रहूँगी। यह फार्स जितनी जल्दी बंद हो उतना ही अच्छा।

साहबने मुँह उठाकर देखा। आलेख्यके दुखी दिलकी उत्तेजनाको कम करनेकी नीयतसे शांतिपूर्वक कहा—और उपाय ही क्या है बेटी? गरीब हमेशा ही धनी आदमियोंकी मुट्ठीमें रहे हैं, सृष्टिका यही विधान है।

आलेख्यकी तूफान थमी नहीं, उसने कहा—यह विधान कितना भी पुराना क्यों न हो, किसी तरह भी हम इसे अच्छा नहीं कह सकते। दौलतमद और गरीब दुनियामें होते हैं तो हुआ करें लेकिन किसीकी जानका इस कदर किसीकी मुट्ठीमें आकर गिरफ्तार हो जाना बहुत ही बुरा है बाबा। ऐसा विधान मंगलकारी नहीं; अमंगलकारी है। इस विधानसे न तो गरीबोंका भला हो सकता है, न धनवानोंका ही। मुट्ठीके तनिक-से दबावमें जिसका आदमी जान गँवा बैठता है वह तो अपने मुँहसे कुछ कह ही नहीं सकता। कहते हैं, गांगुलीका दिमाग ठीक नहीं था। लेकिन, यह मैं कैसे भूल पाऊँगी कि मेरे एक इसी आईनेमें उस बेचारेकी पाँच वर्षोंकी जिंदगी कैद है। मेरे जूते-कपड़े और दूसरे सामान अपने अंदर जाने कितने गांगुलियोंकी जीवन-यात्राको दबोचे हुए हैं।

उसकी इन बातोंको सुनकर रे साहब सन्न रह गये। भयसे उन्हें रोमांच हो आया। हँसनेकी उन्होंने बड़ी कोशिश की और कहा—इस पागलपनकी भी आखिर कोई हद है। इतनी दूरतक सोचेगी तो दुनियामें तू रहेगी कैसे?

आलेख्यने जवाब दिया—तुम्हारे कपारपर भी अगर बूढ़े आदमीके खूनके छींटे पड़े होते।

पिता बोले—इस अपराधकी जितनी गुरुता तुम्हें समझाई गई है, वह सभी अंशोंमें ठीक नहीं है।

"मैं कलंकके इस टीकेको मिटा नहीं सकूँगी बाबा ?"

"क्यों नहीं मिटा सकोगी बेटी ? तेरे किस काममें मैं रुकावट डालता हूँ ?"

इतनेमें, चाँदीकी तश्तरीमें पीले रंगका एक लिफाफा लिये बैरा आया।

आलेख्यने लिफाफा खोला, चिट्ठी देख ली। वह पत्र पिताको थमाती हुई बोली— इंदु और कमलकिरण आ रहे हैं।

"कब ?"

"आज ही, शामकी ट्रेनसे।"

आलेख्य वहाँसे चली गई।

लड़कीके चले जानेपर रे साहब बैठे-ही-बैठे कई बातें सोचने लगे। दुर्घटनाकी इस करारी चोटसे आलेख्यके दिलमें आँधियाँ उठ खड़ी हुई हैं, इन आँधियोंका उसके जीवनपर क्या और किस तरहका असर पड़ेगा, समाज इस घटनाको किस रूपमें लेगा ?—यही सब सोचने लगे।

जिस समाजके अंदर रे साहबकी जिंदगी कटी है उसका दायरा काफी तंग था। अपने इस समाजके प्रति उनका मोह अब टूटता जा रहा था। यह बात अपने मुँहसे साहबने भले न कही हो लेकिन समाजके नेताओंको इसका पता था। परंतु उन्होंने कभी यह नहीं सोचा कि आलेख्य मौजूदा समाजकी संकीर्ण सीमाओंसे बाहर जाकर सुखी हो सकेगी। वह जिस समाज और जिन सस्कारोंके बीच पल-पुसकर बड़ी हुई, आगे भी उसी परिधिमें रहकर आलेख्य सुखी रहेगी, समाजकी इन शृङ्खलाओंके बाहर वह भला जायगी भी कहाँ ? लड़कीके बारेमें उनकी दृढ़ धारणा ऐसी ही थी।

घोषसाहब और उनके परिवारकी रहन-सहनके प्रति रे साहबकी तीव्र विरक्ति थी। लड़कीपर उन लोगोंकी नजर है, मगर रे साहबको यह बात बिल्कुल नापसद थी। लेकिन अभी कमल वगैरहके आनेकी खबर उन्हें खुशगवार मालूम हुई। आलेख्यकी मानसिक अशांतिके कारण जो दुश्चिन्ता थी वह कुछ कम हुई। इंदुमती आलेख्यकी बचपनकी सहेली थी। कमलकिरण भी इस परिवारके लिए कोई अवांछित अतिथि रहा हो, ऐसी बात नहीं थी। साहबने मन-ही-मन अति-

थियोंकी अभ्यर्थना एवं शुभ कामना की। जो दुर्घटना घट चुकी थी उसे लौटा लेना असम्भव था, परन्तु समूचे गाँवमें ग्लानि तथा शोकका तूफान मच गया था। उस तूफानके धक्के आलेख्यको टूक-टूक कर रहे थे। साहबने सोचा, चलो अच्छा हुआ, कमल वगैरह आ गये। लड़कीका दिल बहलेगा, दो दिनके लिए ही सही, छुटकारा तो कुछ जरूर मिलेगा। अपने मित्रोंके स्वागत-सत्कारमें लगी रहेगी तो आलेख्यकी यह बेचैनी अवश्य हट जायगी।

शाम होनेमें अभी कुछ देर थी। कमल और इंदु आलेख्यके मकानमें आ पहुँचे। साहबने स्वयं उनका स्वागत किया। आलेख्य पास ही खड़ी थी। सभ्य-समाजके अनुसार स्वागत-सत्कारमें उसने कोई कसर वाकी नहीं रखी। तो भी कमलकिरण और इंदुने आलेख्यके चेहरे पर न जाने कौन-सा भाव देखा कि वे एकाएक फक रह गये।

वाहर किसीको कुछ पता नहीं, लेकिन अन्दर रात्रि-भोजनका आयोजन साधारण नहीं, असाधारण प्रकारका था। मुसलमान वावर्ची अब तक सो-सोकर वक्त काटता रहा, आज वह अपने काममें जुट पड़ा। फूलोंका यह मौसम नहीं था तो भी टेबुलपर तरह-तरहके फूल गुलदस्तोंमें सजे थे। रोशनीका इन्तजाम आवश्यकतासे अधिक ही हुआ था। वार्निश की हुई दीवारोंपर और बड़े आकारके (आदमकद) आइनेमें पड़कर रोशनी रातको दिन बनाए हुए थी। चाँदीके काँटे, चाँदीकी चम्मचे, अनमोल थालोंमें अनमोल खाना, कीमती गिलासोंमें खुशबूदार पानी—बर्फ जैसी सफेद मेजपोशपर ये चीजें मानों देखनेके ही लायक थीं। ठाठ-बाट, साज-सज्जा, ड्रेस-पोशाक, बात-चीत, हँसी-खुशी—ऐसा लगता था कि दुख-दर्दका भूत इस मकानको छोड़कर कहीं भाग गया है।

डिनर चल रहा था। रे साहबके अन्दर भी एक अजीब उत्साह नजर आ रहा था। छुरी-काँटेकी उनकी रफ्तार देखकर यह समझना कठिन था कि उन्हें बदहजमीकी बीमारी है। ठीक इसी समय वैरेने आकर उनके सामने एक स्लिप रख दी। चश्मा नहीं था, इसीसे स्लिपको रे साहबने इंदुकी ओर बढ़ा दिया—देख तो वेटी, कौन है?

अमरनाथ—इंदुने स्लिप देखकर कहा।

साहब अचरजमें वोले—लौट आया वह? मैं तो सोच ही रहा था।

फिर वह कमलकी तरफ मुखातिब होकर कहने लगे—उसे अपने ही घरका लड़का समझता हूँ मैं। भगड़ू, उसे यहीं ले आओ।

" यहाँ ? इस घरमें ? "—आर्केल्यने शंकित होकर पूछा। साहबकी नजर लड़कीकी ओर नहीं थी, बोले—हर्ज ही क्या है ? कमल, ऐसा लड़का तुमने नहीं देखा होगा। यहाँकी तो खैर बात ही छोड़ दो, विलायत तकमें ऐसा आदमी तुम्हें नहीं मिला होगा।—जा झगड़ू, ले आ अमरनाथको। खड़ा क्यों हो गया ?

झगड़ू गया और फौरन एक युवकके साथ वापस आया। पैर खाली, चेहरा फीका, मानो दिनभर कहीं बूँदभर पानी भी न मयस्सर हुआ हो! माथेपर एक ओर बैंडेज (पट्टी) बँधा हुआ—खूनके काले धब्बे चेहरेको और भयंकर किये दे रहे थे। छुरी-काँटा साहबके हाथोंसे छूट गया, चीख पड़े—यह क्या हुआ अमरनाथ ?

आगंतुक गुमसुम ही रहा, चारों ओर देखता रहा वह। खानेवालोंको क्षणभर रुकावट अवश्य महसूस हुई, लेकिन गरीबों, भुक्खड़ोंकी इस बस्तीके बीच ही खान-पानका ऐसा विराट् आयोजन उसे मानव-समाजकी साकार हृदयहीनता मालूम हुआ।

६

भय और भावुकताने मिलकर साहबके खाने-पीनेकी रुचिको भगा दिया। खानेके बड़े टेबुलसे हटकर वह एक आरामकुर्सीपर बैठ गये और पूछा—यह सब कैसे हुआ अमरनाथ ?

आप क्या जानना चाहते हैं ?—अमरनाथ बोला।

" क्यों रंज होते हो भाई, मैं सारी बात जानना चाहता हूँ। खैर, पहले यह तो बताओ कि तुम्हें घायल किसने किया ? पुलिसने ? "

अमरनाथने निषेधमुद्रामें सिर हिलाया—नहीं, गाँवके ही आदमीने मारा है। लेकिन, यही ठीक सत्य हो, सो बात नहीं है।

" तो फिर वही बताओ जो ठीक हो। "

" ठीक बात इतनी भर है कि खूनकी कुछ बूँदें मेरी गिरी हैं। "

साहब क्षणभर गुम रहे फिर बोले—मगर, यह हुआ तो आखिर मेरे ही बाजारके (हाट) अन्दर ?

हाँ, यह तो ठीक है—अमरनाथने सिर हिलाकर कबूल किया।

"अभी तक बिना कुछ खाये-पिये हो?"

"जी हाँ।"

साहबने खिन्न स्वरमें कहा—घर भी तुम्हारा यहाँसे नजदीक नहीं है—यहाँ भी कुछ प्रबन्ध नहीं हो सकेगा। और, हमारे यहाका तो कुछ खाओगे भी नहीं?

अमरनाथ मुसकुरा पड़ा—नहीं।

"फिर तो आज तुम्हारा पूरा उपवास रहा?"

अमरनाथने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। साफ था कि वह दिनभरका भूखा है। साहबने दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कहा—तो फिर तुम फौरन घर जाओ, देर करनेकी कोई जरूरत नहीं।

वह स्वयं उठ खड़े हुए और बोले—चलो, तुम्हें छोड़ आऊँ कुछ दूर।

अमरनाथ पशोपेशमें पड़ गया, बोला—छोड़ने जाएँगे, और आप? क्या बात करते हैं आप भी! और आपका खाना भी तो अभी चल रहा है? ना, राय महाशय, आपको मैं उठने नहीं दूँगा—बिलकुल नहीं।

साहबने जिद नहीं किया। बात चाहे कैसी भी क्यों न हो, जिद करनेकी आदत उनमें है ही नहीं। अमरनाथ चला तो वह बोले—जिसलिए तुम आये थे, उसका मैं आभास मात्र पा सका। ज्यादा कुछ कहाँ मालूम कर सका! अच्छा, तो कल एक बार जरूर मिलना।

सिर हिलाकर अमरनाथने कबूल किया।

साहबने कमलकिरणकी ओर लक्ष्य करके कहा—इस इलाकेमें ऐसा कोई नहीं है जो अमरनाथपर हाथ उठानेकी हिम्मत करे, अमरनाथ घायल हुआ है, इस-पर कौन यकीन करेगा? मामला लेकिन अन्दर ही अन्दर काफी दूर चला गया है—और यह दुर्घटना मेरे ही बाजारके अन्दर घटी है!

अब और रे साहबकी खानेकी इच्छा नहीं थी। आलेख्य मुँह नीचा किये खानेका अभिनय किए जा रही थी। अभी दस पन्द्रह मिनट पहले डिनरका जो रंग जमा हुआ था, वह इस अपरिचित व्यक्तिके आ जानेसे बिलकुल फीका पड़ गया। कैसा अजीब आदमी था! बातें मुख्तसर और बेलाग, खयालातका कट्टर हिन्दू—एक प्रकारकी सीधी-सादी रूढिप्रियता थी उसमें। वेश-भूषाकी सादगी बल्कि उसे आकर्षक ही बना रही थी। जाने कहाँसे मार-पीट-करके आया था! पुलिससे जूझना एक किस्मकी बहादुरी ही तो है! रे साहब हुलस-हुलसकर क्यों उसकी

प्रशंसा कर रहे थे, इन्दु और उसके भाईकी समझमें नहीं आ रही थी यह बात। इन्दुने आखिर मुँह खोला—यह कौन थे आलो ?

रे साहबने इन्दुकी जिज्ञासाको बीचमें ही रोक लिया, बोले—आप पड़ोसकी एक पाठशालाके अध्यापक थे, दूरके भी दो-चार छात्र इनके यहाँ रहते हैं। पढ़ानेका काम आजकल शिथिल पड़ गया है। और भी पाठशालाएँ हैं देशमें, अध्यापक भी हैं। परन्तु अमरनाथकी विशेषता पढाना नहीं, देशसेवा है। यही अमरनाथकी खासियत हो सो भी नहीं—

इन्दुने पूछ दिया—तो फिर क्या है उनकी विशेषता ?

क्या बताऊँ बेटी—साहब बोले—अमरनाथकी खूबीको मैं पकड़ नहीं पाता हूँ। परन्तु इस लड़केके बारेमें यह भविष्यवाणी मैं निःसंदेह कर सकता हू कि सही-सलामत रहा तो एक रोज अमरनाथकी विशेषताको समूचा देश स्वीकार करेगा।

भविष्यवाणीपर दलीलें उठाना बेकार होता है, और, रे साहब तो खैर बुजुर्ग ठहरे। इन्दु चुप हो गई। परन्तु कमलकिरणसे चुप न रहा गया। वह पूछ बैठा—मिस्टर रे, यह वही व्यक्ति तो नहीं थे जो आपके प्रजाजनोंमें बगावत फैलानेकी कोशिशें कर रहे थे ?

हाँ—साहबने माथा हिलाकर कहा।

" आपकी हाटपर (बाजारमें) यह महाशय गये ही क्यों ? इसी मतलबसे तो गये होंगे ! "

कमलका सवाल सुनकर साहब हसे, हँसते-हँसते बोले—विदेशी कपड़ोंकी बिक्री रोकने।

कमलकिरण बोला—तो फिर, य असहयोग-आंदोलनके पण्डा थे। तंग आकर दूकानदारोंने अध्यापक महाशयकी खबर ली होगी। है न यही बात मिस्टर रे ?

सहमतिका सकेत करके साहबने कहा—मुमकिन तो यही लगता है।

" दूकानदारोंने पहलेसे खबर देकर पुलिस बुलवा ली होगी ? "

आलेख्य अबतक चुप थी, अब सकोची स्वरमें बोली—मैंने ही मैजिस्ट्रेटसे पुलिसकी मदत माँगी थी, एक पत्र लिखा था।

ठीक, बहुत अच्छा किया तुमने—दृढ स्वरमें कमलने कहा—अब इस शख्सपर नालिश ठोंक देनी चाहिये। हाट मेरी होती तो मैं नहीं छोड़ता महाशयजीको, हाँ !

साहब कुछ कहने ही वाले थे कि उस रोजकी हड़ताल याद आ गई। लोगोंने

सड़कपर मिस्टर घोषकी कारको रोक लिया था और उसका शीशा फोड़ डाला था। कमलके पिता क्षमा करनेवाले जीव नहीं थे, बहुतोंपर मुकदमा चला दिया। कई एक हड़ताली जेल गये। रे साहब क्षणभर रुककर बोले—लाभसे अधिक हानि ही होती उससे कमल। कल या परसों हमारी ओरसे किसीको हाटपर जाना ही होगा। यह ऐसा मामला नहीं है कि आसानीसे सुलझ जाय। पुलिसवाले न आये होते, तो बात यहाँतक शायद ही बढ़ी होती।

इंदुने बीचहीमें पूछ दिया—मैजिस्ट्रेटको खबर करते वक्त आपसे पूछ नहीं लिया गया?

साहबकी नजर आलेख्यकी ओर उठी, वह मुँह नीचा किये हुए थी। वृद्ध बोले—मुझसे पूछनेकी क्या जरूरत थी? इंदु, तुम लोगोंको अभीतक यह मालूम नहीं है कि दुनियादारीका सारा भार अपने कन्धोंपरसे मैंने उतार डाला है। मैं अवसर-प्राप्त गृहस्थ हूँ। यह सब कुछ आलोका है। सारा इन्तजाम अब बिटियाको ही करना होगा। गलती भी अगर हुई हो, तो उसे सुधारनेकी जिम्मेदारी भी इसे ही लेनी होगी।

कमल चौंक उठा। रे साहबकी ओर देखकर उसने कहा—आप जबतक जिंदा हैं तबतक यह कैसे होगा?

साहब हँसते हुए बोले—तो समझना होगा कि मैं जीवित नहीं हूँ।

ऐसा समझना मुश्किल है—कमलने कहा—और, आलेख्य-जैसी नादान लड़कीके लिए यह बोझ सँभालना तो और भी मुश्किल होगा।

पग-पगपर गलती होगी—इंदु बोली।

साहब बोले—भूल चूकके लिए सजा होती है। अपराध होनेपर दण्ड स्वीकार करना होगा।

इन्दुने कहा—और, पास-पड़ोसमें दुश्मन भरे पड़े हैं!

साहबने कहा—पास-पड़ोसमें केवल शत्रु ही नहीं, मित्र भी हुआ करते हैं इंदु—साहब कहते गये—मुसीबतसे छुटकारा पानेकी तरकीबें वे ही बतला दिया करेंगे। वैसे मित्र जिसके नहीं हैं, वह विपत्तियोंसे छुटकारा नहीं पा सकता। बापका मजाल नहीं कि अकेले ही उसकी हिफाजत करता रहे।

इन्दुने साहबके इस तर्कको मान लिया। कमल इन शब्दोंको अपने लिए छिपा हुआ इशारा (शादीका) समझकर चुप रहा।

दूसरे रोज सवेरे अमरनाथ आ पहुँचे।

सभी लोग नाश्ता कर चुके थे। बठनेके कमरेमें मजलिस जुटी थी। अमरनाथ वहीं आकर बैठ गये।

कल किसने तुमपर हमला किया था ?—रे साहबने अमरनाथसे सर्वप्रथम यही मालूम करना चाहा।

क्या करेंगे पूछकर ?—अमरनाथने सवालके ढाँचेको ही उलट दिया।

साहबने कहा—ऐसी बात नहीं है यह कि चुप्पी साध ली जाय। इसका कुछ न कुछ प्रतिकार होना ही चाहिये।

अमरनाथ वोले—मगर, रे साहब, आप तो अब जिम्मेदारियोंसे अलग हो चुके हैं।

ठीक है—साहबने कहा—किंतु जो व्यक्ति जिम्मेदार है उसे तो कुछ करना चाहिये न ?

पिताके इशारेको आलेख्यने समझ लिया। नयन गांगुलीकी आत्महत्याके बाद लोगोंको वह अपना चेहरा शायद ही दिखलाती थी। कोई देख ही लेता तो वह कुछ बोलती नहीं थी। वह सोचती, लोग उसे ही इस दुर्घटनाके लिए उत्तरदायी मानते हैं। कड़वी-तीखी जो भी बातें लोग उस बारेमें करते रहते, आलेख्य कल्पनाद्वारा साफ-साफ सुन लेती, शर्म जो बेचारीके रग-रगमें घुल रही थी। उसका तजुरबा किसी दूसरेको भला कैसे होता।

पिताके ही प्रश्नका सूत्र पकड़कर आलेख्यने अमरनाथसे पूछा—मैं ही आपसे अनुरोध करती हूँ, बता दीजिये, वह कौन था।

कई दिनोंके बाद आलेख्यने आज सिर उठाकर किसीकी ओर देखा था। शान्तिपूर्ण किन्तु उदास वही मुखमण्डल—अमरनाथकी पैनी निगाहें क्षणभर उसे देखती रहीं, अन्ततः आहिस्तेसे वह बोला—देखिए, वे लोग आपकी प्रजा हैं। महज उत्सुकताके कारण यदि आप उनका परिचय जानना चाहती हैं तो अच्छा होगा कि अपनी उस उत्सुकताको रोक लीजिए।

"वे ठहरे मेरे असामी, इसीसे तो पूछ रही हूँ, अन्यथा पूछती ही क्यों ? जमींदारका भी कुछ फर्ज हुआ करता है। आपके प्रति जो अन्याय हुआ है, मैं उसका प्रतिकार करना चाहती हूँ।"

अमरनाथने कहा—आप उन्हें दण्डित करना चाहती हैं, लेकिन यह कोई प्रतिकार थोड़े हुआ ?

तो और क्या ?—आलेख्य बोली—अन्यायका प्रतिकार तो दण्ड ही हुआ करता है।

अमरनाथ मुसकुराये, फिर बोले—मैं आपसे बहस करना नहीं चाहता। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि जमींदार रैयतके अन्यायका किस प्रकार प्रतिकार करता है। अन्याय और अज्ञान—ये दोनों दो वस्तुएँ हैं, एक नहीं। शासन या दण्डसे इसका प्रतिकार सर्वथा असम्भव है।

कुछ देर चुप रहकर अमरनाथने फिर कहा—मानता हूँ, उन्होंने मुझे मारा-पीटा है। परन्तु बदलेमें उन्हें भी मैं आपसे या सरकारसे सजा दिलवाऊँ, इसे मैं बिल्कुल बेकार समझता हूँ। रही पिटनेकी बात, सो उसे मैं तनिक भी महत्त्व देता तो वहाँ आखिर जाता ही क्यों ? जिन्होंने मुझे मारा है, उनपर आप कोई ऐक्शन न लें, तो इसे ही मैं आपकी ओरसे भारी सहानुभूति समझूँगा।

इतना कहकर अमरनाथ उठ खड़े हुए।

७

रे साहबने कमलकिरणसे पूछा—तुम्हारी क्या राय है इसपर ?

कमलकी पलकें उठीं, नजर इंदु और आलेख्यको छूती हुई साहबके चेहरेपर आ लगी।

अमरनाथ जानेको तैयार थे लेकिन थे खड़े ही। पहले कही अपनी बातके उपसंहार-स्वरूप उन्होंने कहा—जायदाद है आप लोगोंकी, स्टेट है आप लोगोंका। इसका भला-बुरा भी आप ही लोग तय करें। चाहे कुछ कीजिए, मुझे निमित्त बनाकर एक भी काम न कीजिएगा। आप लोगोंसे मेरी यह करबद्ध प्रार्थना रही।

पशोपेशमें पड़ गये साहब। हड़बड़ाकर बोले—ना ना, भाई ऐसा भी कहीं हुआ है ? और, तुम जब नहीं चाहते हो—

बारी-बारीसे लड़कियोंपर नजरें डालकर कहा साहबने—क्या राय है तुम्हारी इंदु ?—क्या राय है तुम्हारी आलो ?

दर असल साहब यह प्रश्न अपनी ही आत्मासे कर रहे थे, यों सम्बोधित उन्होंने कमल वगैरहको किया था। इंदुकी गर्दन हिली। कमलकिरण भी मानो सहमति व्यक्त करनेवाला था। और आलेख्य? बूढ़े गाँगुलीकी आत्महत्याके भारसे यों ही उसकी गर्दन झुकी हुई थी, भला वह इसपर अपनी क्या राय देती! मुँह दिखाने तकमें बेचारीको संकोच हो रहा था। परन्तु अचानक वह बोल पड़ी, जवाब आखिर उसीके मुँहसे निकल आया। अमरनाथसे पहले-पहल जिस रोज साक्षात्कार हुआ उस रोज उसके प्रति कोई अच्छी धारणा आलेख्य नहीं बना पाई। बादमें जब-जब देखा-देखी हुई है तब-तब धारणा बिगड़ती ही आई है। अ-सद्भाव कम नहीं हुआ है, बढ़ता ही गया है। गांगुली जिस दिन मरा था उस रात भी अमरनाथ आलेख्यके पास आये थे, काफी हमदर्दी मिली थी उनसे। असर लेकिन इसका उलटा ही पड़ा। ग्लानि एवं लज्जाको अ-प्रकट रूपमें पोषण प्राप्त हुआ। वह अमरनाथके ही समक्ष अपनेको अधिक अपराधी और साधारणसे भी साधारण महसूस करने लगी। आज, इतने बंधु-बांधवोंके बीच, वह अपने खोये हुए व्यक्तित्वको मानो फिरसे पा गई। स्वाभाविक तौरपर सिर उठाकर सहज-शांत स्वरमें आलेख्य बोली—हंगामा मचाया आपने और मुसीबत उठाएँ सिर्फ हम लोग?—कैसी बातें करते हैं आप!

एक्जेक्ट्ली! मैं भी यही कहने वाला था—कमल मानो उछलकर बोला।

बढ़ाये कदमको रोककर अमरनाथ ठिठक गया। आलेख्य लेकिन कहती ही गई—कहाँ आपका मकान और कहाँ हमारी हाट (बाजार)! क्या करने गये थे आप वहाँ? जान-बूझकर फसाद खड़ा कर दिया! इससे देशका भला होगा या बुरा, राम जाने! मान लिया, अच्छा ही होगा मुल्कका, मगर जायदाद तो मेरी है। उसकी भलाई बुराईमें मेरा भी तो कुछ शेयर है! कहने आये हैं कि आपको किसी कार्रवाईमें निमित्त न बनाऊँ! हमारी रायका क्या कोई मूल्य है आप लोगोंके नजदीक? अमरनाथ बाबू, आपका यह अनुरोध एकदम अनुचित है।

आलेख्यके मुँहसे अप्रत्याशित रूपमें निकली इन बातोंको सुनकर न केवल अमरनाथ ही, बल्कि जितने वहाँ मौजूद थे सभी अवाक् रह गये। सबसे अधिक विस्मय हुआ स्वयं रे साहबको!

विस्मयसे अभिभूत अमरनाथ आलेख्यके मुँहकी ओर टकटकी लगाये रहा, उचित उत्तर सूझ नहीं रहा था बेचारेको।

राय महाशय—अमरनाथने कहा—दोके मामलेमें तीसरेका दखल देना कौन पसद करेगा ? जमींदार और रैयत, दुनियामें अगर दो ही पक्ष होते तो फिर बात ही क्या थी ? मगर, तीसरा पक्ष भी वहाँ मौजूद है तमाम मुसीबतोंकी जड़ । कोई चाहे या न चाहे, यह तीसरा पक्ष रहेगा। इसे मिटाया नहीं जा सकता। यह मामूली-सी बात यदि इन बाबू लोगोंके दिमागमें धँस पाती—

सूखी हँसी हँसनेकी कोशिश की अमरनाथने लेकिन असफल रहा।

आलेख्य वगैरहकी समझमें ऐसी बातें न आई हों, ऐसा नहीं कहा जा सकता। अमरनाथके कथनमें जो एक खरोंच थी वह अपना काम कर गई। आलेख्य कठोर होकर बोली—अँग्रेजीमें एक लफ्ज है 'बिजी बॉडी' (व्यस्त प्राणी)। दुर्भाग्यकी बात है कि ससारमें ऐसे जीव ज्यादा तादादमें मिलते हैं। इन्हीं जीवोंकी कृपासे बाबाको दौड़कर अपनी जमींदारीपर आना पड़ा और मुझे भी देखिए अमरनाथ बाबू, बिना बुलाये व्यक्तिकी बातोंमें दखल देते वक्त संकोचका अनुभव कर रही हूँ। परन्तु दूसरी ओर भी तो सकोचको मौका मिले। अन्यथा मुझे अपना कर्तव्य तो करना होगा ही।

लड़कीकी बातोंसे साहब क्षुब्ध हो उठे। क्षोभ मनको मथने लगा। अपनेको सयमकी परिधिमें रखकर ही बोले—बनिस्वत कामोंके, तुम लोगोंकी बातें ज्यादा तीखी होती है बेटी। अमरनाथ अभी हमारे घर आये हुए हैं—

लड़की बोली—निःसदेह, अमरनाथबाबू सभ्रांत व्यक्ति हैं। परन्तु मुझे जो कुछ कहना होगा वह अपने घर में ही तो कहूँगी, और कहाँ जाकर कहूँगी बाबा ? अमरनाथबाबू क्षमा करेंगे। अपराध यदि हो रहा हो, तो उसे पूरा हो ही जाने देना चाहिए। शिक्षा-दीक्षा, रीति-नीति, सस्कार-प्रकार, विधि-व्यवस्था—अमरनाथबाबूमें और हम लोगोंमें भारी अतर है। वह यदि एकमात्र इसी कारणसे हमारी प्रजाको बागी बना दें, तो यह महा अन्याय है।

अमरनाथने जवाब दिया—काम करनेकी सबकी अपनी अपनी धारणा हुआ करती है, मेरी भी है और आपकी भी होगी। परंतु मेरे पास न तो समय है और न कल्पनाशक्ति ही कि आपकी धारणाका आभास पा सकूँ। फिर आप चाहे जो भी समझें।

"फिर अपनी हिफाजतके लिए लाजिमी तौरपर यदि हम कुछ करें तो उसे आप क्या समझेंगे ?"

रे साहबके दोनों हाथ ऊपरकी ओर उठ गये। वह क्षोभके स्वरमें बोले—नहीं अमरनाथ, तुम किसी भी हालतमें इसका जवाब नहीं दे पाओगे—

साहब उठे और अमरनाथको आगे करके घरसे निकले। जीनेके करीब आकर दोनों खड़े हो गये। साहबने अमरनाथका हाथ पकड़ लिया और कहा—आज मेरे विस्मयकी सीमा नहीं रही अमरनाथ!

क्यों?—अमरनाथने पूछा, बात यद्यपि उसकी समझमें नहीं आई।

रे साहब बोले—वस्मय ही नहीं, आज मेरे दुखकी भी हद नहीं है।

बरामदेके एक तरफ घिसे शीशावाली लालटेन टँगी थी। उसकी धुँधली रोशनीमें अमरनाथने बूढ़े मालिकका चेहरा देखा जिसपर वेदनाका सहज आभास था। वह बोला—दुखकी क्या बात है इसमें रायमहाशय? उनकी और हमारी मनोवृत्तियोंमें यह अन्तर स्वाभाविक ही है। अच्छा होता कि मैं चुप ही रह जाता। किन्तु आपकी जमींदारीकी अधिस्वामिनी आजकल वही हैं, इसीसे मुझे जवाब देना पड़ा। आपके समक्ष मेरी ओरसे यह धृष्टता हुई। यदि इसे आप क्षमा कर दें, तो मेरी ओर फिर क्षोभकी बात रह ही नहीं जायगी।

क्षमाकी बात करते हो अमरनाथ!—रे साहबने कहा—जहाँतक मैं तुम्हें समझ पाया हूँ, रत्तीभर भी कसूर मुझे नहीं नजर आ रहा है। अपराधका पलड़ा दूसरी ओर ही झुका हुआ है। मगर यह तो तुम्हारी बातका जवाब नहीं हुआ।

अमरनाथकी समझमें साहबकी बात नहीं आई। उसे देर हो रही थी। न वक्त ही था, न बात करनेकी इच्छा ही थी। चलते-चलते उसने नमस्कार किया और कहा—काम मेरा काफी मुश्किल हो गया अब, मगर दूसरा चारा भी तो नहीं है। पहलेसे ही जिस व्रतको मैंने धारण कर रखा है, उसका निर्वाह आजीवन मुझे करना ही होगा—

अमरनाथ निकल गया।

साहब आकर बैठे तो आलेख्य बोली—जबतक बाबा तुम जिन्दा हो तबतक असल मालिक तुम्हीं हो, मैं नहीं। भविष्यकी बात कौन जाने! इस बोझको मैं तभी सँभाल सकूँगी जब कि अपनी अक्लसे काम लेनेकी छूट मिले। कभी इधर, कभी उधर—कभी यह, कभी वह—यही सिलसिला रहा तो मैं कुछ भी नहीं कर पाऊँगी। फिर रहने दो, जैसे चलता आया है आगे भी वैसे ही चलता रहे।

पिताने उत्तर नहीं दिया, बैठे ही रहे चुपचाप। इस मौनका मतलब और किसीकी समझमें नहीं आया। आलेख्य अवश्य समझ गई। वह अपनेको रोक न पाई, बोल पड़ी—बाबा, तुम्हारी बातें और तुम्हारे काम दोनों ही इस तरहके होते हैं कि बहुतोंको अबाध शरण मिल जाती है उनकी आड़में। खुद तुम यह भले ही न समझो, मेरी तो हड्डी-हड्डी जानती है

साहबने आलेख्यके इस अभियोगका प्रतिवाद नहीं किया, पूर्ववत् मौन धारण किये रह गये वह। दोनों मेहमान भी चुप ही रहे। पिता-पुत्रीके आपसी वार्तालापमें योगदान करके वे आतिथ्यकी साधारण शिष्टताका उलंघन नहीं करना चाहते थे। परन्तु उनके मुखोंपर अनुमोदनका स्पष्ट आभास पाकर आलेख्यकी उत्तेजना चौगुनी हो गई, वह बूढ़े बापपर आँखें गड़ाकर बोली—यह कैसी हवा चल पड़ी है इस देशमें बाबा! ये कतिपय कुलपुत्र अपने-अपने काम धाम छोड़कर निःस्वार्थ परोपकारमें लग पड़े हैं, बुद्ध और ईसाकी भूमिका धारण कर ली है इन्होंने। एक गालपर तमाचा खाकर दूसरा गाल आगे कर देनेको तैयार! गाल उनका अपना ठहरा, सहनशीलताकी बलिहारी, आगे कर दें—हमारा क्या आता-जाता है इसमें? परन्तु इसी बिनापर वे औरोंकी जमीं-जायदादके साथ खिलवाड़ करते फिरेंगे! जिनके पास कुछ है उनका नुकसान करनेसे ही अकिंचनोंका लाभ हो जायगा—पता नहीं, इस प्रकारका विश्वास इन परोपकारी जीवोंके मस्तिष्कमें कहाँसे आकर जम गया है!

कमलकिरण अब और अधिक अपनेको जब्त नहीं रख सका। बोला—उस रोजकी ही घटना क्या थी? हमारे बाबाकी कारका विंड-स्क्रीन उपद्रवियोंने चूर-चूर कर डाला!

आलेख्य बोली—हाँ, परन्तु इन उपद्रवोंका प्रतिकार भी तो करना चाहिये?

बाबाकी भी ऐसी ही राय है—कमलकिरण बोले

शह पाकर आलेख्यका स्वर और भी तीव्र हो आया—यहाँ तो बाबा ठीक उल्टी सोचते हैं। मुसीबत है, भाई, क्या बताऊँ! बाबा, तुम अनजान तो हो नहीं, सभी बातें जानते हो। जमींदारीकी कोई खोज-खबर अबतक तुमने न ली। सारा ही सिस्टम चौपट हो गया है। गड़बड़ीकी क्या कोई हद रह गई है? पुरानी झंझटोंको साफ करते वक्त अगर कोई आत्महत्या कर बैठे तो इसमें मेरा क्या कसूर! फिर भी लोग हैं कि अपराधका सम्पूर्ण गुरुत्व मेरी गर्दनपर लादकर ही-ही

करते-फिरते हैं। न बाबा, यह सब मुझसे बर्दाश्त नहीं होगा—मैं अपना मुँह नहीं किसीको दिखला पा रही हूँ। ना बाबा, बस करो। बहुत हो गया। जिम्मेवारी सौंपना चाहते हो मुझपर तो पूरी तरह सौंप डालो। नहीं तो छोड़ो, जहाँसे आये हैं, वहीं लौट चलें।

यह अभियोग और आक्रोश किसके लिए, सो साहब अच्छी तरह समझ रहे थे। विस्मयकी मुद्रामें उन्होंने आलेख्यकी ओर देखा और बोले—लेकिन अमरनाथ तो बेटी, इस तरहका आदमी नहीं है। मैंने उसकी बातोंसे जो कुछ समझा—

साहबकी बात खतम नहीं हुई थी, बीचमें ही कमलकिरण बोल उठा—बल्कि इलाके भरमें वही एक आदमी है—ठण्ठे देहातके इन जाहिल गवारोंके बीच—तू, क्या सोचती है इन्दु? है न यही बात?—यह कहकर उसने वाक्यको अ-समाप्त ही छोड़ दिया।

प्रश्न और उत्तरकी धारा यहाँ आकर रुक गई। कमलकी बात और इशारेका बैलेन्स ठीक रखनेके लिए आलेख्यके मुँहसे जो कुछ निकलना चाहिये, वह नहीं निकला। श्रोताओंकी प्रत्याशा पूरी नहीं हुई। अमरनाथको गँवार बाम्हन कहकर गालियाँ भले ही दे लो, उसे अशिक्षित नहीं कह सकते हो। वह काफी पढ़ा-लिखा आदमी है। तालीमके ट्रेड मार्क, पढाईके ठप्पे उसपर न पड़े हों, ऐसी बात बिल्कुल नहीं है। सभ्य-समाजमें जिसका सिक्का चलता है ऐसी उपाधि है उसके पास। आलेख्य यह सब जानती थी। एक बात और—गांगुलीकी आत्महत्यासे क्षुब्ध होकर गाँवके लोगोंने चाहे जो किया हो, अमरनाथने कुछ नहीं किया। यह बात अमरनाथने स्वयं भी बतलाई थी और दूसरोंसे भी यही मालूम हुआ था। गांगुलीके लिए और उसके परिवारके लिए भी अमरनाथने बहुत कुछ किया है। आलेख्यके खिलाफ जो जहर लोगोंमें फैल रहा था, उसके भी रोकनेमें अमरनाथने कम कोशिश नहीं की थी। यह सब सच था। आलेख्यको स्वयं भी इन सब बातोंका सबूत मिल चुका था, लेकिन गंगा उल्टी बह रही थी। अमरनाथको दुष्ट और अपराधी सिद्ध करनेकी मानों होड़ मच गई इन लोगोंमें। आलेख्यका गुस्सा काफी सुलग चुका था। अनुपस्थितिमें अमरनाथके मत्थे सारा कसूर थोपनेकी कोशिशका उसने तनिक भी प्रतिवाद नहीं किया।

साहबका दिल इससे दुखी हो रहा था, लेकिन उनके मुँहसे कड़ी बात तो

निकलेगी नहीं। माथेपर हाथ फेरते-फेरते बोले—वही तो, यह काम अमरनाथका ठीक नहीं हुआ। उसका स्वभाव ऐसा नहीं है। साधारणतः वह अच्छा है।

कमलकिरण बोला—साधारणत लोग भी अच्छे हुआ करते हैं, किसीकी कारका शीशा कोई क्यों फोड़ेगा ?

हूँ—साहबने कहा।

कमलने कहा—आलेख्यकी बातपर हमें ध्यान देना ही चाहिये। इन लोगोंके परोपकारका अर्थात् औरोंको हानि पहुँचानेके कामका प्रतिकार करना ही होगा हमें।

साहबने अन्यमनस्कभावसे उत्तर दिया—जरूरत पड़नेपर तो ऐसा किया ही जायगा।

कमलकिरण बोले—क्षमा कीजियेगा मिस्टर रे, आप कुछ और ही किस्मके जमींदार मालूम होते हैं। मेरा सम्पर्क कई बड़ी जमीन्दारियोंसे रहा है। एक बात मैं सभी जगह देखता रहा हूँ—जमीन्दारों और रैयतोंमें विरोध पैदा करा देना ही कुछ देशभक्तोंका धंदा हो गया है। बोल्शेविक प्रोपेगण्डा और उनसे मिली रकम ही इसके पीछे काम कर रही है। मैं सच कहता हूँ मिस्टर रे, सरकार इस सम्बन्धमें ऐसे अनेक तथ्य बटोर चुकी है जिनकी हम-आप सपनेमें भी कल्पना नहीं कर सकेंगे। बड़ी होशियारीकी जरूरत है। गाफिल रहनेपर जायदादसे हाथ धोना पड़ सकता है।

कमलका मुँह दुश्चिन्तासे फीका पड़ गया। वह इंदु और आलेख्यकी ओर देखता रह गया। किन्तु जमींदारीके जो असली मालिक थे उनके चेहरेपर फिक्रकी कोई छाप नहीं पड़ी। वह शान्त भावसे बोले—हिन्दुस्तानके दूसरे सूबोंकी बात तो मैं नहीं जानता, परन्तु अपने इस बंगालकी स्थिति अन्य प्रकारकी है। यहाँ राजा और प्रजाका पारस्परिक संबंध कुछ दूसरी ही किस्मका है कमल यों चाहे तुम लोग कुछ भी कह सकते हो, डरने-घबड़ानेकी क्या जरूरत ?

कमलने प्रतिवाद किया—पचीस साल पहले इस तरहका सतजुगी जमाना रहा होगा। अब स्थिति बदल चुकी है।

नहीं बदली है, यह तो नहीं कहता हूँ मैं—साहब बोले।

कमलने कहा—इसी परिवर्तित स्थितिका तो डर है।

साहबने मुसकराकर जवाब दिया—प्रजाकी मनःस्थितिमें भारी परिवर्तन आ गया है। अब यह चाहे शिक्षाका परिणाम हो, चाहे युगका धर्म हो और चाहे जमीदारी अत्याचारोंका ही नतीजा हो। जनता अब जमीन्दारी-प्रथाका नाश चाहती है।

दो रोज पहले हो या दो रोज बाद; जमींदारी मिटेगी जरूर। जमींदारोंको विदा होना होगा। तुम किसी भी तरह उन्हें बचा नहीं सकोगे। रही अब हमारी अपनी जमींदारीकी बात, सो भी सुन लो। अपनी प्रजाको हम सचमुच ही प्यार करते हैं। कभी मैंने उनपर अत्याचार नहीं किया है, कर्मचारियोंको भी किसीपर जोर-जबर्दस्ती नहीं करने दी है। जाओ, जिससे चाहो पूछ आओ। भविष्यमें आलो यदि मेरी परंपराका पालन कर ले जाय तो उसे घबड़ानेकी कतई जरूरत नहीं।—ओह, रात कितनी हो गई!

बड़ी देरतक आलेख्य कुछ बोली नहीं। लेकिन पिता उठने लगे तो उसने कहा—बाबा, तुमने मेरे लिए यह बात कही है?

हँसकर साहब बोले—बेटी, तुम्हारा ही नाम लेकर तो कह गया हूँ।

"बाबा, कितनी बार तुमने वह रकम रैयतको माफ कर दी है जिसपर हमारा हक था, है न याद?"

"क्यों नहीं बेटी!"

"मुझसे भी क्या तुम वही अन्याय कराना चाहोगे?"

रे साहब मुस्करा पड़े। स्नेहसनी आवाजमें बोले—बेटी, जिस रकमको तुम अपना प्राप्य समझती हो वह सर्वथा न्याय्य ही नहीं होता। लगान तुम्हारा प्राप्य हो सकता है, इसीसे उसका औचित्य भी प्रमाणित हो गया, ऐसी बात नहीं कही जा सकती। लगान प्रजाका मैंने तभी माफ किया है जब कि मुझे उसका लेना अमुक कारणसे अनुचित लगा है।

कमलकिरण साहबकी बातको नहीं समझ सके, किन्तु आलेख्य समझ गई। छोटी थी, तभीसे पिताको वह प्यार करती आई थी। माँ उनका जितना ही तिरस्कार करती, वह पिताके प्रति श्रद्धा प्रकट करनेके उतने ही उपाय खोज निकालती। घर और बाहरके अपमानोंसे अपनेको बचानेमें सचेष्ट, परन्तु असमर्थ पिताके व्यक्तित्वको यह लड़की भली-भाँति पहचानती थी। उनकी किसी भी बातका मतलब समझते आलेख्यको देर न होती थी। आज भी पिताके कथनका तात्पर्य वह समझ गई, बोली—बाबा, यही तुम्हारा आदेश है क्या? इसी तरह चलनेकी आज्ञा दे रहे हो?

साहब निषेधमुद्रामें जोर-जोरसे माथा हिलाने लगे और बोले—नहीं बेटी, यह

मेरा आदेश नहीं है, यह तुम्हारे पिताका आदेश नहीं है बेटी ! इस ससारमें सभी एक प्रकारसे नहीं चल सकते—अभाव शक्तिका भी रहता है और प्रवृत्तिका भी। परन्तु तुम इस रास्तेपर यदि चल सको, तो मुझे प्रसन्नता ही होगी—इतना-भर कह सकता हूँ।

आलेख्य बोली—मन करता है सब देख आऊँ बाबा ! जहाँ मार-पीट हुई है, वहाँ खुद हो आना चाहती हूँ।

साहबने कहा—अच्छा तो कहती हो ! कल ही मैं मैनेजर बाबूको ठीक-ठाक कर देनेको कहूँगा। नदीमें अभी पानी है, न व बाजार तक चली जायगी।

इंदु अभीतक कुछ बोली नहीं थी, जल-य त्राकी चर्चा सुनकर उसका चेहरा खिल गया। उछलती आवाजमें बोली—मैं भी साथ चलूँगी आलो ! फिर कमलकी तरफ मुखातिब होकर कहा—दादा, जरूरी काम न हो तो दो-चार रोज रुक जाओ न !

"क्यों, कोई वजह भी तो हो !"

हमारे साथ तुम भी चलते—इंदुने कहा—छोटी नदीमें नावकी सवारी तुमने नहीं की है दादा ! चलोगे न हमारे साथ ?

कमलकिरणने आलेख्यका भाव जानना चाहा, किंतु वह उस वक्त किसी दूसरी ओर देख रही थी। आलेख्यका चेहरा नहीं दिखाई दिया। अपनी बहनके आवेदनका इंगित स्पष्ट था। कमलका दिल धड़कने लगा, अपनी उत्सुकताका आभास उसने मुखाकृतिपर नहीं पड़ने दिया। निःस्पृह स्वरमें बोला—ना, देर हो जायगी लौटनेमें—अच्छा, न होगा तो चलेंगे।

साहबने गर्दन हिलाकर कहा—जरूर जाना भाई, लेकिन कहीं झगड़ न बैठना ! अमरनाथ भी तो वहाँ मौजूद रहेंगे।—इंदु, मुझे अब फुर्सत दो, गुडनाइट !

चिन्तित चेहरा, धीमी चाल—रे साहब वहाँसे निकले और सोनेके कमरेकी ओर बढ़े।



८

राय-खानदानकी यह जमींदारी कोई बड़ी जमींदारी नहीं थी, लेकिन आमदनीकी दृष्टिसे उसे निहायत मामूली भी नहीं कहा जा सकता। मालिक सदाके परदेशी

ठहरे। काम-काज, वसूल-तहसील सभी कुछ नौकरोंके जिम्मे सुपुर्द था। अभीतक जमींदारी मजेमें चलती आई थी। देख-भालकी जिम्मेदारी नौकरोंपर होनेपर भी ढाँचा बिगड़ा नहीं था। इसकी वजह चाहे प्रजाकी धर्म भीरुता रही हो चाहे अनमने स्वभाववाले रे साहबका भाग्य रहा हो। आमदनी बढ़ी भले ही न हो मगर चोरी घूस-खोरी वगैरह भी बंद थी। इंतजाम जबसे आलेख्यके हाथोंमें आया था तबसे एक विचित्र प्रकारका हेर-फेर नजर आ रहा था। नौकर-चाकर नए मालिककी कड़ाईसे तिलमिला उठे। बूढ़े नयन-गांगुलीकी आत्म-हत्याके बाद, लगा था, यह कड़ाई कम हो जायगी लेकिन बाजार (हाट) की घटनाको लेकर आलेख्यकी मुस्तैदी फिर उभर आई। कल जो अमरनाथसे झड़प हुई उसका नतीजा यह हुआ कि पिछले दिनों जो भी कुछ लज्जा या ग्लानि मनको कुण्ठित बना रही थी अब उसका अंत हो गया। आलेख्यको रत्तीभर सदेह नहीं रह गया कि औरोंकी संपत्तिकी अकारण हानि करनेवालोंका दल देश-भरमें पैदा हो गया है और यह अमरनाथ भले ही अध्यापक हो, है मगर उसी दलका आदमी।

जायदाद—चल और अचल सपत्ति—कितनी है और कहाँ-कहाँ है, सो सब अपनी आँखोंसे देखकर मालूम कर लेनेका निश्चय हुआ था। उसी निश्चयको क्रियात्मक रूप देनेके लिए आलेख्य आज जुट गई। सवेरेसे ही उसने मैनेजर बाबूको कामपर बैठा दिया, खुद कमलकिरणकी मददसे एक नकशा बनाने लगी। बाट-घाट, सड़क-मैदान ध्यानमें रखने होंगे। इस काममें दोनोंकी तबीयत रमी हुई थी। नहाने और खाने तकका ख्याल नहीं रह गया। नौकरोंके कई बार याद दिलानेपर दोनों उठे और जैसे-तैसे निबटकर फिर आ जुटे। इसी तरह दिन ढल गया।

साथी-संगीके अभावमें इंदु अनमनी-सी इधर-उधर टहल रही थी। बीच-बीचमें आकर टेबुलके पास खड़ी हो जाती। दोनों क्या कर रहे हैं—वह गौरसे देखती रहती। उसकी तो वहाँ कोई जरूरत थी नहीं, क्या करती? वहाँसे टल जाती। मकानके चारो ओर, बागानमें और इधर-उधर वह खूब घूमी फिरी। तो भी बेचारीका वक्त कट नहीं रहा था। इतनेमें साहब बाहर निकले, हाथमें छड़ी थी।

विस्मित दृष्टिसे उन्होंने पूछा—अकेली क्यों हो बेटी? कहाँ भटक रही हो?

"दादा और आलो मैप तैयार कर रहे हैं, अभी हुआ नहीं।"

"कैसा मप?"

इंदुने कहा—वे जमींदारीका मुआयना करने निकलेंगे। कहाँ क्या है, याद-दाश्तके लिए मैप बना रहे हैं।

और, वहाँ तुम्हारी कोई जरूरत नहीं है बेटी?—साहब मुस्कराकर बोले। परन्तु हँसकर इंदुने जवाबको गोल कर दिया। कुछ क्षण बाद वह बोली—आप कहाँ जा रहे हैं चाचा?

नये संबोधनने रे साहबके मन-प्राणको झंकृत कर दिया। पुलकित होकर वह इस लड़कीकी ओर देखते रह गये। थोड़ी देर बाद बोले—बचपनका मेरा एक साथी बीमार होकर घर लौट आया है, उसीको देखने जा रहा हूँ बेटी।

"मै भी चलूँगी चाचा।"

"अरे, नजदीक नहीं है। मीलभर दूर होगा। थक जो जाएगी तू।"

"मैं काफी दूर चल सकती हूँ"—साहबका हाथ पकड़कर वह खुद ही आगे बढ़ गई।

साहबने प्रस्ताव किया—बग्गीसे चलें।

इंदुने इसपर ध्यान ही नहीं दिया।

गँवई-गाँवका रास्ता। चलने-फिरनेके निशान साफ नहीं थे। रास्ता कहीं पोखरके भिंडेपरसे गया है, कहीं नदीके रीते पाटमेंसे होकर गुजरा है और कहीं किसीके आँगनमें घुसकर आगे निकला है। इंदु सकोचका अनभव कर रही थी। औरतें काम काज छोड़कर जहाँकी तहाँ खड़ी हो गईं, कुछ तो अपने अपने पुरवेसे बाहर आ गईं। मर्द लोग मालिकको देखते ही तपाकसे उठकर खड़े हो गये। बहुएँ घूँघट की आड़मेंसे अपनी उत्सुकताको शान्त करने लगीं। कुछ और आगे बढ़नेपर सुनसान मैदान मिला, तो इंदु बोली—इन लोगोंने हमारी जैसी लड़कियाँ शायद नहीं देखीं।

सिर हिलाकर साहबने कहा—हाँ, बात तो कुछ ऐसी ही है।

"चाचा, इनकी नजरोंमें हम एक अजीब जंतु-से लगते होंगे, है न चाचा?"—कहते कहते वह शर्मा गई।

साहबने उत्तर नहीं दिया, हँसे जरूर। कुछ दूर चुपचाप चलकर इंदु बोल पड़ी—ये लोग एक तरहसे ठीक ही हैं, मजेमें चल जाता होगा।

साहब फिर मुसकुराये। कहा—एक तरहसे तो दुनियामें सभी ठीक हैं बेटी। सबका मजेमें चल जाता है।

इन्दु बोली—नहीं चाचा, मेरा मतलब था कि हमारी अपेक्षा इन लोगोंका जीवन सुखी है।

वृद्धने इसका कोई स्पष्ट उत्तर नहीं देकर पूछा—तो क्या इनकी तरह तुम लोग रह लोगी बेटी?

इंदुने तड़से कहा—'तुम लोगों'से क्या मतलब है आपका? आलोसे मतलब है तो वह देहाती दुनियाका यह जीवन नहीं अपना सकेगी। अगर आपका मतलब मुझसे है, तो मैं बता दूँ! चाचा, मेरा मन इस प्रश्नका जवाब 'हाँ' में दे रहा है।—कुछ देर वह चुप रही, जाने क्या सोचती हुई। फिर बोली सहज भावसे—अम्मी और बाबा मुझपर खुश नहीं रहते। अपने समाजकी लड़कियाँ परोक्षमें मेरा मखौल उड़ाती हैं, फिर भी मैं अपनेको उनके अनुरूप नहीं बना पाती। एक तीव्र द्वंद्व मेरे अन्दर चलता-रहता है। बहुधा मेरे मनमें यह बात उठती रहती है कि मौजूदा समाजके हम मानव-प्राणी जिन वस्तुओंको या जीवनके जिन कर्मोंको अत्यन्त आवश्यक समझते हैं और जिनके सहारे हम अपना ससार चलाते हैं, उनमेंसे अधिकांश निरर्थक एवं सारशून्य हैं। माँकी रायमें, वे सभ्यताके अग हैं; सभ्य मनुष्यके लिए अपरिहार्य हैं परन्तु मुझे अच्छे नहीं लगते। सभ्यताके इस स्तरको मैं पसन्द नहीं करती।

यह प्रवचन सुनकर साहब इन्दु ओर गौरसे देखते रहे। चेहरा मुसकानसे उद्भासित था।

बहुत बोल गई थी इन्दु, मन-ही-मन उसे तदर्थ सकोच भी हो रहा था। उसे होश आया—साहबके समक्ष आधुनिक सभ्यताका विरोध करना ठीक नहीं था। अब उसने चाहा कि सँभाल ले, बोली—जिन्हें जीवनका यह आधुनिक क्रम पसन्द है, उनके लिए मैंने कहाँ कुछ कहा चाचा! मैं तो उनके लिए कह रही थी जिन्हें वह अप्रिय है, इस सभ्यताके कारण जिनका मन उद्विग्न रहता है। आप मुझपर नाराज तो नहीं हो गये चाचा?

मुसकुराहटके बाद हलकी आवाजमें जवाब आया—नहीं बेटी, नाराजी कैसी?

इंदु फिर बोलने लगी—यह देखिए, शील-संकोच-भरी ये लड़कियाँ रास्तेके किनारे खड़ी हो गई हैं। मर्दोंमेंसे कोई आपको प्रणाम कर रहा है, कोई सलाम। हमारी इनकी किसी बातमें बराबरी नहीं, लेकिन इसीलिए क्या सबके सब ये

असभ्य हो गये ? बदनपर कपड़े नहीं, पैर खाली हैं, कमरसे बिष्ठी झूल रही है—इसमें शर्मानेकी क्या बात है ? औरोंका स्वागत-सत्कार तो हमसे कम नहीं करते थे ?

बूढ़े बाबू सुनते ही गये, बीच-बीचमें होठ खिल उठते थे।

" आप तो मेरी किसी बातका खण्डन या मण्डन नहीं कर रहे। जरूर आप रंज हैं मुझपर।",

अबकी रे साहबका मुँह खुला। बोले—गलत समझ रही हो मुझको बेटी ! गाँठ बाँध रखो इन्दु, कि तुम्हारे बूढ़े चाचा तुमको मन-ही-मन आशीष दे रहे हैं, मन बेचारेको कुछ बोलनेकी फुर्सत दे तब न मुँह खोलें चाचा बाबू !—अच्छा, तुम्हारे दादाकी क्या राय है बेटी ?—वह उत्सुक नेत्रोंसे इंदुकी ओर देखने लगे। वह उत्सुकताके हेतुको समझ रही थी परन्तु क्या कहे, सोच नहीं पाई बेचारी।

बात चाहे कैसी भी क्यों न हो, आग्रह प्रकट करना रे साहबका स्वभाव नहीं था। वह इन्दुकी दुविधाको समझ गये, प्रसंग बदलते हुए बोले—बेटी, तुम लोग जा कब रही हो ?

" कहाँ चाचा ?"

" जमींदारीका मुआयना करने।"

इन्दुने कहा—मुझसे तो उन्होंने कुछ कहा नहीं। लेकिन उस काममें मेरी कोई दिलचस्पी भी नहीं है। आपको एतराज न हो तो तबतक अपने ही साथ रहने दीजिएगा मुझे। बड़ी खुशी होगी मुझको चाचा !

मित्रका मकान आ गया। साहबने छड़ी उठाकर इशारा किया—यही घर है इन्दु, पहुँच गये।

इन्दुने सकोच प्रकट किया। बोली—सामने ही तो मैदान दीख रहा है, क्यों न मैं तबतक घूम आऊँ चाचा ? आधे घण्टेसे ज्यादा नहीं लगाऊँगी—और आपके मित्रसे मेरा तो कोई परिचय है नहीं।

साहबने कहा—बेटी, यह मेरा अपना गाँव ठहरा। परिचयकी यहाँ कोई जरूरत नहीं। लेकिन मैं तुमपर ज़ोर नहीं डालूँगा—हँसकर बोले—बीमारके करीब बैठनेसे खुले मैदानमें घूम आना कहीं बेहतर होता है, इसे भला मैं क्यों और कैसे अस्वीकार करूँ ? जाओ बेटी, रास्ता न भूल जाओ, इतना-भर ध्यान रखना।

इंदु आगे बढ़ी तो साहबने उच्च स्वरमें कहा—मैदानके बाद जो बस्ती दिखाई पड़ रही है, वही मौजा वराह है। मैदानके छोरपर दस ही कदम आगे जाओगी तो अमरनाथकी पाठशाला मिलेगी। मिले तो अमरनाथसे कहना, कल जरा मिल ले।

रे साहब अपने मित्रके मकानमें घुसे।

९

मैदानके बीचोंबीच पगडण्डी चली गई है। वराह उस छोरपर पड़ता है। किसीसे पूछना नहीं पड़ा। इन्दु सीधे उस त्रिमुहानीपर पहुँच गई जहाँ मैदान खतम होता था। एक बरगदका पेड़ था—भारी भरकम। उसीकी छायामें अमरनाथकी चतुष्पाटी (पाठशाला) थी। दस-बारह छात्र अमरनाथको घेरकर बैठे हुए थे, वह खुद न्यायदर्शन पढ़ा रहा था। इन्दु जाकर वहीं खड़ी हो गई।

अमरनाथको अपनी आँखोंपर विश्वास ही नहीं हुआ। मुँहसे बोल भी नहीं फूटा। शिष्य-समेत अध्यापक उठ खड़े हुए। स्वागत-सम्भाषणके उपरान्त अमरनाथ बोले—कैसा सौभाग्यग्यशाली हूँ मैं! और लोग कहाँ रह गये?

एक विद्यार्थी आसन उठा लाया। पहले इन्दु ही भूल गई जूते खोलना, पीछे खोल डाले और आसनपर बैठ गई। बोली—अकेली हूँ, और कोई नहीं आया है।

अमरनाथको इन्दुकी बात असम्भव लगी। यह अकेले कैसे आई होगी?

इन्दु बोली—चाचाजीके साथ मैं घूमने निकली। वह अपने बीमार मित्रसे मिलने गए हैं। मैं तबतक इधर निकल आई। आपसे कहा है, कल मिल लें।

अमरनाथ बोले—यह खबर तो खैर दूसरा भी ला सकता था। जमींदारके यहाँ आदमीकी क्या कमी? मगर आप जो पधारीं, सो तो हमारे लिए बहुत बड़ा सौभाग्य है। रायमहाशय किसके यहाँ आए हैं, यह तो बताइए?

इन्दुने कहा—नाम तो मैं उनका नहीं जानती, हाँ मकान पहचानती हूँ। आपका मकान यहाँसे कितनी दूर होगा अमरनाथ बाबू?

"दो मिनटका रास्ता है।"

"मेरे लिए पीनेका पानी मँगवा दीजिए।"

एक विद्यार्थी दौड़ा गया। थोड़ी ही देर बाद पत्थरकी तश्तरीमें जरा-सा छेना-गुड़ और पत्थरके गिलासमें ही पानी लेता आया। इन्दुने शालीनताका अभिनय

नहीं किया—यह कहकर कि रहने दीजिए, कुछ नहीं खाऊंगी। चुपचाप खा गई और पानी भी पी लिया। फिर बोली—तो अभी मुझे आज्ञा दें, चलूँ।

इस सुशिक्षित लड़कीकी निश्छल सरलतासे अमरनाथको प्रसन्नता हुई। वह बोले—अपनी इच्छासे आप यहाँ तक आ गई हैं, तो मैं यों ही लौट नहीं जाने दूँगा। इस दरिद्र ब्राह्मणकी कुटियामें आपकी चरण-धूलि जबतक नहीं पड़ती तबतक मैं कहाँ मानूँगा? माँ हैं, ससुरालसे छोटी बहन भी आई हुई है। उनसे बिना मिले आप जाएँगी कैसे? चलिए—

इन्दु फौरन राजी हो गई, बोली—चलिए, लेकिन चाचाजी मेरे लिए घबराएंगे जो?

अमरनाथने कहा—घबराएँगे क्यों, उन्हें खबर कर दी गई है। पाठशालाके पिछवाड़ेसे बाग शुरू हो गया था। आगे बड़ा सा एक पोखरा था। उसके भिंडों-पर किस्म किस्मके फूल लगे हुए थे। रंग-बिरंगे फूलोंसे वहाँका दृश्य बड़ा ही सुहा-वना था। अमरनाथ आगे आगे, पीछे पीछे इन्दुमती। दोनों अहातेके अन्दर दाखिल हुए। बड़े आकारका चण्डीमण्डप मिला। दिनांतके शेष प्रकाशमें दो छात्र कुछ लिख रहे थे वहीं बैठकर। मण्डपके दूसरी तरफ पाँच-सात तगड़ी गायें घास और खली-भूसी खा रही थीं, बछड़े भी बँधे थे। काला-झबरा कुत्ता बैठा हुआ था। आगतुकको देख पूँछ हिला-हिलाकर वह मानो स्वागत-सत्कार करने लगा। पूरबकी ओर बखारोंकी कनार सौभाग्य सूचित कर रही थी। अड़हुल (जवा)का एक झाड़ लाल लाल फूलोंसे लद रहा था।

अन्तत दोनोंने आँगनके अन्दर पैर रखा।

मिट्टीकी भीतोंवाले घर थे, आठ-दस होंगे। समूचा आँगन गोबरसे लिपा हुआ था, ऐसा स्वच्छ इतना साफ कि जूता पहने जाते हुए पैर ठिठक गये। शाम अभी अभी हुई थी। गुग्गुलका सुवासित धुआँ वातावरणको खुशगवार किये हुए था।

अमरनाथकी विधवा दीदी ठाकुरजीकी आराधनामें थी, माँ खबर पाते ही दौड़ी आई। बच्चेको गोदीमें सँभाले छोटी बहन भी सामने आ गई। इन्दुने अमर-नाथकी माको प्रणाम किया—पर छूकर। वृद्धाने हाथसे इन्दुकी ठुड्डी छू ली और चूम लिया। उन्होंने जो दो शब्द कहे उस वक्त, इदुका अंतःकरण उन्हींसे परितृप्त हो गया। उसने सोचा—इतना अधिक स्नेह और इतना आदर अबतक उसे नहीं मिला था।

माँने बरामदेमें आसनी बिछा दी और इंदुसे कहा—बठो बेटी।

इंदु बैठ गई तो माँ बोली—संध्या होते ही आज गरीबके यहाँ लक्ष्मी पधारी हैं।

इंदु पढ़ी-लिखी लड़की थी लेकिन फिर भी उसकी बोलती बंद हो गई। शिक्षा, संस्कार, अभ्यास ऐसे थे कि इन लोगोंको अपनी जात-पाँतका ख्याल कभी आता ही नहीं था और न इस बातकी कभी उस समाजमें जरूरत ही पड़ती थी। परन्तु आज शुद्ध-आचरणवाली इस विधवा वृद्धाके समक्ष इंदुको जाने कैसा संकोच-सा हो आया। वह बोल उठी—माँ, आप लोग ठहरे ब्राह्मण और मैं हूँ कायस्थकी लड़की। अपने हाथोंसे क्यों आपने मेरे लिए आसनी डाली ?

माँ बोली—लक्ष्मी मेरी, सन्ध्याके समय तुम हमारे घर आई हो। देवताकी जात नहीं हुआ करती। तुम सभी जातियोंसे ऊँची हो।

अमरकी छोटी बहन देखनेमें इंदुकी हम-उम्र मालूम होती थी। पास आकर बैठ गई तो इंदुने बच्चेको उसकी गोदसे ले लिया।

माँने पूछा—बेटी, नाम तो बताना।

इंदुमती बोली—माँ, मेरा नाम इन्दु है।

" तभी तो ! इतने सुन्दर मुखड़ेवालीका नाम भला और होता ही क्या ? "

इंदु लजा गई, कृत्रिम मुस्कानने संकोचपर पर्दाका काम किया। क्षणभर बाद उसने कहा—एक दफे और आऊँगी उस वक्त आप क्या कहेंगी; यही सोच रही हूँ माँ।

माँ हँसकर बोली—आओगी तो बताऊँगी ही —मगर आना जरूर होगा बेटी ! इंदुने हामी भरी।

अमरकी दीदी ठाकुरजीकी सेवा करके आ गई, कहा—आरती होने-ही-वाली है, कुछ खिलाये बिना कैसे तुम्हें जाने देंगे ?

अदाज लगाकर इंदुने मालूम कर लिया कि यह कौन हो सकती है। बोली—दीदी, आप तनिक भी चिंता न करें। खा तो मैं पहले ही चुकी हूँ। एक रोज और आऊँगी, फिर ठाकुरजीकी प्रसादी पाऊँगी ही ! आज तो इसमें तिलभर भी जगह नहीं रह गई, यह कह कर उसने पेटकी ओर इशारा किया एवं प्रतिज्ञाके उत्साहमें बोली कि कलकत्तेके लिए प्रस्थान करनेसे पूर्व एक बार वह फिर इस घरमें आयेगी, भगवानका नैवेद्य और माँके पैरोंकी धूल उसे चाहिए ही।

इदु उस आँगनसे निकली तो रातने अपनी काली चादर धरतीको अच्छी तरह उढा दी थी। अमरनाथके हाथमें हरीकेन लाल्टेन थी। इंदुने कहा—यह किसी दूसरेको थमा दीजिए जो मुझे पहुँचा आयगा।

अमरनाथ बोला—सिवाय मेरे, और कौन आपको पहुँचा आयगा?

"मतलब?"

"मतलब यही कि स्वेच्छासे ही आप आज हमारे यहाँ आ गई हैं। यदि दूसरा कोई आपको पहुँचाने जायगा तो निश्चय ही मैं अपने कर्तव्यसे च्युत होऊँगा।"

"लेकिन लौटते-लौटते रात काफी हो जायगी।"

"होगी तो होगी, कर्तव्य-पालनसे जो सन्तोष मनको होगा जरा उसका भी तो अनुमान आप कीजिए।"

इदु गभीर होकर बोली—तो चलिए, परंतु आज एक भारी भ्रमका निवारण स्वत॰ हो गया। हम आपको अत्यन्त दरिद्र समझ बैठे थे।

अमरनाथ कुछ बोले नहीं। इदु क्षणभर बाद बोली—आपके यहाँसे आनेको जी चाहता ही कहाँ था? उत्कट इच्छा हो रही है कि आलोका मकान छोड़कर कुछ दिन यहीं माँके पास आकर रहूँ।

अमरनाथ लाल्टेनकी ठढी रोशनीमें पलभर इदुकी ओर देखता रहा, फिर आहिस्तेसे बोला—अभी मैं ऐसे सौभाग्यकी कल्पना तकका साहस नहीं कर पा रहा हूँ।

(मासिक वसुमती, वैशाख १३३२)

आगामी काल

१

स्वदेश-कल्याणकी मासिक बैठक शामको होगी सात बजे, अभी चार बज रहे हैं। काफी वक्त है। एककौड़ी इस संस्थाके प्रतिष्ठाता और प्रमुख हैं। प्रदीपमें, बाती जलानेवालोंका अभाव नहीं, मगर उसके लिए तेल अकेले एककौड़ीको ही जुटाना पड़ता है। उसके घरमें ही संघका दफ्तर है, उसकी ही बैठकमें संघकी बैठकें हुआ करती हैं। बैठकमें, सर-जमीनपर दरी बिछी हुई है, उसपर धुली हुई सफेद चादर और दीवारके सहारे कुछ तकिये रख दिये गये हैं। उन्हींमेंसे एक तकियेके सहारे एककौड़ी बैठा था, मुँहसे हुक्केकी नली लगी थी। आँखें बन्द करके मानो थोड़ा आराम ले रहा हो। ऐन उसी वक्त वहाँ जलधि दाखिल हुआ, बिना किसी आहटके। एक ओर बैठकर वह बोला—एककौड़ी दादा, सो रहे हैं क्या?

आँखें खोलकर एककौड़ी सँभल बैठा। अँभाई ली, चुटकी बजाई। फिर गंभीर स्वरमें कहा—सोऊँगा क्या, गहरी चिंतामें निमग्न था।

क्षणभर रुककर वह फिर हँसा और बोला—सो जाना भी गुनाह नहीं है भाई[१] उमर भी तो काफी हुई। अब मेरे लिए यह सब कुछ अस्वाभाविक थोड़े ही कहलायगा!

इसपर जलधिको भी हँसी आ गई, बोला—ओ हो, कितनी अधिक उमर हो गई है आपकी!

जवानीका जो सर्वसाधारण लक्षण है, सो अब रूपांतरित होने जा रहा है। कनपटीके ऊपर, ललाटके दोनों छोरोंपर बालोंमें सफेदी आने लगी है। किंतु शरीर है सुगठित, बल और उत्साह अब भी सीमाहीन है। एककौड़ी विधुर ठहरा।

---

१ बंगालमें प्रथा है कि जमाई लेकर चुटकी बजाते हैं—दाहिने हाथका अँगूठा और बीचवाली उंगलीके सहारे।

मकान बहुत बड़ा है, परिवारके नामपर दस सालकी लड़की और विधवा फूफी हैं। पिता जूट और तीसीके सफल व्यापारी थे, काफी रकम छोड़ गये हैं। एकके बाद एक संतान होती गई और मरती गई। कई भाई-बहनके बाद एककौड़ीका जन्म हुआ, पालन-पोषणमें सावधानी इस हदतक बरती गई कि उसे अभिभावकोंका पागलपन कहना चाहिए। पिताने कभी एककौड़ीको स्कूल नहीं जाने दिया, मास्टर और पंडित घर आकर पढ़ा जाते थे—नामी और प्रचुर वेतनवाले अध्यापक। अपने शिष्यके संबंधमें उनके प्रमाणपत्रोंकी भाषा बड़ी ही उदार थी, किंतु यह कहना कठिन है कि जिसे अपनी विद्याकी कभी परीक्षा ही नहीं देनी पड़ी उसकी विद्वत्ताका बाजारदर क्या था, या कि भगवती शारदाने उस व्यक्तिको कितनी मात्रामें अपना वर दिया होगा! पढ़ाई खतम हुई, अध्यापक विदा हुए। फिर भी एककौड़ीके दिन अपनी लाईब्रेरीमें ही कटते आये। फूफीके असीम अश्रुपातको अग्राह्य करके भी जो उसने दूसरा विवाह नहीं किया, यह रहस्य आलमारियोंकी पुस्तकोंके अतिरिक्त और किसे मालूम! इसी प्रकार एककौड़ीके दिन कट जाते, परंतु नहीं कट पाये। 'वंदे मातरम्' की विराट् एवं कठोर ध्वनि अपने कोटरसे उसे हठात् बाहर खींच लाई। इसके बाद जेल गया, दलबंदीके भँवरमें पड़कर नाक-कान-मुँहमें कीचड़ भर लिया, दैनिक और साप्ताहिक पत्रोंद्वारा प्रदत्त विविध-विलक्षण विशेषणोंकी माला शिरोभूषण-स्वरूप मिली। जिनके लिए यह त्याग-तपस्या स्वीकार थी, अंतमें एक दिन उन्होंने ही जब 'चोर' कहकर अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित की, तब बेचारेको असह्य लगा—राजनीतिको तिलांजलि देकर एककौड़ी फिर अपनी लाइब्रेरीमें लौट आया और इन्हीं पुस्तकोंकी शरण ले ली। लेकिन देश-भक्तिका नशा तबतक पूरे जोरपर आ पहुँचा था। पुरानी पुस्तकोंसे उस अमलकी खुराक रत्तीभर भी नहीं मिली तो वह और भी उद्विग्न हो उठा। इस दफे कुछ तरुण-तरुणियाँ आ जुटीं—पालिटिक्ससे तोबा करके वे भी बेकार हो पड़ी थीं—वे बोले, एककौड़ी दा, राजनीतिका अब हम नाम तक न लेंगे। लेकिन फिर इस जिन्दगीका क्या होगा? देशके क्या किसी भी काममें हमारे जीवनका उपयोग नहीं? इस दुर्दशासे तुम हमारा उद्धार करो—जो हो, जैसे हो, जिसके किये हो, हमसे कुछ काम तुम जरूर करवाओ।

एककौड़ी राजी हो गया। तय हुआ, इस बारका प्रोग्राम रहेगा समाजसेवा। ग्राम, नगर, जनपद—सर्वत्र समाजसेवक केन्द्र स्थापित करना। जलधि बोला—

जनताको जागरूक बनाना ही होगा। विद्या, बुद्धि, चरित्र, अर्थोपार्जन, अर्थसंचय—जीवनकी प्रत्येक दिशामें देशवासियोंको हम सचेतन बनावे, बिना इसके सङ्कटसे मुक्ति नहीं, हाँ, भीतर-बाहर द्वेष और कलहकी सृष्टि जरूर चालू रहेगी। योग्य नहीं बनोगे तो योग्यताका पारितोषिक तुम्हें कौन देगा? अयोग्य होनेपर भी किसी तरह अगर तुम योग्यताका पुरस्कार पा ही गये तो वह कै रोज रहेगा तुम्हारे पास? श्रीमंतोंके कपूतोंके धनकी भाँति—पलक मारते न मारते लक्ष्मी गायब हो जायगी। ये युक्तियाँ अकाट्य हैं, इनके प्रतिपक्षमें कोई भी दलील काम नहीं आती।

अतएव कल्याण-संघकी स्थापन गावमें उसकी शाखा-प्रशाखाएँ स्थापित हुईं। एककौडी थे संघके प्रधान, जलधि थे मन्त्री। शाखाओंके सदस्योंकी सख्या दो सौसे ज्यादा थी। आज जैसी मासिक बैठकोंमें जो उपस्थित रहते हैं, उनकी भी सख्या पचाससे कम नहीं होती। दूरसे आये सदस्योंके लिए मार्गव्यय-की व्यवस्था संघकी ओरसे है।

नीचेके जिस घरमें सघका दफ्तर है उसमें बैठकर एक लड़की अविश्रान्त भावसे आफिसका काम करती है, नाम है मणिमाला। जब वह काम करने लगी थी तो तीस मिल रहे थे, अब एककौड़ीने प्रसन्न होकर उसका वेतन बढा दिया है—पचास पा रही है वह आजकल। मकान काफी बड़ा है। शुरूमे एककौडीने मणिमालाको रहनेकी जगह भी देनी चाही थी, मगर वह राजी नहीं हुई। पासके ही मकानमें वह रहती है, खाना खुद ही पकाती है, दूसरा कोई नहीं है। अपनी ड्यूटीपर मुस्तैद, क्या मजाल कि एक भी दिन नागा हो जाय! काममें तनिक भी ढिलाई नहीं। असहयोग-आंदोलनकी दुर्निवार बाढ़में डूबती-उतराती वह कभी इस इलाकेमें आ लगी थी। साथ थे पिता, परन्तु बुढापेमें जेलकी यातनाएँ उनसे बर्दाश्त नहीं हुईं—बाहर आते ही जैसोर या कही, जलोदर-रोगकी वेदीपर बलि हो गये। मणिमालाकी पुरानी कहानी इससे अधिक किसीको मालूम नहीं है। स्वयं वह अल्पभाषी लड़की ठहरी—अपने मुँहसे कुछ नहीं कहती। देखनेमें वह खूबसूरत नहीं है, चेहरेपर एक प्रकारका पौरुष भाव बना रहता है, जिससे कोई खिंचता है और कोई दूर रहता है। कांति साँवली-सी, गठन लम्बी, चर्बी या मांसको बहुलता नहीं—यह देह कर्मठ एवं कष्टसहिष्णु है, सो देखते ही मालूम हो जाता है। जन्मभूमि पूर्व-बंगालमें कहीं होगी, यह तथ्य मणिमालाके उच्चारणसे पकड़में आ जाता है। लगता है, कभी वह कालेजकी छात्री रही है, को

परीक्षा भी पास की होगी। पूछनेपर वह कहाँ कुछ बोलती है, हँसकर टाल देती है। अँग्रेजी और बंगलाकी उसकी लेखन-विधिमें शुद्धता तथा स्फूर्ति देखकर एककौड़ी अवाक् रह जाता है। सघका यह भी एक नियम है कि बीच-बीचमें पुस्तिकाएँ छपवाई जायँ और उनके जरिये प्रचार-कार्य चलाया जाय। प्रचार पुस्तिकाओंका मसाला तैयार करनेकी जिम्मेवारी पहले जलधिपर थी, संप्रति यह भार मणिमालापर आ पड़ा है। पहले, पैम्फलेटके लिए यह लिखित सामग्री हस्तगत करनेमें एककौड़ी पसीना-पसीना हो जाता, अब तो कहते ही हाजिर। जलधि ठहरा सेक्रेटरी, इसलिए लेखोंमें, विना काट-कूट किये, वगैर कलम चलाये उसके सम्मानकी रक्षा नहीं होती।

एककौड़ीने झुँझलाकर मणिमालाको एक ओर ओटमें बुलाकर कहा कि फूलोंके बगीचेमें अगर उसे हल चलानेका शौक है तो जंगली पौधोंके जगलोंकी तो कमी नहीं,—मुझसे कहता तो मैं एकको दिखा भी देता—उससे काम भले ही न बने लेकिन कोई अकाज नहीं होता। लेकिन मणि, इस रचनाको दस आदमी पढ़ेंगे, इसपर हस्ताक्षर करके छपनेके लिए कैसे भेजूँ? उससे कहना कि अबसे वही दस्तखत किया करे।

मणिमालाने जलधिकी ओरसे सलज्ज भावसे कहा, कुछ खराब तो नहीं हुआ है एककौड़ी दादा, छपनेके लिए भेज दीजिए। सशोधन मुझे अच्छे ही लगे हैं।

अच्छी बात है, कहकर एककौड़ीने छपनेके लिए भेज दिया। सघके बाहरी स्वरूपका जरा-सा नमूना दिया, भीतरकी मूर्ति क्रमश प्रकट होगी।

जलधिने हाथकी घड़ीको मिलाकर देखते हुए कहा, चार बजकर पन्द्रह—भीड़ जमा होनेमें तीन-एक घण्टेकी देर है। लेकिन मैं सघका मन्त्री हूँ, मुझे पहले ही आना चाहिए। खा-पीकर ही आऊँगा सोचा था, मगर नहीं हो सका। रास्तेमें सोचा, सुरेन और तारिणीको बुला लूँ, लेकिन दूसरोंके सामने आप कहीं दिल न खोलें, इस डरसे चुप रहा।

एककौड़ीने कहा—सुरेन तारिणी पराये हो गये तो अपना किसे कहते हो?

केवल अपनेको ही अपना कहता हूँ। उनके सामने दिल खोलनेपर भी मैं मुँह नहीं खोल सकता था। इसी बीच दो अनुरोध हैं दादा।

कैसे अनुरोध?

एक यह है कि आप ही संघकी देह, और आप ही प्राण हैं। आत्माकी

आलोचना नहीं करूँगा, चिन्तनीय वस्तु होनेके कारण वह चिन्ताके लिए अनधिगम्य ही रहे। हम केवल अग-प्रत्यंग हैं। तीन सालतक तो इस देहरूपी यन्त्रको खींचता फिरा, अब अनुमति दीजिए कि दूसरेके हाथमें ठेल देनेके पहले इसको गंगा-लाभ करा जाऊँ। दोहाई दादा, नहीं न कहें, हुक्म दें।

प्रार्थनाके मजाकको एककौड़ी नहीं समझ सका, अचरजसे बोला, किसको गगा-लाभ कराना चाहते हो, हमारे सघको ?

जलधिने कहा, हाँ उसीको। मरेगा ही तो, केवल सास निकल जानेके पहले जरा समारोहके साथ घाटपर ले जाना है।

एककौड़ी स्तब्ध देखता रहा।

जलधिने कहा, आफिसके कमरेमें बहीखाते हैं। गिनतीमें कुछ कम नहीं हैं। रहने दो, वे केवल मुमूर्षुके शरीरपरके गन्दे कपड़े हैं। कीमत फूटी कौड़ी भी नहीं, बल्कि रोगके कीटाणुओंके फैलनेकी आशंका है। चलिए, सदस्योंके एकत्र होनेके पहले ही दियासलाई लगाकर सत्कार कर डालें।

एककौड़ीने धीरे-धीरे पूछा, आज तुम्हें क्या हो गया है जलधि ?

जलधिने कहा, क्या हो गया है इसका विवरण सविस्तर आपको नहीं दिया जा सकता। मणिमाला उपस्थित रहती तो आपको समझा देती।

एककौड़ी फिर कुछ देर तक चुप रहा, शायद मन ही मन कारण समझनेकी चेष्टा करता रहा, मगर कुछ स्पष्ट नहीं हुआ। प्रश्न किया, तुम्हारा दूसरा अनुरोध क्या है ?

जलधिने कहा, वह और भी जरूरी है दादा। आपके मामा बड़े आदमी हैं, उनको पकड़कर कारपोरेशनमें हो, म्युनिसिपैलिटीमें हो, जिलाबोर्डमें हो, बीमा कम्पनीमें हो,—अर्थात् आप लोगोंके स्वराज्यके पण्डे जहाँ जरा जमकर बैठ पाये हैं, मेरे लिए एक नौकरी दिला दें। जिसमें दो मुट्ठी खानेको मिल जाय।

एककौड़ीने क्षुब्ध चेहरे, कातर-स्वरमें कहा, दो मुट्ठी खानेको नहीं मिलता है जलधि ?

मिलता क्यों नहीं दादा, नहीं तो जिन्दा कैसे हूँ ? देशकी सेवा करता हूँ। बिलकुल निःस्वार्थ। गुलामी नहीं करता, कहकर लोगोंको ठगकर शान कायम रखता हूँ,—दाहिने हाथको तो दिन-रात वक्ताके मुक्केकी तरह तान रखा है। फिर भी अनदेखे, अनसुने, बाएँ हाथकी हथेलीपर आपके भीखके दो दाने आ

पड़ते हैं। उसीसे मेसका कर्ज अदा करता हूँ, खद्दरका बिल चुकाता हूँ। कुत्ते बिल्लियाँ जिस तरहसे जीती हैं, एक तरहसे वैसे ही। आप बड़े आदमी हैं, बीस-पचीस-पचास आपके लिए गिनतीमें ही नहीं दादा। इससे छुट्टी दीजिए।

एककौड़ी चुप रह गया, कुछ कहा नहीं। दीवालकी घड़ीमें पाँच बज गए। जो नौकर चिलम चढ़ानेके लिए घुसा था, उससे कहा, गोपाल नीचेसे मणि दीदी-को तो बुला ला। जलधि, दूसरेसे अगर लजाते ही हो तो—

नहीं, नहीं दादा, पराया कहाँ? जिन महात्माओंके बीच घूमता-फिरता हूँ वे सभी अंतरंग हैं, सभी आत्मीय हैं। ऐसी कोई बात नहीं हैं जो वे न जानते हों। दस वर्षसे स्वदेश-सेवा-व्रतमें लगा हुआ हूँ। शर्म रही तो जिन्दा कैसे रहूँगा?

नौकर गड़गड़ेपर चिलम रखकर नीचे जा रहा था। जलधिने उसे मना करते हुए कहा, गोपाल—अपने कामसे जाओ। जरा हँसकर कहा, मणिमाला नहीं आई है एककौड़ी दादा। खामखा उसे नीचे भेजनेसे लाभ क्या?

नहीं आई है? ऐसा तो कभी नहीं होता!

नहीं होता तो क्या नहीं होना चाहिए दादा? आज उसकी तबीयत जरा ठीक नहीं है। मैंने ही आनेके लिए मना कर दिया है।

लेकिन अधिवेशनके कागजात? कागजात आज रहने दो।

एककौड़ीने चिन्तित स्वरमें कहा, जिन्हें कभी कुछ नहीं होता उन्हें अगर हो जाता है तो आसानीसे अच्छा नहीं होना चाहता। डर लगता है कि कहीं उसे भुगतना न पड़े।

जलधि चुप रहा। एककौड़ी कहता गया, बड़ी अच्छी लड़की है। जैसी विद्या-बुद्धि है, वैसी ही चरित्रकी निर्मलता, साहस भी वैसा ही है,—डर किसे कहते हैं, जानती ही नहीं।

जलधिने हुँकारी भरते हुए कहा, साहस है, इस बातको मानता हूँ।

हमारा गोपाल, उसका मकान जानता है शामके बाद उसे भेजूँगा। अगर डाक्टरकी जरूरत हुई तो दत्त साहबको बुलाकर ले जाऊँगा।

डाक्टर वैद्यको बुलानेकी जरूरत नहीं होगी एककौड़ी दादा, बल्कि गोपालसे कहला भेजें कि अब वह अधिक अति न करे।

लेकिन जलधि, वह तो अति नहीं करती है।

आप बड़े पुराने खयालके हैं दादा। सब कुछमें पुराने जमानेकी दोहाई देते हैं, परिवर्तनको स्वीकार नहीं करना चाहते हैं। जो भी हो, मणिमालाने अब जो शुरू किया है, साधारण आदमी उसे अति कहे बगैर नहीं रह सकता। उसके

मकानपर जाकर देखा कि बिस्तरपर लेटी है और वह मित्र सिरहाने बैठा सिर दबा रहा है।

एककौड़ीने विस्मित होकर पूछा, मित्र कैसा ? यह तो कभी नहीं सुना है।

फिर वही पहलेकी नजीर ! लेकिन 'ते हि नो दिवसा गताः'—कुछ दिन हुए मित्र आए हैं। कहीं पहले परिचय हुआ था। आख लाल हैं, गला बैठ गया है, पूछा—ठण्ड कैसे लगा ली ? मणिने उस आदमीको दिखाकर कहा, कल रमेनके संग बजबज घूमने गई थी। बस छोड़कर गाँवका रास्ता पकड़कर हम लोग काफी दूरतक घूमे। गंगाके किनारे एक बड़का पेड़ है। उसके नीचे जाकर हम दोनों बैठ गए। आकाशमें चाँद दिखाई पड़ा। पत्तोंके बीचसे छनकर चाँदनीकी रोशनी उतर पड़ी, सामने नदीके जलमें सपना बिखेर दिया,—उठनेकी बात भूल गई। अचानक जब याद आया तो देखा. घड़ीमें बारह बज गए हैं। उतनी रातमें लौटनेके लिए बस कहाँ मिले, इसलिए रात बड़के नीचे खड़े-खड़े बितानी पड़ी। नदीके किनारे खुली जगहमें कुछ सर्दी जरूर लगी, मगर समय कैसे बीत गया यह दोनोंमेंसे किसीको मालूम तक न हुआ। काव्यका चरम था।

एककौड़ीने हतबुद्धि होकर कहा, यह क्या कहते हो जलधि ? यह क्या सच्ची घटना है या तुमने मजाक किया है ?

खामखा मजाक करनेके लिए तो कोई मनाही नहीं थी दादा। उसने सच ही कहा है।

कहनेमें लज्जा नहीं आई ?

नहीं। बल्कि सुनकर मुझे ही अधिक लज्जा आई। चलनेके वक्त कहा, इस उम्रमें एडवेंचरमें रस है, मानता हूँ, मगर एककौड़ी दादा सुनकर ऐप्रीशिएट करेंगे इसका भरोसा नहीं करता। शायद नाराज ही होंगे। उसने कहा, उनके नाराज होनेका कोई कारण नहीं है। मैं बच्ची नहीं हूँ, यह उन्हें समझना चाहिए।

यह एककौड़ीने धीरे धीरे कहा, विलायती कहानीकी किताबमें इस तरहकी घटना पढ़ी है, मगर क्या वे देशको विदेश बना डालना चाहते हैं ?

जलधिने क्रूर हँसी हँसकर कहा, 'वे'का मतलब मणिमाला और उसके नए मित्रसे है। लेकिन उनके अलावा भी देशमें लोग हैं जो इन बातोंको पसन्द नहीं करते हैं।। कमसे-कम मैं नहीं करता। इसके बाद भी अगर उसे रखना पड़ता है तो हमारे कल्याण-संघका नाम जरा बदल देना पड़ेगा।

एककौड़ी निरुत्तर और स्तब्ध बैठा रहा।

जलधि कहता चला,—अब तक सघके लिए आपके कुछ कम रुपये नहीं खर्च हुए हैं। हमारे पास रुपया नहीं है सही, मगर जितना गया है उसका हिसाब नहीं। हिसाब करना भी नहीं चाहता। केवल निवेदन है कि अब इस बेकार युवकके लिए एक नौकरी दिला दें।

एककौड़ी वैसा ही चुपचाप बैठा रहा, जलधिकी बातें उसके कानोंमें पहुँची कि नहीं, इसमें सन्देह है। दीवालकी घड़ीमें सात बज गए। गोपालने आकर खबर दी कि बाबू लोग आ रहे हैं।

२

रमेनने कहा, मेरे एक काका थे जिनके सारे दाँत बँधाए हुए थे। काला दामी टुथ पेस्ट लगाते थे। उनका विश्वास था कि उससे दाँतोंकी जड़ें मजबूत होती हैं। तुम्हारे जलधिकी अक्ल भी देखता हूँ वैसी ही है। वह समझता है कि पहरा देना बहुत जरूरी है, अतएव तुम्हें घेरकर कड़ा पहरा दे रहा है। सुनता हूँ वही तुम्हारा आधा मालिक है। इसलिए मालिकानाके दुरमुससे ठोंक-पीटकर परीक्षा कर लेना चाहता है कि मणिमालाकी नैतिकताकी नींवमें कहीं ढीली-ढाली मिट्टी है या नहीं। उससे खामखा बजबजकी कहानी क्यों कहने गई?

हाय रे भाग्य! सच बात समझनेकी शक्ति होती तो बजबजकी बात सुनकर वह हँसता, बिल्लीकी तरह मुँह नहीं फुलाता। सोचता हूँ, वह तुम्हें किस अक्लसे प्यार करने गया! इडियट।

मणिने हँस दिया। बोली, तुम्हारी अक्ल ऐसी कौन-सी तेज है! तुम्हारी विद्याका विस्तार देखकर हैरान हो जाती हूँ, सुनते-सुनते होश-हवास नहीं रह जाता। गगाके किनारे बारह बज जाते हैं,—मगर बुद्धिके मामलेमें सभी पुरुष बराबर हैं। फिर भी जलधिबाबूकी प्रशसा करती हूँ, मुझे वह और कुछ भी क्यों न सोचें कमसे कम सुन्दर नहीं मानते। लेकिन तुम और भी बेहया हो, और भी बड़े इडियट हो।

अरे मैं जो कालीका भक्त ठहरा। नहीं कहा है कि तुम सुन्दरी हो। कहता हूँ तुम भीमा हो, भयकरी हो,—तुम्हारा मुँह बाना मगरकी तरह है, शरीरका रंग अमावास्याकी रातसे गहरा है, तुम आश्चर्यजनक हो! देवता लोग नहीं समझते हैं, ऐसी बात नहीं, मगर भक्तके मुँहसे बढ़ा-चढ़ाकर सुनना पसन्द करते हैं। अगर

वंगाली न होकर मैं हिन्दुस्तानी होता और मेरे उपास्य देवता हनुमानजी होते तो उनके मुँहपर तेल और सिन्दूरकी गहरी लेप लगाकर हाथ जोड़कर कहता, हे जवाकुसुम-सकाश, तुम तीक्ष्णदंष्ट्र, वज्रनख हो, तुम्हारे शरीरके रोओंमें इन्द्र-धनुषकी द्युति है, तुम्हारी पूँछ आकाशसे जा लगी है, तुम्हारे जैसा वीर दूसरा नहीं, तुम प्रसन्न होकर मेरे प्रति कृपादृष्टि करो। हनुमानजीसे यह बात छिपी नहीं रहती कि भक्त खुशामद कर रहा है मगर वह वर भी दे डालते हैं। अभीष्ट लाभ होता है।

मणिने हँसकर कहा, हनुमानजी तुम्हारी गर्दनमें पूँछ लपेटकर सात समुन्दर पार रख आते,—जहाँसे आए हो, वहीं।

अहा, वह क्या कम लाभकी बात होती मणि! लौट जानेके लिए किराया नहीं लगता, हवाई जहाजसे भी जल्दी जा पहुँचता। उससे कमसे-कम यह फायदा होता कि उस बर्बरसे ईर्ष्या करके घूमने-फिरनेकी दुर्गतिसे छुटकारा मिल जाता।

उस दुर्गतिसे मैं तुम्हें बचाऊँगी। इस मकानमें अब घुसने नहीं दूँगी।

घुसने नहीं दोगी? किसे? मुझे या उसको?

तुम्हें। मानती हूँ मेरा रंग काला है, मुँह वानेपर वह भी जरा बड़ा दिखता है मगर इसका मतलब यह नहीं कि घड़ियाल जैसा?

नहीं, नहीं, उतना बड़ा नहीं, कुछ छोटा। लेकिन नारी होकर जन्मी हो, अतिशयोक्ति सुनना तुम लोग पसन्द करती हो मणि। इसीलिए तो बढ़ाकर कहता हूँ।

और किसीको सुनाओ जाओ, मुझे जरूरत नहीं है।

कौन कहता है नहीं है? सबसे अधिक जरूरत है तुम्हींको। जिस लड़कीके शरीरमें रूप है, बापके पास पैसा है, उसे बाहरसे परीक्षा कर लेनेके लिए लोगोंकी कमी नहीं होती। लेकिन जिसकी सम्पदा हृदयमें छिपी हुई है उसके लिए मेरे जैसे एक निष्कपट भक्तके वगैर काम नहीं चलता। लेकिन वह क्या वही जलधि है? समझ गया। वह तुम्हें अच्छा लगा है। जानती हो, क्यों? उसने समझा है कि वह तुम्हें पसन्द करता है, उसमें उसीका महत्त्व है। तुम्हारा अपना गुण नहीं, उसकी अपनी उदारता है।

लेकिन तुमने पसन्द किया है किस गुणसे, सुनूँ?

रमेनने गम्भीर होकर कहा, मणि, तुमने निहायत झूठी बात नहीं कही है। बहुत सम्भव है, बात यही हो। यह मेरी अपनी ही विशालता है। नहीं तो

तुम्हें शायद पहचान ही नहीं पाता। या नहीं जानता मैं, नदीका स्रोत जहाँ चक्कर काटता है, कूड़ा करकट वगैर समझे-बूझे उसी ओर दौड़ते हैं, घूम-घामकर भँवरमें डूब मरते हैं। इसके बाद कहाँ चले जाते हैं, कौन जानता है। योरपमें था, बचपनका ही परिचय है, इतने दिनोंके बाद न जाने क्या सोचकर अचानक चिट्ठी लिखकर खबर ली, वैसे ही मन चंचल हो उठा। नौकरी छोड़ दी, जो कुछ सम्बल था बेचकर किराया जमा किया और तुम्हारे पास दौड़कर आ उपस्थित हुआ। क्या यह समझती हो कि इसका कोई गूढ़ अर्थ नहीं है? भँवरकी उपमाको जरा सोच देखो। और अगर रूपकी बात उठती हो तो देखनेपर पता चलेगा कि तुम मेरे पैरकी कनिष्ठाके बराबर भी नहीं हो। योरपकी कहानी अपने मुँहसे नहीं कहना चाहता, मगर तुम लोगों जैसी चिपटी नाक और ठिगने कदकी देशकी कितनी रूपवती लड़कियोंका सिर चकरा जाय, ऐसा चेहरा क्या मेरा नहीं है? सच बतलाना?

मणिने हँसकर कहा, कैसा विनय है! प्रभुपाद गोस्वामीगण भी हार मानते हैं। अच्छा रमेन, अपने प्रणय-निवेदनकी भाषा क्या तुमने याद कर रखी है? रोज ठीक एक ही तरहकी बात कहनेमें क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती?

जरूर आती है।

तो क्यों बोलते हो?

बोलनेका कारण है मणि। देवताओंको प्रसन्न करनेकी दो धारायें हैं। एक है स्तव, और दूसरा मंत्र। मनके आवेगसे यथाइच्छा स्तव बनाया जा सकता है, उसके एक दिनके वाक्य और दूसरे दिनके वाक्यमें समानताकी जरूरत नहीं। सुनकर देवता खुशी होकर वर दे भी सकते हैं और नहीं भी दे सकते हैं। उनकी कृपा है, भक्तकी कोई जोर जबर्दस्ती नहीं। लेकिन मन्त्र ऐसा नहीं होता, उसे इच्छाके अनुसार नहीं बनाया जा सकता। कण्ठस्थ करके उसकी आवृत्ति करनी पड़ती है। उच्चारण सही हुआ तो देवता 'नहीं' नहीं कह सकते। सिरके बाल पकड़कर वर अदा किया जा सकता है। इसीको कहते हैं सिद्धिमन्त्र। साहब लोग कहते हैं मैजिक। जगलियोंमें इस मन्त्रसे जिन्होंने सिद्धि लाभ की है, समाजके अन्दर उनकी प्रतिष्ठा और प्रतापका अन्त नहीं—लोग थर-थर काँपते हैं।

मणिने कहा, जगलियोंका मंत्र तुम भी नहीं जानते, मैं भी नहीं जानती।

जरूर ही उसका गहरा अर्थ है, मगर तुम मेरे सामने जिसकी आवृत्ति करते हो उसके बारह आनेका कोई अर्थ नहीं होता !

रमेनने कहा, सुनकर खुशीसे तुम्हारी पीठ ठोंकनेकी इच्छा होती है। आशा हो रही है कि टटोलते टटोलते इतने दिनोंके बाद ठीक वस्तुमें हाथ जा लगा है। मणि, वह वस्तु जितनी ही अर्थहीन होती है, उतनी ही शुद्ध होती है। बिल्कुल दुर्बोध होनेपर वह अचूक होती है—वही सोलहों आने सिद्ध मन्त्र है। तब देवताके गलेमें अँगौछा डालकर, खींच लाकर अभीष्ट हासिल किया जाता है।

मणिने गम्भीर होनेकी चेष्टा की, पर हँस पड़ी। बोली—जगलियोंके अनेकों देवता होते हैं, उन्हें मन्त्र-सिद्ध उस्तादोंकी चिन्ता नहीं रहती। किसीको पकड़ लेनेसे काम बन जाता है। लेकिन तुम किस देवताके बाल पकड़कर वर हासिल करोगे सुनूँ तो ?

इस वक्त सुनकर क्या करोगी ? केवल इतना ही जान रखो कि जूड़ा खोलने-पर बाल पैरतक पहुँच जाते हैं, उसे जब सँभालकर कसकर पकड़ूँगा, तब देवताको अपने आप मालूम पड़ जायगा। चूँ तक नहीं करेंगे, चुपचाप पीछे-पीछे चले आयेंगे। केवल बंगाल मुल्कमें ही नहीं, शायद योरप तकमें !

तुम्हारी स्पर्धा बहुत बढ़ गई है रमेन !

स्पर्द्धा ही तो है। नहीं तो सब कुछ छोड़कर इतनी दूर किस साहससे आता ?

यह तुम्हारी गलती है। तुम जानते हो देशके काममें मैंने अपनेको सौंप दिया है।

दिया तो क्या हुआ ? मन्त्रका जोर तो उससे भी परे होता है। देश वेश न जाने कहाँ चले जाते हैं।

मणिने क्रुद्ध होकर कहा, देखो मन्त्र-मन्त्र कहकर चालाकी मत करो। मेरा घड़ियाल जितना बड़ा मुँह है, अमावास्याकी तरह रंग है,—मेरी आशा तुम छोड़ दो। सचमुच प्यार करनेवाला कोई वैसी बात नहीं करता और वह भी प्रियाके मुँहके सामने। इससे अच्छा है कि तुम जहाँसे आये हो वहीं चले जाओ।

लौटा तो नहीं जा सकता है मणि, किरायेका रुपया कहाँ मिलेगा ?

मैं जमा कर दूँगी।

तो वही अच्छा है। दो आदमियोंके लिए किराया इकट्ठा करो।

दोके लिए नहीं एकके लिए। या, और एक काम क्यों नहीं करते रमेन,

नाना देशोंके नाना विश्वविद्यालयोंसे पास करनेकी जो लम्बी फेहरिस्त तुम्हारे नामके पीछे है उससे विदेश लौट जानेकी कौन-सी जरूरत है ? कोशिश करनेपर यहीं कोई बड़ी नौकरी पा जाओगे। कितनी ही सुन्दरी भद्र महिलाओंसे मेरा परिचय है, वे ऐसी लड़कियाँ हैं कि उनके सम्बन्धमें रंचमात्र भी कलंकका कोई आभास नहीं दे सकेगा। मैं लिख दूँगी कि वे चिर दिन साध्वी पतिव्रता रहकर तुम्हारे घरको रोशन करेंगी। यहाँ तक कि जमानत भी दे दूँगी। वचन देती हूँ कि तुम सचमुच ही सुखी होगे रमेन। केवल एक प्रार्थना है, जब तब आकर इस बातको लेकर मुझे अब परेशान न करो।—कहते-कहते उसकी आँखों और चेहरेका भाव गम्भीर हो उठा, बोली, इसके अलावा अपनेको भी तो पहचानती हूँ। मेरी जैसी एक दुष्ट, दुर्दान्त, कुरूप लड़कीको लेकर तुम क्या करोगे ? मैं क्या किसी भी अशमें तुम्हारे योग्य हूँ ?

रमेनने उत्तर दिया, मैंने क्या कभी कहा है कि तुम मेरे योग्य हो ? अपनेको क्या मैं नहीं पहचानता ? अपनी उन अच्छी-अच्छी सती लक्ष्मी बाँधवियोंको यथासमय यथायोग्य पात्रोंको अर्पण करना, मैं रंचमात्र भी आपत्ति नहीं करूँगा। लेकिन पेशेवर सँपेरेकी कल्याण-कामनाके लिए अगर उपदेश देती हो कि वह काले नागको छोड़कर पनडुब्बा साँपसे खेले, तो वह बल्कि अपना पेशा छोड़ देगा लेकिन आत्ममर्यादा नष्ट नहीं करेगा। मृत्यु है, इस बातको जानते हुए भी।

तो मैं काली नागिन हूँ और तुम पेशेवर सँपेरे हो ?

मैं नहीं तो क्या वह जलधि है जिसने केवल तुम्हारे चरित्रको लेकर सन्देह किया है और तरह तरहके बहानोंसे पहरा देता फिर रहा है—वह ?

वह पहरा देता फिरे, मगर तुम अब मुझे परेशान नहीं कर सकते, कहे देती हूँ।

हे मणि, रोओगी, तुम रोओगी। इस वक्त बड़ी बहादुरी कर रही हो, मगर एक दिन समझोगी कि जिसे परेशान करनेके लिए कोई नहीं है, उससे बढ़कर अभागी लड़की ससारमें दूसरी नहीं है।

तुम्हें चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं रमेन, सम्प्रति जलधि बाबू हैं, वही अकेले काफी हैं। जब वे भी नहीं रहेंगे तब तुम्हें चिट्ठी लिखकर खबर दूँगी। अबतक उसके मजाकका हल्का कण्ठ-स्वर भारी हो आया देखकर मणिके मुँहपर भी एक व्यथाकी छाया दिखाई पड़ी। शायद सोचा कि क्या जवाब दे, मगर देनेके पहले

ही नीचेके सदर रास्तेपर एक मोटर आ खड़ी हुई और अगले क्षण एककौड़ीका गला सुनाई पड़ा—मणि, मणि, तुम किस कमरेमें रहती हो ?

किसीने बतला दिया कि दो तल्लेवाले फ्लेटमें।

मणिने व्यस्त होकर बरामदेमें आकर आवाज दी—आइए एककौड़ी दादा, यही मेरा कमरा है। एक मिनटके बाद एककौड़ी आ घुसा, कमरेकी पहिचान करा देनेके लिए जो नौकर आया था वह बरामदेमें खड़ा रहा। एककौड़ीने बैठकर चारों ओर एक नजर डाली और कहा, वाह—खासा सजा सजाया कमरा है।

मणिने जरा-सा हँस दिया। लेकिन पीछेसे रमेनने संक्षेपमें जवाब देते हुए कहा, इसका कारण है एककौड़ी दादा। यह लक्ष्मीका वासस्थान है, पेड़के तले होनेपर भी इसकी सजावट आपकी निगाहमें पड़ती ही। आपका मकान कभी नहीं देखा है मगर दावेके साथ कह सकता हूँ कि वह भी इतना सुन्दर नहीं है। आप सोच रहे होंगे कि बिना देखे ही यह आदमी ऐसी बात कैसे कहता है ? कहता इस लिए हूँ कि जानता हूँ कि भाभी स्वर्गीय हो गई हैं, जीवित होतीं तो ऐसी बात जबानपर भी न ला सकता।

बातें एककौड़ीको अच्छी भी लगीं फिर भी अपरिचित युवकके जबर्दस्ती वार्त्तालाप और आत्मीय सम्बोधनसे उसने विरक्त होकर उसके मुँहकी ओर देखकर पूछा, आप कौन हैं ?

मैं रमेन हूँ, दादा। मणिका बचपनका मित्र। लेकिन मुझे 'आप' न कहें। केवल उम्रमें ही नहीं सभी दिशाओंमें आपसे बहुत छोटा हूँ। मुझे 'तुम' कहना होगा।

जिसे पहचानता नहीं, कभीका बातचीतका परिचय नहीं हैं, उसे क्या अचानक 'तुम' कहना शोभा देता है ?

शोभा देता है दादा, देता है। लेकिन अचानक नहीं। आप नहीं पहचानते हैं, यह सही है मगर मणिकी जबानी मैं आपको बहुत अच्छी तरह पहचानता हूँ। सन्देह होता है कि जलधि बाबूने मेरे प्रति आपका मन विषैला न बना दिया होता तो 'तुम' कहनेमें आपको जरा भी संकोच न होता। ठीक ठीक उन्होंने क्या कहा है यह नहीं जानता मगर पीछे मणिसे पूछनेपर आपको पता चलेगा कि मैं दुर्जन, दुर्वृत्त, बिलकुल ही नहीं हूँ। निरीह आदमी हूँ। विदेशमें लड़कोंको पढ़ाकर गुजर करता था। बहुत दिनोंके बाद अकस्मात् मणिका एक पत्र पाकर

नाना देशोंके नाना विश्वविद्यालयोंसे पास करनेकी जो लम्बी फेहरिस्त तुम्हारे नामके पीछे है उससे विदेश लौट जानेकी कौन-सी जरूरत है ? कोशिश करनेपर यहीं कोई बड़ी नौकरी पा जाओगे। कितनी ही सुन्दरी भद्र महिलाओंसे मेरा परिचय है, वे ऐसी लड़कियाँ हैं कि उनके सम्बन्धमें रंचमात्र भी कलंकका कोई आभास नहीं दे सकेगा। मैं लिख दूँगी कि वे चिर दिन साध्वी पतिव्रता रहकर तुम्हारे घरको रोशन करेंगी। यहाँ तक कि जमानत भी दे दूँगी। वचन देती हूँ कि तुम सचमुच ही सुखी होगे रमेन। केवल एक प्रार्थना है, जब तब आकर इस बातको लेकर मुझे अब परेशान न करो।—कहते-कहते उसकी आँखों और चेहरेका भाव गम्भीर हो उठा, बोली, इसके अलावा अपनेको भी तो पहचानती हूँ। मेरी जैसी एक दुष्ट, दुर्दान्त, कुरूप लड़कीको लेकर तुम क्या करोगे ? मैं क्या किसी भी अशमें तुम्हारे योग्य हूँ ?

रमेनने उत्तर दिया, मैंने क्या कभी कहा है कि तुम मेरे योग्य हो ? अपनेको क्या मैं नहीं पहचानता ? अपनी उन अच्छी-अच्छी सती लक्ष्मी बाँधवियोंको यथा-समय यथायोग्य पात्रोंको अर्पण करना, मैं रंचमात्र भी आपत्ति नहीं करूँगा। लेकिन पेशेवर सँपेरेकी कल्याण-कामनाके लिए अगर उपदेश देती हो कि वह काले नागको छोड़कर पनडुब्बा साँपसे खेले, तो वह बल्कि अपना पेशा छोड़ देगा लेकिन आत्म-मर्यादा नष्ट नहीं करेगा। मृत्यु है, इस बातको जानते हुए भी।

तो मैं काली नागिन हूँ और तुम पेशेवर सँपेरे हो ?

मैं नहीं तो क्या वह जलधि है जिसने केवल तुम्हारे चरित्रको लेकर सन्देह किया है और तरह तरहके बहानोंसे पहरा देता फिर रहा है—वह ?

वह पहरा देता फिरे, मगर तुम अब मुझे परेशान नहीं कर सकते, कहे देती हूँ।

हे मणि, रोओगी, तुम रोओगी। इस वक्त बड़ी बहादुरी कर रही हो, मगर एक दिन समझोगी कि जिसे परेशान करनेके लिए कोई नहीं है, उससे बढ़कर अभागी लड़की ससारमें दूसरी नहीं है।

तुम्हें चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं रमेन, सम्प्रति जलधि बाबू हैं, वही अकेले काफी हैं। अब वे भी नहीं रहेंगे तब तुम्हें चिट्ठी लिखकर खबर दूँगी। अबतक उसके मजाकका हल्का कण्ठ-स्वर भारी हो आया देखकर मणिके मुँहपर भी एक व्यथाकी छाया दिखाई पड़ी। शायद सोचा कि क्या जवाब दे, मगर देनेके पहले

ही नीचेके सदर रास्तेपर एक मोटर आ खड़ी हुई और अगले क्षण एककौड़ीका गला सुनाई पड़ा—मणि, मणि, तुम किस कमरेमें रहती हो ?

किसीने बतला दिया कि दो तल्लेवाले फ्लेटमें।

मणिने व्यस्त होकर बरामदेमें आकर आवाज दी—आइए एककौड़ी दादा, यही मेरा कमरा है। एक मिनटके बाद एककौड़ी आ घुसा, कमरेकी पहिचान करा देनेके लिए जो नौकर आया था वह बरामदेमें खड़ा रहा। एककौड़ीने बैठकर चारों ओर एक नजर डाली और कहा, वाह—खासा सजा सजाया कमरा है।

मणिने जरा-सा हँस दिया। लेकिन पीछेसे रमेनने संक्षेपमें जवाब देते हुए कहा, इसका कारण है एककौड़ी दादा। यह लक्ष्मीका वासस्थान है, पेड़के तले होनेपर भी इसकी सजावट आपकी निगाहमें पड़ती ही। आपका मकान कभी नहीं देखा है मगर दावेके साथ कह सकता हूँ कि वह भी इतना सुन्दर नहीं है। आप सोच रहे होंगे कि बिना देखे ही यह आदमी ऐसी बात कैसे कहता है ? कहता इस लिए हूँ कि जानता हूँ कि भाभी स्वर्गीय हो गई हैं, जीवित होतीं तो ऐसी बात जबानपर भी न ला सकता।

बातें एककौड़ीको अच्छी भी लगीं फिर भी अपरिचित युवकके जबर्दस्ती वार्त्तालाप और आत्मीय सम्बोधनसे उसने विरक्त होकर उसके मुँहकी ओर देखकर पूछा, आप कौन हैं ?

मैं रमेन हूँ, दादा। मणिका बचपनका मित्र। लेकिन मुझे 'आप' न कहें। केवल उम्रमें ही नहीं सभी दिशाओंमें आपसे बहुत छोटा हूँ। मुझे 'तुम' कहना होगा।

जिसे पहचानता नहीं, कभीका बातचीतका परिचय नहीं हैं, उसे क्या अचानक 'तुम' कहना शोभा देता है ?

शोभा देता है दादा, देता है। लेकिन अचानक नहीं। आप नहीं पहचानते हैं, यह सही है मगर मणिकी जबानी मैं आपको बहुत अच्छी तरह पहचानता हूँ। सन्देह होता है कि जलधि बाबूने मेरे प्रति आपका मन विषैला न बना दिया होता तो 'तुम' कहनेमें आपको जरा भी संकोच न होता। ठीक ठीक उन्होंने क्या कहा है यह नहीं जानता मगर पीछे मणिसे पूछनेपर आपको पता चलेगा कि मैं दुर्जन, दुर्वृत्त, बिलकुल ही नहीं हूँ। निरीह आदमी हूँ। विदेशमें लड़कोंको पढ़ाकर गुजर करता था। बहुत दिनोंके बाद अकस्मात् मणिका एक पत्र पाकर

नाना देशोंके नाना विश्वविद्यालयोंसे पास करनेकी जो लम्बी फेहरिस्त तुम्हारे नामके पीछे है उससे विदेश लौट जानेकी कौन-सी जरूरत है ? कोशिश करनेपर यहीं कोई बड़ी नौकरी पा जाओगे। कितनी ही सुन्दरी भद्र महिलाओंसे मेरा परिचय है, वे ऐसी लड़कियाँ हैं कि उनके सम्बन्धमें रचमात्र भी कलंकका कोई आभास नहीं दे सकेगा। मैं लिख दूँगी कि वे चिर दिन साध्वी पतिव्रता रहकर तुम्हारे घरको रोशन करेंगी। यहाँ तक कि जमानत भी दे दूँगी। वचन देती हूँ कि तुम सचमुच ही सुखी होगे रमेन। केवल एक प्रार्थना है, जब तब आकर इस बातको लेकर मुझे अब परेशान न करो।—कहते-कहते उसकी आँखों और चेहरेका भाव गम्भीर हो उठा, बोली, इसके अलावा अपनेको भी तो पहचानती हूँ। मेरी जैसी एक दुष्ट, दुर्दान्त, कुरूप लड़कीको लेकर तुम क्या करोगे ? मैं क्या किसी भी अशमें तुम्हारे योग्य हूँ ?

रमेनने उत्तर दिया, मैंने क्या कभी कहा है कि तुम मेरे योग्य हो ? अपनेको क्या मैं नहीं पहचानता ? अपनी उन अच्छी-अच्छी सती लक्ष्मी बाँधवियोंको यथासमय यथायोग्य पात्रोंको अर्पण करना, मैं रंचमात्र भी आपत्ति नहीं करूँगा। लेकिन पेशेवर सँपेरेकी कल्याण-कामनाके लिए अगर उपदेश देती हो कि वह काले नागको छोड़कर पनडुब्बा साँपसे खेले, तो वह बल्कि अपना पेशा छोड़ देगा लेकिन आत्म-मर्यादा नष्ट नहीं करेगा। मृत्यु है, इस बातको जानते हुए भी।

तो मैं काली नागिन हूँ और तुम पेशेवर सँपेरे हो ?

मैं नहीं तो क्या वह जलधि है जिसने केवल तुम्हारे चरित्रको लेकर सन्देह किया है और तरह तरहके बहानोंसे पहरा देता फिर रहा है—वह ?

वह पहरा देता फिरे, मगर तुम अब मुझे परेशान नहीं कर सकते, कहे देती हूँ।

हे मणि, रोओगी, तुम रोओगी। इस वक्त बड़ी बहादुरी कर रही हो, मगर एक दिन समझोगी कि जिसे परेशान करनेके लिए कोई नहीं है, उससे बढ़कर अभागी लड़की ससारमें दूसरी नहीं है।

तुम्हें चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं रमेन, सम्प्रति जलधि बाबू हैं, वही अकेले काफी हैं। जब वे भी नहीं रहेंगे तब तुम्हें चिट्ठी लिखकर खबर दूँगी। अबतक उसके मजाकका हल्का कण्ठ-स्वर भारी हो आया देखकर मणिके मुँहपर भी एक व्यथाकी छाया दिखाई पड़ी। शायद सोचा कि क्या जवाब दे, मगर देनेके पहले

ही नीचेके सदर रास्तेपर एक मोटर आ खड़ी हुई और अगले क्षण एककौड़ीका गला सुनाई पड़ा—मणि, मणि, तुम किस कमरेमें रहती हो ?

किसीने बतला दिया कि दो तल्लेवाले फ्लेटमें।

मणिने व्यस्त होकर बरामदेमें आकर आवाज दी—आइए एककौड़ी दादा, यही मेरा कमरा है। एक मिनटके बाद एककौड़ी आ घुसा, कमरेकी पहिचान करा देनेके लिए जो नौकर आया था वह बरामदेमें खड़ा रहा। एककौड़ीने बैठकर चारों ओर एक नजर डाली और कहा, वाह—खासा सजा सजाया कमरा है।

मणिने जरा-सा हँस दिया। लेकिन पीछेसे रमेनने संक्षेपमें जवाब देते हुए कहा, इसका कारण है एककौड़ी दादा। यह लक्ष्मीका वासस्थान है, पेड़के तले होनेपर भी इसकी सजावट आपकी निगाहमें पड़ती ही। आपका मकान कभी नहीं देखा है मगर दावेके साथ कह सकता हूँ कि वह भी इतना सुन्दर नहीं है। आप सोच रहे होंगे कि बिना देखे ही यह आदमी ऐसी बात कैसे कहता है? कहता इस लिए हूँ कि जानता हूँ कि भाभी स्वर्गीय हो गई हैं, जीवित होतीं तो ऐसी बात जबानपर भी न ला सकता।

बातें एककौड़ीको अच्छी भी लगीं फिर भी अपरिचित युवकके जबर्दस्ती वार्त्तालाप और आत्मीय सम्बोधनसे उसने विरक्त होकर उसके मुँहकी ओर देख-कर पूछा, आप कौन हैं ?

मैं रमेन हूँ, दादा। मणिका बचपनका मित्र। लेकिन मुझे 'आप' न कहें। केवल उम्रमें ही नहीं सभी दिशाओंमें आपसे बहुत छोटा हूँ। मुझे 'तुम' कहना होगा।

जिसे पहचानता नहीं, कभीका बातचीतका परिचय नहीं हैं, उसे क्या अचानक 'तुम' कहना शोभा देता है ?

शोभा देता है दादा, देता है। लेकिन अचानक नहीं। आप नहीं पहचानते हैं, यह सही है मगर मणिकी जबानी मैं आपको बहुत अच्छी तरह पहचानता हूँ। सन्देह होता है कि जलधि बाबूने मेरे प्रति आपका मन विषैला न बना दिया होता तो 'तुम' कहनेमें आपको जरा भी संकोच न होता। ठीक ठीक उन्होंने क्या कहा है यह नहीं जानता मगर पीछे मणिसे पूछनेपर आपको पता चलेगा कि मैं दुर्जन, दुर्वृत्त, बिलकुल ही नहीं हूँ। निरीह आदमी हूँ। विदेशमें लड़कोंको पढाकर गुजर करता था। बहुत दिनोंके बाद अकस्मात् मणिका एक पत्र पाकर

दिल न जाने कैसा हो उठा। किसी तरह किराया जमाकर चला आया। सक्षेपमें यही मेरा परिचय है, इसमें झूठ रंचमात्र भी नहीं है।

बातोंको कहनेका एक ऐसा सीधा ढंग था कि एककौड़ी जिस क्रोधको मनमें लेकर यहाँ आया था, उसका बहुत कुछ शान्त हो गया। इच्छा हुई कि इसी प्रसंगमें सदय-कण्ठमें उससे कुछ बात-चीत करे। पर वह भी नहीं कर सका। जलधिके अभियोगने बाधा दी। इसीलिए कहनेकी इच्छा होनेपर भी अन्ततोगत्वा वह चुप ही बैठा रहा।

मणिने प्रश्न किया—एककौड़ी दादा, आजके अधिवेशनमें क्या हुआ?

अधिवेशन नहीं हुआ। स्थगित रह गया।

क्यों? मेरे न जानेके कारण तो नहीं?

सही बात यही है। आज क्या तुम बहुत अस्वस्थ हो?

नहीं, ठंड लगनेके कारण कुछ हलका-सा ज्वर-सा हो गया है। जलधि बाबू मना न करते तो अनायास ही जा सकती थी। बोले, काम नहीं रुकेगा, आजका काम वह अच्छी तरह चला लेंगे। इसीलिए नहीं गई एककौड़ी दादा।

सुनकर बड़े आश्चर्यसे एककौड़ीने पूछा, जलधिने क्या तुम्हें जानेसे मना किया था?

हाँ, मना ही तो किया था। जरा रुककर मणिने कहा, मगर ऐसे दिन भी तो बीते हैं जब सचमुच ही बहुत अस्वस्थ होनेपर भी माँगनेपर छुट्टी नहीं मिली है।

मुझे खबर क्यों नहीं दी?

मणि चुप रही, मगर रमेनने उसकी तरफसे जवाब दिया। बोला, एक कारण शायद यह है कि ऊपरवालोंके विरुद्ध शिकायत करना इसका स्वभाव नहीं है।

इसके स्वभावका पता आपको कैसे चला?

फिर 'आप' दादा। बल्कि उठकर और कहीं चला जाऊँगा, पर बैठाबैठा आपके मुँहसे 'आप' 'जी' नहीं सुन सकूँगा।

एककौड़ीने हँसकर कहा, अच्छी बात है, 'तुम' ही सही। बताओ तो रमेन, मणिके स्वभावका परिचय तुम्हें कैसे मिला? सुना है योरपमें रहते थे, बहुत दिनोंसे एक-दूसरेकी खबर नहीं रखी थी—अभी उस दिन ही तो देश लौटे हो।

सब कुछ सच है दादा। फिर भी हैरान होकर सोचता हूँ कि सहसा मणि

मेरी खबर लेने क्यों गई, और मैं भी अचानक सब कुछ छोड़कर इस तरह क्यों चला आया। लेकिन छोड़िए इस बातको, आपके प्रश्नका उत्तर दूँ। बचपनमें मैं उसका मास्टर था। मैट्रिकुलेशन क्लासमें पढ़ता था, मणि मुझसे दो क्लास नीचे पढ़ती थी। जो सज्जन मेरी स्कूलकी फीस और किताबोंका दाम देते थे वह अचानक एक दिन मर गए। मणिके पिताने मुझे बुलाकर कहा, इसकी चिन्ता न करो रमेन, तुम मेरी लड़कीको घण्टे-भर पढ़ा जाया करो। दुश्चिन्ता दूर हुई मगर दो तीन दिन पढ़ानेके बाद ही मैं समझ गया कि उसे पढ़ाऊँगा सही, पर वह भी मुझे पढ़ा सकती है। नागा करना शुरू किया, अगर जाता भी था तो गप्प करके समय काट देता था। फिर भी देखा गया कि मणि परीक्षामें प्रथम आई है। मणिके पिताको देशका उद्धार करनेकी बीमारी थी, घरकी कोई खबर नहीं रखते थे, बहुत खुश होकर मुझे बुलाकर पीठ ठोंक दी। बोले, मेरे जैसा कर्तव्य-परायण आदमी दूसरा नहीं है और मेरे कालेजके खर्चेका आधा वही देंगे। मेरी कर्तव्य-परायणताका विवरण मणिने कभी अपने पिताको नहीं दिया। यहाँ तक कि मैट्रिककी परीक्षामें भी जब उसे वजीफा मिला तो उसका आधा कृतित्व मुझे ही मिला। नहीं जानता क्यों, पिताका विश्वास था कि लड़कीकी लिखाई-पढ़ाईकी बुनियाद मैंने ही पक्की कर दी है।

इसके बाद?

किसके बाद दादा?

मैट्रिकमें वजीफा पानेके बाद मणिने क्या किया?

मणिने उँगली उठाकर चुपचाप ही फटकारते हुए अन्तमें सिर हिलाकर कहा, यह नहीं होनेका रमेन। अपने बारेमें कहना चाहते हो, कहो, मगर मेरे बारेमें नहीं।

लेकिन वे तो मालिक हैं। जानना चाहते हैं तो न कहना क्या शोभा देता है?

मालिक मेरे हैं, तुम्हारे नहीं। मुझसे जब जानना चाहेंगे तब उत्तर दूँगी।

एककौड़ीने प्रश्न किया, अच्छा तुम्हीं बतलाना। तुम्हींसे जानना चाहता हूँ कि उसके बाद क्या किया?

कालेजमें जाकर भरती हुई।

इस कुतूहलसे क्या लाभ है एककौड़ी दादा! आपका काम तो चलाए दे रही हूँ।

इस बातको अस्वीकार नहीं करता मैं, वल्कि मुक्त-कण्ठसे स्वीकार करता हूँ कि हमारे संघका काम तुमने बहुत अच्छे ढंगसे इतने दिनों तक चलाया है। लेकिन अगर हमारे संघसे तुम्हारा काम समाप्त हो गया है तो तुम्हारे लिए और कोई उपाय तो निकाल सकता हूँ। तुम्हें कुछ तो करना ही चाहिए न?

जीविकाकी बात कर रहे हैं न?

मान लो वही।

कुछ देर तक सभी चुप रहे। अन्तमें मणिने पूछा, मेरी क्या अब आपको जरूरत नहीं है?

जलधि नहीं चाहता। वह कहता है कि तुम्हारे रहनेपर कल्याण-संघका नाम बदल देना पड़ेगा।

समझ गई। लेकिन आप खुद क्या कहते हैं?

अभी तक कुछ भी नहीं कहा है। जानता हूँ, जलधिमें अनेकों दोष हैं फिर भी जानता हूँ कि देश-सेवाकी रोकड़-बाकीवाली बहीमें खर्चको निकाल देनेपर भी उसका जितना जमा हुआ है वह बहुत है। उसके जैसे कितनोंने स्वार्थत्याग किया है? कितनोंने उसके जैसा दुःख भोगा है? उसको छोड़ देनेपर मेरा संघ नहीं टिकेगा।

उसको नहीं छोड़नेपर भी आपका संघ नहीं टिकेगा एककौड़ी दादा।

मुँह फेरकर रमेनकी ओर थोड़ी देर देखकर एककौड़ीने कहा, तुमने कैसे जाना रमेन?

जानता नहीं, यह केवल मेरा अनुमान है। जलधि बाबू कुछ भी क्यों न हों मगर संघके मालिक आप हैं। लेकिन एक बात कहूँ एककौड़ी दादा, पारेसे छूटे हुए आइनेमें मुँह देखकर जो लोग विचार करते हैं वे सुविचार नहीं करते। सोचते हैं मुँहके ये क्षत-चिह्न यथार्थ ही हैं। मेरी भी वही दशा हुई है। संघकी अशुभ कामना नहीं करता मगर उद्देश्य कितना भी महान् क्यों न हो, ऐसा लगता है कि यह नहीं टिकेगा। लेकिन मणि, तुम विषण्ण क्यों हो गई हो, यह तो तुम्हें शोभा नहीं देता।

मणिने किंचित् म्लान हँसी हँसकर कहा, मेरी योजना तो खटाईमें पड़ गई।

एककौड़ीने उत्सुक होकर पूछा, कैसी योजना मणि?

मणिने एक बार आगा पीछा किया, शायद सोचा कि बोलना चाहिए या नहीं। लेकिन एककौड़ीको उसी तरह आग्रहसे देखते हुए देखकर धीरे-धीरे कहा, कुछ पहले ही सोच रही थी कि आपसे एक हजार रुपये उधार माँग लूँगी।

एककौड़ीने क्षणभर भी आगा-पीछा किए वगैर कहा, अच्छी बात है ले लेना।

रमेनने पूछा, नौकरी तो समाप्त हो गई, पटाओगी कैसे?

एककौड़ीने कहा, उसे वही जाने। मै जानता हूँ कि वह कहीं भी क्यों न रहे जिन्दा रही तो अदा करेगी ही। और अगर मर भी गई तो वह इतनी बड़ी क्षति है कि हजार रुपयेका शोक मुझे याद भी नहीं आएगा। रुपया तुम्हें कल ही में भेज दूँगा।

रमेनने कहा, किस लिए जरूरत है इसे भी नहीं पूछेंगे?

नहीं। मैं जानता हू कि वह फिजूल खर्च नहीं करती है, लेकिन अब चलूँ। संघकी ओरसे तुम्हें साधुवाद नहीं दिया जा सकना है मगर अपनी तरफसे अशेष धन्यवाद देता हूँ। अगर कभी तुम्हारे किसी उपकारमें काम आ सका तो हार्दिक खुशी होगी—यह कहकर एककौड़ीने उठ खड़े होकर कहा, रमेन, तुमसे केवल कुछेक घण्टेका ही परिचय है, फिर कभी बात-चीत करनेका सुअवसर मिलेगा कि नहीं, नहीं जानता। लेकिन इतना तो जान गया कि मेरे बारेमें तुम्हारी बड़ी बुरी धारणा बनी रह गई।

रमेनने हँसकर कहा, इससे आपकी क्षति नहीं होगी दादा, लेकिन यह कह देना ही अच्छा है कि रोगी जब मर जाता है तो उसकी पीठके पीछे डाक्टरके बाप-दादेको गाली देनेके सिवा गृहस्थके लिए कोई सान्त्वना नहीं रह जाती है।

एककौड़ी भी हँस पड़ा और दोनोंको नमस्कार करके चला गया। मणिमालाको आज ही पहली बार उसने नमस्कार किया। पहले कभी नहीं किया था।

पाँच छ: मिनट तक कमरेमें सन्नाटा छाया रहा।

मणिने कहा, क्यों रमेन, अब बाप-दादोंको याद करना शुरू करोगे क्या?

रमेनने कहा, वह नैपथ्यमें होगा। लेकिन प्रत्यक्ष कहनेकी आज यही बात मिली कि इतने दिनों तक रमेन्द्रनाथको विश्वास था कि उससे बढ़कर महाशय व्यक्ति सारे संसारमें नहीं है। इतने दिनोंके बाद वह घमण्ड चूर हुआ।

बस हो गया न?

हाँ। एक बात और कहूँ? भयसे, या निर्भय होकर?

निर्भय होकर ही कहो।

दादाकी उम्र कुछ अधिक हो गई है,—बहुत अच्छा न फबेगा—लेकिन संसारमें मणिमालाके लिए अगर कोई वर है तो यही व्यक्ति है।

मणि उच्छवासमें बोल उठी, अहा रमेन!

लेकिन अब बस। चलूँ। सड़कोंपर अकेला घूम फिर कर जरा दिमाग ठंडा कर लूँ। नहीं तो सारी रात नींद नहीं आवेगी। यह कहकर वह धीरे-धीरे उठ पड़ा। दरवाजे तक बढकर उलट कर देखते हुए बोला, अपनी सती-लक्ष्मी बान्धवियोंको जरा दिखा नहीं सकती हो मणि?

दिखा सकती हूँ मगर होगा क्या?

जरा बजाकर देखूँगा।

तुम उनकी पढ़ाईकी परीक्षा लोगे क्या?

जी नहीं। तुम लोगोंकी उधरकी बातें मैं जानता हूँ। तुम निडर रहो। बहुत दिनोंसे देशसे बाहर था, इसी बीच देशकी लड़कियोंमें बहुतेरे परिवर्तन हुए हैं अर्थात् बहुत उन्नति हुई है, इस तरहकी अफवाह विदेशोंमें रहते हुए कानोंमें पड़ी थी। सान पर पटकनेसे कैसी आवाज निकलती है अर्थात् खाद कितना मिलाया है उसे देखनेकी जरा साध होती है मणि।

वे भी तो तुम्हें पटक सकती हैं।

पटक सकती हैं यह भी कोई विचित्र बात नहीं है।—यह कह कर रमेन हँसकर कमरेसे बाहर चला गया। (विचित्रा, चैत्र, १३४२)

३

सीनेके नीचे तकिया रखे पट लेटा हुआ एककौड़ी खूब मन लगाकर लिखता जा रहा था। एक ओर गड़गड़ेपर चिलम व्यर्थ ही जल रही थी, हाथके पास निगाली अनादरसे पड़ी हुई थी, खींच लेनेके लिए भी अवसर नहीं मिला। चायका प्याला पानीकी तरह ठंडा हो गया, उसे भी होठोंसे लगानेके लिए फुर्सत नहीं मिली। इसी समय जलधि आ हाजिर हुआ। पाँच-छै मिनट चुपचाप बैठकर बोला, एककौड़ी दादा, आपकी एकाग्रताको जरा विचलित करना चाहता हूँ। वही

जरूरत है। एककौड़ी सिर ऊपर उठाए बगैर ही बोला, कहो।

इतना क्या लिख रहे हैं?

हमारे कल्याण-संघके नियम-कानूनोंमें कुछ-कुछ परिवर्तन आवश्यक हो उठा है। उसीका मसविदा तैयार कर रहा हूँ।

कीजिए। परिवर्तन अवश्य ही जरूरी हो गया है। रादर ओवरड्यू।

'हूँ' कहकर एककौड़ी फिर लिखने लग गया।

फिर पाँच-छः मिनट सन्नाटेमें बीत गये। जलधिने कहा, कुछ अवज्ञा भी की जा सकती है। लेकिन मनुष्यके नैतिक चरित्रमें नहीं। क्योंकि ख्याति अगर समाप्त हो जाती है तो हजार कोशिश करने पर भी संघको खड़ा नहीं रख सकूँगा। वह अवश्य ही गिर पड़ेगा। यहाँ हमें दृढ होना होगा।

अवश्य।

पिछले दो दिनोंमें मैंने बहुत सोचा है एककौड़ी दादा। बहुत कष्ट होता है। क्योंकि यही उसकी जीविका है। सुना है कि किसी एक अन्धे सम्बन्धीको भी मणि प्रतिपालन करती है। फिर भी मणिको नहीं रखा जा सकता, विदा करना ही होगा। जाता हूँ, आपका मन बहुत कोमल है मगर मामला इतना गम्भीर है कि मैं आपको किसी भी दशामें दुर्बल नहीं होने दूँगा।

एककौड़ी कलम रखकर उठ बैठा। चमड़ेके काले पोर्टफोलियोको गोदमें उठाकर बहुत ढूँढ़कर एक कागज निकाला और उसे जलधिकी ओर फेंककर गड़गड़ेकी नलीको मुँहमें डालकर चुपचाप खींचने लगा।

कागजको पढ़ते-पढ़ते जलधिका मुँह पीला पड़ गया। समाप्त करके बोला, मणिको जवाब देनेसे पहले एक बार मुझे खबर क्यों नहीं दी?

एककौड़ीने नलीको मुँहसे हटाकर कहा, अभी अभी तो तुमने खुद ही कहा है कि हमें दृढ़ होना होगा, मणिको नहीं रखा जा सकता है। इसके अलावा तुम थे कहाँ? तीन दिनों तक नहीं आये, आते तो बात अवश्य ही सुनते। और जिसे हटाना है उसे जल्दी हटाना ही अच्छा। अन्याय नहीं किया है, तीन महीनेकी तनख्वाह अधिक दे दी है। यह देखो रसीद।—यह कहकर कागजके एक टिकट लगे टुकड़ेको जलधिकी ओर बढ़ाते हुए कहने लगा, सुना कि उसने मकान-मालिकको नोटिस दे दी है। आदमी अच्छा है, पन्द्रह दिनके करार पर ही राजी हो गया है। एक महीनेकी नोटिसकी माँग नहीं की।

जलधिने कड़वे कण्ठसे कहा, हाँ महाशय व्यक्ति है। मणि कहाँ जायगी कुछ बतलाया है?

नहीं। कहा है कि चिट्ठी लिखकर बादमें खबर देगी।

उसे जवाब दिया आपने, तब आप मेरा नाम लेने क्यों गये?

अच्छी बात है। तुम मन्त्री हो, तुम्हारी घोर आपत्ति उसको बतलाए बगैर कैसे चल सकता है?

केवल मेरी ही आपत्ति है, आपकी नहीं?

अवश्य।

बतलाया है उसे?

जरूर बतलाया है।

जलधिके मुँहसे फिर कोई बात नहीं निकली, वह चुपचाप बैठा रहा।

एककौड़ीने मसविदेके कागजोंको एक एक करके सँभालकर जलधिकी ओर बढ़ा दिया। कहा, पढ़ देखो।

लिखना खतम हो जाने दो दादा, बहुत समय है।

उसकी उदासीनता देखकर एककौड़ी आश्चर्यचकित होकर बोला, अधिक समय कहाँ पाओगे! छपवाना होगा। जहाँ जितने सदस्य हैं सबमें प्रचारित करना होगा,—ढुलमुल-यकीनीका काम नहीं है। इस दिशामें मेरी आँखें खोलकर तुमने बहुत बड़ा काम किया है जलधि। सचमुच ही। चरित्र ही अगर न रहा तो क्या रहा? सघ खड़ा होगा किस बूतेपर? अबसे यही ख्याति हमारे लिए सबसे बड़ा एसेट होगा—वास्तविक पूँजी। संघसे सम्बन्धित जो जहाँ हैं—पेड या अनपेड—सभी समझेंगे कि मन्त्रीने इस दिशामें रत्तीमात्र भी कर्तव्यकी अवहेलना नहीं की है। वह मणि जैसे कामके आदमीको भी विदा कर देनेमें क्षणभर भी देर नहीं करता, मैं तुम्हें साधुवाद देता हूँ जलधि।

जलधिने अन्दर ही अन्दर जलते हुए कहा, क्या आपकी यह इच्छा है कि मणिके मामलेको हम ढोल पीटकर चारोंओर प्रचार करें?

वैसा नहीं भी किया जाय तो भी दलके आदमी तो जानेंगे ही, दबाओगे कैसे, और दबानेसे फायदा ही क्या है?

अर्थात् कल्याण-सघकी ओरसे यही मणिमालाका विदाई-अभिनन्दन होगा! नहीं दादा, माफ कीजिए, सहमत नहीं हो सका। और कुछ भले ही मैं सोचूँ, पर

संघके कल्याणके लिए इन तीन वर्षोंकी उसकी अथक मेहनतको नहीं भूल सकता।

भूलनेकी बात नहीं है जलधि, मगर चारा ही क्या है ? हमारे कागजातोंमे मणिकी जगह अजयका हस्ताक्षर देखकर दलके लोग कारण जानना चाहेंगे ही, तब छिपाओगे कैसे ?

बात अच्छी तरह जलधिकी समझमे नहीं आई—यह अजय कहाँसे आया दादा ?

एककौड़ीने कहा कि वही तो मणिकी जगह काम करेगा। अर्थनीतिका एम. ए. है, थोड़ेसेके लिए फर्स्टक्लास नहीं पा सका, नहीं, तो किसी कालेजमे उसके १५० रुपयोंको कौन रोक सकता था ? तनख्वाह नहीं बढानी पड़ी, पचासपर राजी हो गया। पड़ा हुआ मिल गया, ऐसा कहा जा सकता है।

जलधिके क्रोधकी सीमा नहीं रही मगर भरसक रोककर प्रश्न किया—यह रत्न पड़ा हुआ कब मिला ?

आज सवेरे ही। अजयके पिताके संग थोड़ा-सा परिचय था, सालभरसे वह लड़केके लिए मामाके नाम एक सिफारिशी चिट्ठी माँग रहे थे, नाना कारणोंसे नहीं दे सका, इसीलिए—

इसीलिए मामाका बोझ मेरे कन्धोंपर लाद दिया ?

नहीं भई, नहीं। कलसे जब वह दफ्तरका भार लेगा तो काम देखकर खुश हो जाओगे। कहे देता हूँ, मणिसे अयोग्य नहीं होगा।

जलधिने फिर बहस नहीं की। क्षणभर चुप रहकर बोला, एककौड़ी दादा, वास्तवमें आपका स्वभाव बड़ा निर्मम है। अगर मैं खुद कभी विदा होता हूँ तो इसीलिए होऊँगा। इस बीच आपकी गणेशवाली कलम चलती रहे, मैं चला। यह कहकर नमस्कार करके वह घरसे निकला जा रहा था। एककौड़ीने बुलाकर कहा, जलधि कहाँ जा रहे हो ?

जानेका मुँह नहीं है, फिर भी जाना होगा। पुरुषत्व कहिए, मनुष्यत्व कहिए, देशके पैरोंपर अब भी निछावर नहीं कर दिया है। माया-ममता आज भी कलेजेमें कहीं बिंधती है, एककौड़ी दादा।

अर्थात् मणिके यहाँ जाकर उसे कुछ सान्त्वना देना चाहते हो ?

सान्त्वना देनेकी जरूरत नहीं पड़ेगी, कमसे कम उसे इतना जानता हूँ। वह कुछ भी क्यों न हो, मैं होता तो इस तरह सीधे कामसे जवाब नहीं देता,—

अबकी बार सिर्फ एक चेतावनी देकर मामलेको खतम कर देता।

सुनकर एककौड़ी पहले गम्भीर हो उठा, फिर अचानक हँस कर बोला, जारे गधे कहींके। तेरी अभिनय आरम्भ करनेकी बुद्धि जैसी असाधारण है उसे समाप्त करनेकी तरकीब भी उतनी ही सुन्दर है। यह चेतावनी देनेकी अकल किसने दी? उसके साथ इतने दिनों तक काम करके यही उसे पहचाना है?

इस तिरस्कारका कोई उत्तर न पा हतबुद्धिकी तरह जलधि देखता रहा।

एककौड़ी बोलता गया, उसके आचरणका हम अनुमोदन नहीं करते, इस तरहका स्वेच्छाचार हमें अच्छा नहीं लगता। अतएव विदा किया गया, इस बातको मणि अनायास ही समझ जायगी मगर तेरी आँखें तरेरकर धमकीको नहीं समझेगी। बल्कि इसलिए वह कृतज्ञ रहेगी कि हमने उसका संस्रव छोड़ दिया है, उसका असम्मान नहीं किया है। यह नहीं कहा है कि मालिककी रुचिसे नौकरकी रुचि न मिलनेके कारण इस बार उसके केवल कान ही ऐंठ दिये गये हैं, आइंदा नाक काट ली जायगी।

जलधिने धीरे धीरे पूछा, तो जवाब बिलकुल पक्का है? इसमें हेरफेर नहीं हो सकेगा?

नहीं। कल्याण-संघके नामको उसके लिए नहीं बदल सकता।

जवाब सुनकर जलधि बहुत देरतक चुपचाप मुँह लटकाये बैठा रहा, इसके बाद सिर उठाकर अनुतप्त स्वरमें धीरे धीरे बोला—अबकी बार मैं अपने अभियोगको वापिस लेता हूँ एककौड़ी दादा। इस बार उसे क्षमा करनेके लिए तैयार हूँ।

एककौड़ीने गर्दन हिलाकार कहा, जलधि, मैं तैयार नहीं हूँ।

लेकिन सचमुच ही कोई अपराध किया है या नहीं, इसपर भी विचार न करेंगे?

सचमुचका अपराध तू किसे कहता है जलधि? जिसका इशारा किया है उसीको?—नहीं, वह दोष उसने कभी नहीं किया है, कभी नहीं करेगी।

फिर भी जवाब दे देंगे?

हाँ फिर भी। अपने बीच उसे नहीं रख सकता।

कितनी बड़ी मुसीबतके बीच उसे ढकेल रहे हैं, क्या इसपर एक बार भी विचार नहीं करेंगे?

इसपर विचार करनेसे फायदा? खतरेसे क्या वह डरती है? तुम लोग होते

तो सोचता। यह कहकर एककौड़ीने जरा हँसकर गड़गड़ेकी नलीको मुँहमें ले लिया।

जलधिने गम्भीर होकर खड़े होते हुए कहा, चला।

एककौड़ीने तम्बाकूके धुएँके संग फिर जरा हँसकर कहा, कल जरा आना। समझ गया, तेरा असली मतलब था मणिको धमकाना,—कामसे जवाब देना नहीं। जब वहाँ जा रहा है तो बात उठे तो कहना कि उसे जवाब मैंने ही दिया है, तूने नहीं, तू बल्कि उसे रखना ही चाहता है।

जलधिकी समझमें यह नहीं आया कि ये बातें मजाक हैं या और कुछ। उसका हृदय जल गया मगर कुछ व्यक्त न करके वह बोला, बड़ी फिजूल बात है एककौड़ी दादा। जवाब देनेके असली मालिक तुम हो, मैं नहीं, इस बातको वह जानती है। यह कहकर वह घरसे निकला जा रहा था, अचानक दरवाजेके पास रुककर बोला, फिर भी इसी फिजूल बातको कहनेके लिए उसके घर तक जाना होगा। मेरे बारेमें मणि और कुछ भी क्यों न सोचे, यह न सोचे कि एक अभागेने एक अभागिनका अन्न छीन लिया है। यह कहकर वह तेजीसे चला गया।

४

उधर मणिमालाके कमरेसे अभी-अभी चार लड़कियाँ उतर गईं। वे मणिकी बान्धवी थीं। नारी-समितिकी ओरसे आई थी। अधिवेशन अगले हफ्तेमें होगा, भिन्न-भिन्न जिलोंसे शताधिक प्रतिनिधि आ रहे हैं। प्रस्ताव यह है कि उस सभामें मणिमालाको एक विशाल प्रस्ताव रखना होगा—उसमें विवाह-विच्छेदसे लेकर नौकरी चाकरीमें नर-नारियोंको बराबर वेतन तककी सारी माँगें काफी कड़े शब्दोंमें रहेंगी। लेकिन मणि राजी नहीं हुई, हँसकर बोली, मेरा जैसा चेहरा है भाई, उससे अगर कोई मुझसे ब्याह कर ले तो छुटकारा मिले, और इसपर विवाह-विच्छेद! येना हेना दो बहनें थीं, उन्हींकी कड़वाहट सबसे तेज थी। गुस्सेमें आकर बोलीं, तो क्या हमारा ही ब्याह हो गया है? हम अपनी बातको नहीं सोच रहीं, समग्र नारी-जातिके लिए सोच रही हैं। तुम बहुत अच्छा बोल सकती हो, बहस करनेमें अपनी सानी नहीं रखतीं, इसलिए सुकल्याणी मिटरकी इच्छा है कि प्रस्ताव तुम्हींसे रखवाया जाय। हम उसकी चिट्ठी लेकर आ रही

हैं, देखेंगे तब कैसे अस्वीकार करती हो ?

मणिने कहा, भई, मुझे माफ करो।

येना बोली, जानती हो ऐसा करनेसे उसका अपमान होगा।

अपमान तो करती नहीं हूँ भई, मैं तो हाथ जोड़ती हूँ।

अच्छा, वह देखा जायगा। चिट्ठी लेकर आ रही हूँ। हो सकता है कि वह खुद आकर हाजिर हो। यह कहकर लड़कियाँ चली गईं। उनके कपड़ेके एसेन्सकी खुशबूसे कमरेकी हवा तक भी बोझिल थी, उत्तेजित कण्ठकी कड़वी बहससे चारों दीवारें तब भी टकरा रही थीं। मणिने पुकारा, रमेन, तुम क्या सो रहे हो ?

घरके दूसरे छोरपर केनवासकी आराम-कुर्सीपर रमेन आँखें मूँदे लेटा हुआ था, आवाज सुनकर बोला, नहीं, ट्रेनके शब्दसे ही मुझे नींद नहीं आती और यहाँ तो चार चार हवाई जहाजोंका सरकस चल रहा था।

तुम बड़े असभ्य हो रमेन, लड़कियोंके बारेमें कभी क्या श्रद्धाके साथ बात नहीं कर सकते हो ?

रमेन चुप रहा। मणि कहती गई कि मैंने आशा की थी कि तुम हमारी बहसमें योगदान करोगे मगर एक भी शब्द नहीं बोले, उधर जाकर लेटे रहे। तुम्हारे बारेमें वे क्या सोच रही थीं, कल्पना कर सकते हो ?

नहीं।

सोच गईं कि एक बड़ा जानवर है। सोच गईं कि इस पशुको मणि अब तब अपने कमरेमें कैसे बर्दाश्त करती है।

ओफ—

ओफ—किसलिए—?

यही मान लो कि इन चारों लड़कियोंका अगर किसी दिन ब्याह हो। ओफ—

मणिने क्रोधमें कहा कि ब्याह तो एक दिन होगा ही। वे क्या चिर दिन बुढ़िया कुमारी बनी रहेंगी ?

रमेनने गम्भीर होकर प्रश्न किया, तो यह मतलब इनके दिमागमें नहीं है ? ठीक-ठीक जानती हो ?

मणि हँसकर बोली, नहीं, नहीं है। ठीक-ठीक जानती हूँ।

ओफ—

तुम्हारे कलजेमें क्या तीर विंध रहा है ?

हाँ, विंध रहा है। मानव-चक्षुओंसे मैं उन अभागोंको स्पष्ट देख रहा हूँ। यह कहकर एक लम्बी साँस छोड़ते हुए कुर्सीपर वह सीधा उठ बैठा। बोला, जानती हो मणिमाला, परमज्ञानी अरस्तूके बारेमें एक कहावत प्रसिद्ध है। कहीं जाते हुए रास्तेके किनारे एक पेड़में उन्होंने एक लड़कीको फाँसी लगाकर लटकते देखा। मुग्ध आँखोंसे देखते हुए कहा, अहा, इस तरहका फल अगर ससारके सभी पेड़ोंमें लगता तो ससार स्वर्ग हो जाता ! त्रिविधि-दु खनाशकी मीमांसा बुद्धदेव कर गये हैं सही, मगर दुनियाको स्वर्ग बनानेकी थ्योरीका आविष्कार एकमात्र वही (अरस्तू) कर गये हैं। हाँ, वे अवश्य ही ज्ञानी थे।

रमेनने समझा कि मणि एक बार खूब हँसेगी मगर हुआ इसका उलटा देखते-देखते उसका चेहरा कठोर हो गया, शान्त गम्भीर स्वरमें बोली, रमेन, तुम्हारी इस बातको मैं सदा याद रखूँगी।

रमेनने लज्जित होकर कहा, कथन मेरा तो नहीं है, अरस्तूका है। वह भी सच्चा है या बनावटी कौन जाने !

नहीं, सच्चा है। वह भी केवल उन्हींका नहीं, सभी पुरुषोंके मुखसे यही एक बात निकलती है। वह बूढ़ा अरस्तू आज ढाई हजार वर्ष बाद भी तुम्हारे अन्दर जीवित है, वह जलधिके अन्दर जीवित है, एककौड़ी दादाके अन्दर जीवित है। इसीलिए तो नौकरी गई। तीन सालकी रात दिनोंकी सेवा क्षण-भर भी नहीं टिक सकी। तुम खुद मालिक होते तो भी मेरी नौकरी इसी तरह-जाती, रमेन।

रमेन क्षुब्ध होकर बोला, मैं जब मालिक नहीं हूँ तो इसका प्रमाण नहीं दे सका। लेकिन तुम झूठ ही तिलको ताड़ बना रही हो, मणि। बूढेका मजाक सच्चा होता तो क्या आदमी आज भी जिन्दा रह सकता था ! कबका खतम हो गया होता।

खतम न होनेका दूसरा कारण है रमेन। क्योंकि मनुष्यको रखनेकी जिम्मेदारी पुरुषोंपर नहीं है, वह किसी औरपर है। इसीलिए तो देखती हूँ कि नर-नारी कितने दिनोंसे एक साथ रहने पर भी आज भी सन्धिके लिए एक-सूत्र नहीं ढूँढ़ पाए, किस उपायसे दुःख समाप्त होगा इस दिशाको वे देख ही नहीं पाये, सदासे अन्धे बने रहे।

रमेनने धीरे-धीरे कहा, मणि, न जाने क्यों ऐसा लग रहा है कि आज तुम्हारा मन बहुत ही उद्भ्रान्त है।

उद्भ्रान्त? हो भी सकता है। लेकिन एक प्रश्नका अचानक जवाब पा गई। सोचा था उनका अनुरोध नहीं सुनूँगी, विवाह-विच्छेदका प्रस्ताव मेरे मुँहसे नहीं निकलेगा मगर अब तय किया है कि उस प्रस्तावको मैं खुद ही लाऊँगी।

रमेनने जरा हँसकर कहा, माना कि प्रस्ताव उपस्थित किया मगर चीज अच्छी है या बुरी, आदमीके अनुभवमें इसका कितना दाम ठहरा है, इसका ज्ञान क्या तुम्हें है मणि?

मणिने कहा, कोई ज्ञान नहीं है, इतिहास नहीं जानती,—और जितना ज्ञान है उसे तुम चाहो तो उड़ा दे सकते हो लेकिन तुम्हारी बात मैं नहीं सुनूँगी बल्कि जोर देकर ही कहूँगी कि मेरे अन्तरकी सच्ची अनुभूति मुझे पथ-प्रदर्शन करेगी, जरूर करेगी।

सच्ची अनुभूति कब पाई?

अभी-अभी। तुमने मजाकमें जो कुछ कहा, उसीके अन्दर।

यह क्या कभी हो सकता है?

होता है रमेन, होता है। कहानी नहीं सुनी है कि हमारे लाला बाबूने मछली बेचनेवालीके मुँहसे एक उड़ती हुई बात सुनकर गृहस्थी छोड़ दी थी। लेकिन कितने ही आदमी तो दिन रात सुना करते हैं, क्या वे घर-द्वार छोड़कर सन्यासी हो जाते हैं? लेकिन जो सुनता है वही सुनता है।

मणि, तुम इतनी पागल हो, यह मैं नहीं जानता था।

मणिने हँसकर कहा, पागल ही तो हूँ। नहीं तो क्या देशके लिए जेल काटने जा सकती थी? जान देनेके लिए भी तैयार थी, तुम दे सकते हो?

मुझे तो वह परीक्षा नहीं देनी पड़ी मणि।

परीक्षा देनेका दिन अगर आवे तो क्या दे सकोगे?

रमेनको अचानक इस प्रश्नका जवाब नहीं मिला। इसी समय दरवाजेके बाहरसे आवाज आई, मणि, आ सकता हूँ?

मणिने खुश होकर जवाब दिया, आइए-आइए, जलधि बाबू।

('विचित्रा', वैशाख, १३४३)

आनेकी आशामें

जीवनकी तुलना क्या गानेके साथ नहीं की जा सकती? कौन-सा नुकसान है? गानेकी तरह जीवनमें भी एक लय होती है। वह लय किसीमें द्रुत, किसीमें धीमी होती है। कोई लड़ाईके बाजे बजाकर द्रुत तालसे चला जा रहा है और कोई धीमी तालसे लम्बे अरसे तक पिछड़ा रहता है।

जो लोग एक साथ कदम मिलाकर चले जा सकते हैं, उनका भाग्य अच्छा है। मेरे भाग्यमें ऐसा नहीं हुआ। वह विजय-गर्वसे चले गये—और मैं? मेरी तकदीर फूटी हुई है।

मुझे देखकर तुम लोगोंने निश्चय ही पागल समझा है। समझ सकते हो। मेरी साज-सज्जा और जीवन बड़ा ही अनमेल है।

मेरे हाथोंमें चूड़ी चमक रही हैं, मेरी माँगका सिन्दूर चमक रहा है, मैंने चौड़े लाल किनारेकी साड़ी पहन रक्खी है।

लेकिन जिनके लिए यह सब कुछ है वही तो नहीं हैं। सच ही कह रही हूँ—तुम लोग उस तरहसे हँसो मत। एक दूसरेका शरीर दबाकर मत कहो कि मैं पागल हूँ। सच कहती हूँ, मैं पागल नहीं हूँ। तो मैं क्या हूँ? अरे ओ! उन बातोंको कहनेमें भी मैं डरती हूँ। यथार्थमें क्या वे नहीं हैं?

मैंने कितने ही लोगोंसे पूछा—कितने ही साधुसन्यासियोंके पैरोंपर सिर पटका मगर क्या कोई भी मेरी बातोंका जवाब नहीं देगा? तो शायद इसका कोई जवाब ही नहीं है। तुम लोगोंमेंसे अगर कोई बतला सके तो इस अभागिनीका बड़ा उपकार होगा।

बतला सकोगे? ओफ्—भगवान् तुम्हें सुखी बनावे—और क्या कहूँ—'दीर्घजीवी बनो' कहनेमें डर लगता है। डर लगता है, आशीर्वाद देते हुए कहीं शाप न दे बैठूँ।

तो कहती हूँ, सुनो—

बैसाख महीनेमें बेलका पेड़ देखा है? कितने ही पत्तोंके आवरणमें घने दलोंके बीच कली सोती रहती है। वसन्तकी कोकिलकी पुकार उसे नहीं जगा सकती

है ! मलय हवाकी सारी आराधनाओंको तुच्छ समझकर वह कितनी बेफिक्रीसे सोती रहती है !

फिर, वसन्त जब हाय-हाय करता हुआ चला आता है—तब अभागिनी कली चौंककर तीन दिनोंमें ही खिल उठती है ! तब उसे अनगिनित लाँछना भोगनी पड़ती है। कड़े सूर्यकी गर्मी निष्ठुर होकर उसके ऊपर पड़कर विद्रूप करती रहती है ! डोम कौवेका हाहाकार सुनते हुए दिन समाप्त होने पर वह डालके नीचे लोट जाती है।

मैं फूल नहीं हूँ, इसी लिए लोट नहीं गई। झर जाती तो सब कुछ समाप्त हो जाता।

मेरा जन्म बहुत गरीब घरमें नहीं हुआ था। पिता बहुत बड़े आदमी भी नहीं थे, लेकिन मेरी खूबसूरती काल बन गई।

सुनती हूँ,—मेरे सेब जैसे रंगमें महावरकी आभा है। काले बाल पैरोंतक पहुँच जाते थे। और भी कितनी ही बातें हैं।

यह मेरी सुनी हुई बातें हैं। झूठ-सच भगवान् जानें। तुम्हें क्या इसका कुछ परिचय मिल रहा है ?

क्या देखते हो ? नहीं, नहीं,—वह रंग नहीं है—मेरे होंठ वैसे ही हैं। यह ? टिकुली नहीं है—यह एक तिल है। यह जन्मसे ही है।

इसीको देखकर ही तो कलमुँहे सन्यासीने कहा था, मैं राजरानी बनूँगी। अगर नहीं कहता ! कलमुँहेने जो कहा, अजी वही हुआ।

अहा, अगर उस दिन सवेरे डाली लेकर नहीं निकलती ! गंगाजलसे क्या शिवकी पूजा नहीं होती ? माँ, सभी बातोंमें बढ़ी-चढ़ी रहती थीं। फूल उन्हें चाहिए ही चाहिए, नहीं तो शिवकी पूजा नहीं होगी। और उन्हें न जाने कैसा पता चल गया ? और राजाकी भी अकल कैसी थी ! दुनियामें अनगिनित रास्तोंके रहते हुए भी उन्हें जानेका रास्ता मिला, उसी हमारे पोखरेकी बगलवाली सँकरी गलीसे !

सुना, राजा आ रहे हैं, राजा आ रहे हैं—मुँह बाए राजाको देख रही थी। सोचा, शायद उनके चार हाथ देखूँगी। हाय, तब अगर दौड़कर घरमें घुस जाती !

राजाको तो न जाने कितने लोगोंने देखा था। तकदीर तो किसीकी नहीं खुली। नीचे मानों छुरीकी टेढ़ी धार चमक रही थी !

राजा हँसकर बोले—बिटिया, तुम्हारा नाम क्या है ? मैं लज्जासे गड़ गई।

सिर झुकाये खड़ी बायें पैरकी उँगलीसे मिट्टी कुरेदने लगी, नाम याद नहीं आया। कानोंमें झिल्लियोंकी आवाज आने लगी। नाकके ऊपर पसीनेकी बूँदें दिखाई पड़ीं।

राजा बोले, कितनी शांत है—कैसे लक्षण हैं, कैसा रूप है!—यह तो केवल मेरे ही घरके उपयुक्त है।

उस दिनसे चारों ओर कानाफूसी शुरू हो गई। मेरा मन तड़फड़ाने लगा। क्यों, राजाकी तो कोई खबर नहीं आती? हाय रे अभागी! अन्तमें तेरी साध पूरी हुई।

जब पुकार आई तो बिलकुल बालोंको मुट्ठीमें पकड़कर। अब सब्र नहीं सहा गया। नहीं जानती कब कुमार मुझे देखकर नहाना खाना छोड़ बैठे।

पोथी-पत्रा देखकर ज्योतिषीने ब्याहका दिन निश्चित कर दिया—सावन महीनेकी पूर्णिमाका दिन। उस रातको कितनी वर्षा, कितना तूफान आया! सच कहती हूँ—उस तूफानमें ब्याहके मन्त्र उड़ गये। केवल हम दोनोंने एक दूसरेको देखा—केवल एक बार! इसके बाद तूफानमें सारी बत्तियाँ बुझ गईं—हमारे गलेकी जुहीकी माला टुकड़े-टुकड़े होकर न जाने कहाँ उड़ गई।

मैं कुमारकी छातीके पास सिमटकर बोली,—"अजी, मुझे बहुत डर लग रहा है।" मेरे मुँहके पास मुँह लगाकर वह बोले, "और खिसक आओ—मेरी इस छातीके अन्दर।"

मैं तूफानके अन्दर काँपते-काँपते, चिड़ियोंके बच्चे जिस तरह घोंसलेमें सोते हैं, उसी तरह सो गई।

सबेरे नींद खुलनेपर देखा, राजकुमार कहाँ है,—मैं तो अपनी नौकरानीकी छातीपर पड़ी हूँ!

उसके मुँहकी ओर देखा, उसकी दोनों आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही है। बोलनेकी हिम्मत नहीं हुई।

देखा, बादलोंसे बहुत-सा पानी बरस रहा है—देखा, घरके सभी लोगोंकी आँखोंसे आँसू बरस रहे हैं। पेड़ोंके अन्दरसे सायँ-सायँ करती हुई हवा बह रही है। मुझे लगा कि मेरी छातीके अन्दर बहुत-सी हवा गुमसुम बैठी है। इच्छा हुई कि रोऊँ। रोना नहीं आया, अवाक् हो गई। एक ही रातके अन्दर मेरे सीनेका सारा खून—आँखोंके सारे आँसू इस तरह किसने सोख लिये!

उसके बाद फिर कुमारसे मुलाकात नहीं हुई। लाजके मारे किसीसे पूछ नहीं सकी कि वे कहाँ हैं।

विशाल मकानमें पिंजड़ेकी चिड़ियाकी तरह पड़ी रही। जो मुझे देखता था वही रोता था—मैं अवाक् देखती रहती थी।

अन्तमें एक दिन राजकुमार दिखाई पड़े। उस दिन न जाने कहाँकी नींदने मुझे आ घेरा था। उन्होंने न जाने कितनी बातें कहीं, उनका अर्थ तब नहीं समझा था। आज भी क्या समझा है!

उन्होंने कहा, फिर मुलाकात होगी। कब? यह नहीं बतलाया। कहा, मुझे छोड़कर वह कहीं नहीं रह सकेंगे। उन्होंने मुझे माँगका सिन्दूर धोनेके लिए मना किया—हाथकी चूड़ियाँ फोड़ डालनेके लिए मना किया।—इसीलिए यह सिन्दूर है—इसीलिए आज भी इन अभागे हाथोंमें सोनेकी चूड़ियाँ चमक रही हैं।

अब तुममेंसे कोई क्या कृपा करके मुझे बतला सकता है कि वह कब आएँगे?

यह क्या! तुम लोग भी अवाक् होकर क्या देख रहे हो! आँखोंकी उस तरहकी उदासीन चितवनको मैं बर्दाश्त नहीं कर पाती।

अजी, तुम क्या सबके सब तस्वीर हो? बातें नहीं करते? हाय-हाय—मुझे तुम किस वेशमें रख गये हो कुमार! अरे मेरी अम्मा! तुम्हारी आँखोंके कोनेमें वह क्या है? आँसू तो नहीं हैं! यह क्या, तुम लोग भी बातें नहीं करोगी? तो मुझे कौन बतलायेगा कि कुमार तुम कब आओगे। ('भारतवर्ष' जेठ, १३२४)

रस-चक्र

राजशाही शहरसे कुछ कोसकी दूरीपर विजयपुर ग्राम है। गाँव बड़ा है, बहुतेरे ब्राह्मणों, वैद्यों, कायस्थोंका निवास है। लेकिन मैत्र-वंशकी सतता, साधुता और स्वधर्मनिष्ठाकी ख्याति गाँवसे शहर तक फैल गई थी। इनके पास जो धन-दौलत थी उससे मोटे भात और कपड़ेका काम किसी तरह चल सकता था, इससे अधिक नहीं। मगर कोई भी क्रिया-कलाप छूटने नहीं पाता था। मकान काफी जगह घेर कर बना था। बहुत-से मिट्टी और फूसके घर थे। बहुत बड़ा-सा चंडी-मंडप था। इनमेंसे सभी सदा भरे रहते थे।

लेकिन यह सब कैसे होता था? सभव इसलिये होना था कि जीवित तीनों भाई कमाते थे। बड़े शिवरतन गाँवमें ही जमींदारके यहाँ अच्छी नौकरी करते थे, सँझले शम्भुरतन पेशकारी करने जाया करते थे, केवल गँजले (चौथे) विभूति-रतनको धनी स्वसुरकी कृपासे कलकत्तेके एक बड़े सौदागरी दफ्तरमें नौकरी मिली थी। मझले और छोटे भाई बचपनमें ही मर गये थे। तालिकामें उन दोनों शून्य स्थानोंके अलावा उनका कुछ भी बाकी नहीं रह गया था।

दो दिन हुए दशहरा समाप्त हुआ है। देवी-प्रतिमाका ढाँचा आँगनमें एक ओर एक घेरेमें रखा हुआ है ताकि अचानक किसीकी निगाह नहीं जा पहुँचे। उसका मंगलघट आज भी वेदीके बगलमें उसी तरह रखा हुआ है। उसके आम्र-पल्लव उसी तरह स्निग्ध सजीव हैं। अभी तक रंचमात्र मलिनताने कहीं स्पर्श नहीं किया है।

इसके नजदीक एक बड़ी दरीपर बैठे हुए तीनों भाइयोंने शायद खर्च-वगैरह-के बारेमें अभी अभी बातचीत समाप्त की थी। विभूतिरतनने जरा इधर-उधर करके संकोचके साथ हँसने जैसा मुँह बना कर कहा—उस दिन सासजीने आश्चर्य-चकित होकर कहा था, तुम्हारी तनख्वाहका सारा रुपया एक ही साथ बड़े भाईके पास भेज देना पड़ता है। फिर वह जरूरतके मुताबिक कुछ लेकर बाकी वापस भेज देते हैं। इससे हर महीने बहुतसे रुपये डाकखानेमें देने पड़ते हैं।

गृहस्थीके खर्चकी बही तब भी शिवरतनके सामने खुली थी और उनकी

आँखें भी उसीपर लगी हुई थीं। वे कुछ अन्यमनस्कसे बोले, डाकखानेवाले मनीआर्डरके पैसे क्यों छोड़ने लगे? इसमें आश्चर्य होनेकी कौन-सी बात है?

विभूतिकी धनी सासकी दृष्टि कुछ दिनोंसे लड़की और दामादकी सांसारिक उन्नतिकी ओर गई थी। शिवरतनको इस बातका संदेह हुआ था लेकिन जबानपर वह तनिक भी प्रकट नहीं हुआ। विभूतिने सोचा, बड़े भाईने बातको ठीक-ठीक नहीं सुना, इसलिये जरा और साफ करते हुए कहा, जी हाँ, यही तो जान पड़ता है। इसी लिये वे कहती हैं। सिर्फ आपकी जरूरतके लायक ही अगर—

शिवरतनने आँखें उठाकर देखा। कहा, मेरी जरूरतको तुम लोग कैसे जानोगे?

उनके चेहरेपर उसी तरह सहज और शान्त भाव देखकर विभूतिकी हिम्मत बढ़ गई। उसने प्रफुल्लित होकर कहा, जी हाँ, इसीलिए उन्होंने यह कहा था। आपकी चिट्ठी पत्रीमें उसका कुछ आभास रहने पर यह फिजूलखर्ची नहीं होती।

शिवरतनने हिसाबकी बहीमें फिर आँखें गड़ाते हुए कहा,—उनसे कहना कि बड़े भाई इसे फिजूलखर्ची नहीं समझते हैं। चिट्ठी-पत्रीमें आभास देना भी जरूरी नहीं समझते। जोगीन, चिलम भर ला।

विभूति अपने उतरे हुए चेहरेको लिये स्तब्ध बैठा रहा और शम्भू दादाके चेहरेकी ओर कनखियोंसे देखकर हाथमें अखबार लेकर पढ़ने लगा।

कुछ देर तक किसीके मुखसे कोई बात नहीं निकली। एक अवांछित नीरवतासे घर भर गया। लेकिन इसको समझनेके लिए इस मैत्रेय-वंशकी कहानीको जरा और साफ करना जरूरी है।

इसी विजयपुरमें वे सात-आठ पुश्तोंसे बसे हैं। कितने घर-बार तोड़े और बनाये गये हैं। कितने ही जरूरतके मुताबिक घटाये बढ़ाये गये हैं, लेकिन पुराने जमानेका रसोईघर आज भी उसी तरह एकमात्र और अद्वितीय बना हुआ है। उसे कभी बाँटा नहीं गया है। उसमें किसी ओरसे बाँटनेकी कल्पना तक भी नहीं की गई है। यह परिवार सदासे संयुक्त रहा है। सदासे आज तक जो बड़ा रहा है, वह बड़ा रह कर ही जीवन-पात कर गया है। बादमें पैदा होकर अग्रजके सर्वमय कर्तृत्वपर प्रश्न उठानेके लिए अवकाश कभी किसीको नहीं हुआ।

इस वंशके आज जो सबसे बड़े हैं, उन्हीं शिवरतनने जब छोटे भाईकी अत्यन्त दुरूह समस्याका केवल 'जरूरत नहीं है' कहकर समाधान कर दिया, तो

धनी सास-ससुरके अतिशय क्रुद्ध चेहरेको याद करके भी विभूतिको हिम्मत नहीं हुई कि वह इस बहसको तनिक भी आगे बढ़ाये।

नौकर तम्बाकू चढ़ा कर दे गया, शिवरतनने बाहरसे सन्दूक बन्द करके बड़े इतमीनानसे धूम्रपान करते हुए कहा, तुम्हारी छुट्टीके अब कितने दिन रह गये विभूति?

विभूति—जी, छः दिन।

शिवरतनने मन ही मन हिसाब करके कहा, तो तुम्हें शुक्रवारको ही रवाना होना पड़ेगा।

विभूतिने धीरे स्वरमें कहा, जी हाँ, लेकिन इसी बीच बहुत काम काज है इससे—

शिवरतनने कहा, अच्छी बात है, न हो तो दो दिन पहले ही चले आओ। देवी-पक्ष है, दिन क्षण देखनेकी जरूरत नहीं। सभी सुदिन हैं। तो परसों बुधवारको ही रवाना हो जाओ, क्यों?

विभूतिने कहा, जी, ऐसा ही करूँगा।

शिवरतनने फिर कुछ देर तक चुपचाप धूम्रपान कर जरा हँसकर कहा—नई बहूके सामने बहुत ही लज्जित हूँ। पिछले साल उसे एक प्रकारसे निश्चित वचन ही दे दिया था कि इस साल उसकी छुट्टी रही, इस बार वह नैहरमें दशहरा देखे। लेकिन दिन जितने ही नजदीक आते गए उतना ही डर लगने लगा कि उसके नहीं रहनेसे क्रिया-कर्म विशृङ्खल हो जायगा, सब कुछ चौपट हो जायगा। आदर अभ्यर्थना करनेमें चारों ओर नजर रखनेमें उसके जैसा दूसरा नहीं। इतना काम, इतनी बेतरतीबी, इतना हंगामा रहता है, मगर बिटियाको कभी कहते नहीं सुना कि इस ओर नजर नहीं दे सकी या इसे भूल गई। दूसरे समय गृहस्थी चल जाती है, बड़ी बहू और मझली बहू देख-भाल लेती हैं। लेकिन बड़े काज-प्रयोजनमें छोटी बहू नहीं है, इस बातके याद आते ही डरके मारे मेरे हाथ-पैर सिकुड़ जाते हैं। किसी तरह हिम्मत नहीं बँधती। यह कहकर स्नेह और श्रद्धासे चेहरेको चीस करके वह फिर चुपचाप धूम्रपान करके लगे।

बड़े भाईके अन्दर नई बहूके बारेमें पक्षपातका भाव था, इस बातको लेकर घरमें बहस तो होती ही थी, एक ईर्ष्याका भाव भी था। बड़ी बहू तो गुस्सेमें आकर बीच-बीचमें सुना भी दिया करती थी और मँझली बहू पीठ पीछे ऐसा प्रचार

आँखें भी उसीपर लगी हुई थीं। वे कुछ अन्यमनस्कसे बोले, डाकखानेवाले मनीआर्डरके पैसे क्यों छोड़ने लगे ? इसमें आश्चर्य होनेकी कौन-सी बात है ?

विभूतिकी धनी सासकी दृष्टि कुछ दिनोंसे लड़की और दामादकी सांसारिक उन्नतिकी ओर गई थी। शिवरतनको इस बातका संदेह हुआ था लेकिन जबानपर वह तनिक भी प्रकट नहीं हुआ। विभूतिने सोचा, बड़े भाईने बातको ठीक-ठीक नहीं सुना, इसलिये जरा और साफ करते हुए कहा, जी हाँ, यही तो जान पड़ता है। इसी लिये वे कहती हैं। सिर्फ आपकी जरूरतके लायक ही अगर—

शिवरतनने आँखें उठाकर देखा। कहा, मेरी जरूरतको तुम लोग कैसे जानोगे ?

उनके चेहरेपर उसी तरह सहज और शान्त भाव देखकर विभूतिकी हिम्मत बढ़ गई। उसने प्रफुल्लित होकर कहा, जी हाँ, इसीलिए उन्होंने यह कहा था। आपकी चिट्ठी पत्रीमें उसका कुछ आभास रहने पर यह फिजूलखर्ची नहीं होती।

शिवरतनने हिसाबकी बहीमें फिर आँखें गड़ाते हुए कहा,—उनसे कहना कि बड़े भाई इसे फिजूलखर्ची नहीं समझते हैं। चिट्ठी-पत्रीमें आभास देना भी जरूरी नहीं समझते। जोगीन, चिलम भर ला।

विभूति अपने उतरे हुए चेहरेको लिये स्तब्ध बैठा रहा और शम्भू दादाके चेहरेकी ओर कनखियोंसे देखकर हाथमें अखबार लेकर पढ़ने लगा।

कुछ देर तक किसीके मुखसे कोई बात नहीं निकली। एक अवांछित नीरवतासे घर भर गया। लेकिन इसको समझनेके लिए इस मैत्रेय-वंशकी कहानीको जरा और साफ करना जरूरी है।

इसी विजयपुरमें वे सात-आठ पुश्तोंसे बसे हैं। कितने घर-बार तोड़े और बनाये गये हैं। कितने ही जरूरतके मुताबिक घटाये बढ़ाये गये हैं, लेकिन पुराने जमानेका रसोईघर आज भी उसी तरह एकमात्र और अद्वितीय बना हुआ है। उसे कभी बाँटा नहीं गया है। उसमें किसी ओरसे बाँटनेकी कल्पना तक भी नहीं की गई है। यह परिवार सदासे संयुक्त रहा है। सदासे आज तक जो बड़ा रहा है, वह बड़ा रह कर ही जीवन-पात कर गया है। बादमें पैदा होकर अग्रजके सर्वमय कर्तृत्वपर प्रश्न उठानेके लिए अवकाश कभी किसीको नहीं हुआ।

इस वंशके आज जो सबसे बड़े हैं, उन्हीं शिवरतनने जब छोटे भाईकी अत्यन्त दुरूह समस्याका केवल 'जरूरत नहीं है' कहकर समाधान कर दिया, तो

धनी सास-ससुरके अतिशय क्रुद्ध चेहरेको याद करके भी विभूतिको हिम्मत नहीं हुई कि वह इस बहसको तनिक भी आगे बढ़ाये।

नौकर तम्बाकू चढा कर दे गया, शिवरतनने बाहरसे सन्दूक बन्द करके बड़े इतमीनानसे धूम्रपान करते हुए कहा, तुम्हारी छुट्टीके अब कितने दिन रह गये विभूति ?

विभूति—जी, छः दिन।

शिवरतनने मन ही मन हिसाब करके कहा, तो तुम्हें शुक्रवारको ही रवाना होना पड़ेगा।

विभूतिने धीरे स्वरमें कहा, जी हाँ, लेकिन इसी बीच बहुत काम काज है इससे—

शिवरतनने कहा, अच्छी बात है, न हो तो दो दिन पहले ही चले आओ। देवी-पक्ष है, दिन क्षण देखनेकी जरूरत नहीं। सभी सुदिन हैं। तो परसों बुधवारको ही रवाना हो जाओ, क्यों ?

विभूतिने कहा, जी, ऐसा ही करूँगा।

शिवरतनने फिर कुछ देर तक चुपचाप धूम्रपान कर जरा हँसकर कहा—नई बहूके सामने बहुत ही लज्जित हूँ। पिछले साल उसे एक प्रकारसे निश्चित वचन ही दे दिया था कि इस साल उसकी छुट्टी रही, इस बार वह नैहरमें दशहरा देखे। लेकिन दिन जितने ही नजदीक आते गए उतना ही डर लगने लगा कि उसके नहीं रहनेसे क्रिया-कर्म विशृङ्खल हो जायगा, सब कुछ चौपट हो जायगा। आदर अभ्यर्थना करनेमें चारों ओर नजर रखनेमें उसके जैसा दूसरा नहीं। इतना काम, इतनी बेतरतीबी, इतना हंगामा रहता है, मगर बिटियाको कभी कहते नहीं सुना कि इस ओर नजर नहीं दे सकी या इसे भूल गई। दूसरे समय गृहस्थी चल जाती है, बड़ी बहू और मझली बहू देख-भाल लेती हैं। लेकिन बड़े काज-प्रयोजनमें छोटी बहू नहीं है, इस बातके याद आते ही डरके मारे मेरे हाथ-पैर सिकुड़ जाते हैं। किसी तरह हिम्मत नहीं बँधती। यह कहकर स्नेह और श्रद्धासे चेहरेको दीस करके वह फिर चुपचाप धूम्रपान करके लगे।

बड़े भाईके अन्दर नई बहूके बारेमें पक्षपातका भाव था, इस बातको लेकर घरमें बहस तो होती ही थी, एक ईर्ष्याका भाव भी था। बड़ी बहू तो गुस्सेमें आकर बीच-बीचमें सुना भी दिया करती थी और मँझली बहू पीठ पीछे ऐसा प्रचार

करनेसे वाज नहीं आती थी कि छोटी बहूकी बड़े आदमीकी लड़की होनेके कारण ही यह खुशामद की जाती है। नहीं तो हम दोनों बहुएँ जब ११ महीने गृहस्थीका बोझ सँभाल सकती हैं, तो क्या दशहरेके महीनेको नहीं चला सकतीं? बड़े आदमीकी लड़की न आए तो क्या देवीकी पूजा रुकी रहे?

ये सारे शब्दवेधी बाण यथासमय यथास्थान पहुँचते थे, मगर शिवरतन न तो विचलित होते थे और न प्रतिवाद ही करते। शायद जरा मुस्कुरा भर देते थे। विभूति अधिक कमाता है। उसे बारहों महीने कलकत्तेमें ही रहना पड़ता है। अत वहाँ नई बहूके बगैर रहे काम नहीं चलेगा, इस बातको वे अच्छी तरह समझते थे, मगर नासमझोंका दल किसी तरह समझना नहीं चाहता था। उसे गृहस्थीके सारे छोटे-मोटे काम साल भर नहीं करने पड़ते हैं। केवल महामायाकी पूजाके उपलक्ष्यमें किसी समय अचानक आकर सारी जिम्मेदारी, सारा कर्तव्य अपने हाथों लेकर उसे निर्विघ्न समाप्त करके, घर और बाहरकी सारी ख्याति आहरण करके वह चली जाती है। उसके न रहनेसे यह सारी चीजें मानो होती ही नहीं, सब कुछ मानों तितर-बितर हो जाता। लोगोंके चेहरे और आँखोंके इन सारे इशारोंसे औरतोंका चित्त प्रज्ज्वलित हो उठता था। काज-प्रयोजनके समाप्त हो जानेपर इस बातको लेकर प्रतिवर्ष कुछ न कुछ झगड़ा टटा हो ही आया करता था। विशेष करके माँ आज भी जीवित हैं और वही अब भी मालकिन हैं। लेकिन अवस्था अधिक हो जानेके कारण दूसरोंकी भूल चूक दिखाकर फटकारने और गाली-गलौज करनेको अपने हाथमें रखकर मालकिनकी बाकी सारी जिम्मेदारियोंको स्वेच्छासे बड़ी और मझली बहुओंके हाथोंमें सौंपकर निश्चिन्त हो गई हैं। वह नई बहूको फूटी आँखों भी नहीं देख सकतीं। वह सुन्दरी है, बड़े आदमीकी लड़की है, उसके पास गहने कपड़े जरूरतसे ज्यादा हैं, उसे गृहस्थी नहीं चलानी पड़ती है, वह चिट्ठी लिख सकती है, घमण्डके मारे उसके पैर जमीनपर नहीं पड़ते हैं, आदि शिकायतें लगातार ग्यारह महीने सुनते-सुनते इस बहूके विरुद्ध उनका मन कड़वाहटसे भरा रहता और लम्बे अरसेके बाद जब वह घरमें पैर रखती थी तो उन्हें यह अनाधिकार-प्रवेश-सा ही लगता था।

कलसे एक बात उठी है कि धरणी सॉंडेल*के घरकी महिलाओंके सकोरोंमें

* सान्याल उपाधिको बोलचालमें सांडेल कहते हैं।

दो-दो सन्देश कम पड़ गए थे, और कम इसलिए पड़े थे कि वे गरीब हैं। यह वदनामी केवल गाँवमें ही नहीं, बल्कि सारे शहरको पार कर विलायत तक पहुँचना चाहती है,—यह बुरा समाचार मालकिनके कानोंमें तब गया जब वह पूजाके लिए बैठ रही थीं। तभीसे छत्तीस घण्टे बीत गए हैं, इन सकोरोंने पूजामें काफी विघ्न डाला है मगर बहस समाप्त नहीं हो पाई है। दोष केवल नई बहूका है, इस विषयमें जिस प्रकार किसीको सन्देह नहीं था, खुद बड़े घरकी बेटी होनेके कारण जान-बूझकर गरीब परिवारका उसने अपमान किया है इसमें भी उसी तरह किसीको सन्देह नहीं था। नई बहू सारी बातोंको चुपचाप सह लेती थी ऐसी बात नहीं—बीच-बीचमें वह जवाब भी दे देती थी। लेकिन उसका कोई भी जवाब सीधे सासके कानोंतक नहीं पहुँचता था, पहुँचता था प्रतिध्वनित होकर, इसीलिए उसका वक्तव्य लोगोंके मुँहकी चोट खाकर न केवल विकृत ही होता था बल्कि उसका रेश आसानीसे विलीन नहीं होना चाहता था। आज सवेरे जब घरमें यह हालत थी—सान्याल-परिवारकी मिठाईकी कमीको लेकर नई बहूके बारेमें बहस जब चरम सीमापर पहुँच रही थी तब शिवरतन उसी नई बहूकी प्रशंसामें मुक्त-कण्ठ हो रहे थे।

शिवरतनने कहा, बुधवारको नई बहूको भी साथ ले जाओ। बिटिया अगर और कुछ दिनों तक यहाँ रह जाती तो यहाँका सब कुछ सँभालकर मुझे साल-भरके लिए निश्चिन्त कर जाती। क्योंकि यह काम इतनी तरतीबसे और किसी भी बहूसे नहीं होता। लेकिन किया क्या जाय! ले जाकर दस-पाँच दिन उसके मैके रख आना, बहनोंके संग कुछ दिन आनन्दसे बिता सकेगी। विभूति, तुम्हें घरमें तो विशेष कोई असुविधा नहीं होगी न?

विभूतिने कहा, कुछ असुविधा नहीं होगी।

शिवरतनने कहा, अच्छी बात है, यही करना। नई बहू घर छोड़कर चली जायगी, यह याद आते ही दशहरेका दुःख और भी उद्वेलित हो उठता है, लेकिन क्या किया जाय! सभी महामायाकी इच्छा है। साल-भर सभीको लेकर गृहस्थी चलाना—कहकर वह दीर्घ-श्वासको दबा कर शायद और कुछ कहने जा रहे थे; लेकिन अकस्मात् उपस्थित सभी बिलकुल चौंक उठे।

वृद्धा जननी रोते रोते आँगनके बीचमें आ खड़ी हुई थीं। शिवरतन अत्यन्त व्यस्त होकर हुक्केको रखकर उठ खड़े हुए। माँने रोते-रोते कहा,—

शिबू, मेरे गुरुकी कसम रही, अगर तू इसका फैसला नहीं करता है तो तेरे घरमें अब मैं जल नही ग्रहण नहीं करूंगी। नई बहू बड़े आदमीकी बेटी है, उसने आज मुझे जूता फेंककर मारा है!

सामने वज्र गिरता तो भी शायद भाई अधिक नहीं चौंकते। विभूतिका चेहरा डरसे फक हो गया, शिवरतन विस्मयसे हतबुद्धि होकर बोले, नई बहूने! यह क्या कभी हो सकता है माँ?

माँ उसी तरह रोदन-विकृत कण्ठसे बोलीं, होनेका काम भी नहीं है भैया, वह जो नहीं बहू है! बड़े आदमीकी बेटी है! जो भी हो, जब गुरुका नाम लेकर कसम खाई है तो घरमें रखकर बूढी माँको अब मत मारो भैया, आज ही काशी भेज दो। जाऊँ, उन्हींके चरणोंमें आश्रय लूँ।

देखते-देखते लड़के-लड़कियों नौकर-नौकरानियोंकी एक प्रकारसे भीड़ ही जमा हो गई। शिवरतनने अपनी छोटी लड़की गिरिबालाकी ओर देखकर कहा, क्या हुआ है रे गिरि, तू जानती है?

गिरिबालाने सिर हिलाकर कहा, जानती हूँ पिताजी!—यह कहकर उसने साडेलोंके सकोरोंमें सन्देश कम होनेकी कहानी विस्तारपूर्वक सुनाई। कहा, दादी नई चाचीको बड़ी गालियाँ दे रही थीं पिताजी!

शिवरतनने कहा, फिर!

लड़कीने कहा, नई चाची चुपचाप झाड़ू लगा रही थी, सामने नए काकाके जूते पड़े हुए थे, उन्हींको पैरसे फेंक भर दिया था।

शिवरतनने प्रश्न किया, फिर?

गिरिने कहा, एका जूता छटककर दादीके पैरके पास जा गिरा था।

शिवरतनने केवल 'हूँ' कहा।—माँकी ओर देखकर बोले, अन्दर जाओ माँ, इसका फैसला अगर नहीं होता है तो काशी ही चली जाना।

एक-एक करके धीरे-धीरे सभी चले गए। केवल तीनों भाई चुप बैठे रहे। नौकर चिलम भरकर दे गया। लेकिन तमाकू जलने लगी, शिवरतनने उसे छुआ नहीं। करीब आधा घंटा इसी तरह चुप बैठे रहकर अन्तमें सिर उठाकर बोले, विभूति?

विभूतिने ससम्मान कहा, जी?

शिवरतन बोले, तुम्हारी स्त्रीको तुम्हें छोड़कर और किसीको सजा देनेका अधिकार नहीं है।

विभूतिने आशंकासे भरे हुए क्षीण कंठमें कहा, आदेश दीजिए।

शिवरतन बोले, इस जूतेको तुम अपनी स्त्रीके सिरपर रख देना। आँगनके बीच वह सारी दोपहरी खड़ी रहेगी। तुम्हें यही मेरा आदेश है।

आदेश सुनकर विभूतिके दिमागमें बिजली कौंध गई। अपने सास-ससुरका चेहरा, शाली-सरहजोंके चेहरे, नौकरीकी बात, स्त्रीका चेहरा सब कुछ एक ही साथ याद आकर भय और चिन्ताने उसके चेहरेको म्लान कर दिया। उसने भर्राई हुई आवाजमें कहना चाहा,—लेकिन बड़े भैया, दोषका विचार किए बगैर ही—

शिवरतनने शान्त स्वरमें कहा, माँ अपनेको अत्यन्त अपमानित महसूस कर रही हैं, इसे तुम लोगोंने भी देख लिया। उनका कौन-सा कसूर है, कितना कसूर है, इसके फैसलेका भार मेरे ऊपर नहीं है। जिनका फैसला कर सकता हूँ उनके प्रति मेरा यही आदेश है। अब आगे क्या करना है, उसे तुम जानो।

विभूतिने कहा, बड़े भैया आपका हुक्म सदासे सिर माथे रखता आया हूँ, कभी कोई स्वतंत्रता नहीं पाई है। आज भी वही होगा।

इस लेकिनको वह भी समाप्त नहीं कर पाया, शिवरतन भी मुँह लटकाए बैठे रहे।

विभूतिने कुछ देर तक चुप रहकर शायद बड़े भाईसे किसी बातकी प्रत्याशा की। लेकिन कुछ न पाकर उठ खड़े होते हुए उसने कहा, बड़े भैया, मैं चला। यह कह कर धीरे-धीरे वह अन्तःपुरकी ओर चला गया।

शिवरतनने कुछ भी नहीं कहा। वे उसी तरह मुँह लटकाए बैठे रहे। दशहरेका घर था, आज भी आत्मीयों, अनात्मीयों, रिश्तेदारों, पड़ोसियों, लड़के-लड़कियों नौकर-नौकरानियोंसे घर भरा हुआ था। इसीके बीच जो नई बहू उनके प्राणोंसे अधिक स्नेहकी पात्री है, उसीका इतना बड़ा अपमान, इतनी बड़ी सजा कैसे होगी, इसे वह खुद भी नहीं सोच पाए। उनके नत नेत्रोंसे गरम आसुओंके बड़े बड़े बूँद टप-टप फर्शपर झरने लगे,—लेकिन 'विभूति' कहकर एक बार पीछेसे नहीं पुकार सके। मन-ही-मन निरन्तर कहने लगे—किन्तु माँ जो हैं! उनका अपमान जो हुआ है! ('उत्तरा' अगहन, १३३७)

[वैशाख १३४२ में प्रकाशित 'रसचक्र' नामक पंचायती उपन्यासके प्रारंभके तौरपर यह अंश मुद्रित हुआ था।]

भला-बुरा

अविनाश घोषाल कुछ वर्ष और नौकरी कर सकते थे। लेकिन संभव नहीं हुआ। खबर आई कि इस बार भी उन्हें धता बतलाकर कोई जूनियर मुन्सिफ सबजज बन गया। दूसरी बारकी तरह इस बार भी अविनाश चुप रहे। अन्तर केवल इतना ही था कि इस बार उन्होंने डाक्टरके सर्टिफिकेटके साथ जल्दसे जल्द अवसर लेनेके लिए दरख्वास्त भेज दी। दरखास्त मंजूर होगी ही, इसमें उन्हें संदेह नहीं था।

अविनाशके कामकी फुर्तीसे सभी प्रसन्न थे, भद्र आचरणकी प्रशंसा सभी करते हैं, फिर भी उसकी यह दुर्गति हुई। इसके पीछेके गुप्त इतिहासको बहुत कम लोग जानते हैं। उसे बतला दूँ। उसकी नौकरीकी शुरुआतमें एक बार एक नौजवान आई. सी. एस. जिलेका जज होकर दफ्तरका इन्सपेक्शन करने आया। छोटी-सी बातको लेकर दोनोंमें पहले मत-भेद हुआ और बादमें इसीने बड़े झगड़ेका रूप ले लिया। लौटकर जज साहब निरन्तर उसके कामके छिद्रान्वेषणमें लगे रहे। लेकिन छिद्रका पाना सहज नहीं था। जज साहब इससे तनिक प्रसन्न नहीं हुए। उसके फैसलेको काटकर देखा कि हाइकोर्टमें वह नहीं टिकता, खुद ही अधिक लज्जित होना पड़ता है। तबादलेका समय हो गया था, अविनाश दूसरे जिलेमें चले गए। लेकिन जजसे मुलाकात करके नहीं गए। श्रद्धा-निवेदनकी प्रचलित रीतिमें उनसे बहुत बड़ी त्रुटि हुई। इसके बाद कितने ही साल बीत गए। बातको अविनाश भूल गये थे मगर वह नहीं भूले थे। इसका प्रमाण मिला कुछ दिन पहले। वह नौजवान जज अब हाइकोर्टमें आये हैं मुन्सिफ वगैरहके विधाता बनकर। अविनाश सीनियर आदमी था, कामके लिए काफी मशहूर था, उसकी उन्नतिका पथ सम्पूर्ण रूपसे बाधा-हीन था। अचानक देखा गया कि उसकी जगह नीचेका आदमी सबजज हो गया। और मामला यहीं खत्म नहीं हुआ। एक-एक करके और भी तीन आदमी उसे पीछे छोड़ आगे बढ़ गए। जो लोग नहीं जानते वे कहेंगे कि कहीं ऐसा भी होता है? यह तो सरकारी नौकरी है और उसपर इतनी बड़ी नौकरी है। यह क्या काजियोंका जमाना है? लेकिन अनुभवी कहेंगे

उससे भी ज्यादा ज्यादतियाँ होती हैं। अतएव अविनाश मन ही मन समझ गए कि अब इससे छुटकारा नहीं। आत्म-सम्मान और नौकरी इन दो नावोंपर पैर नहीं रखा जा सकता—दोनोंमेंसे एकको चुन लेना होगा। उसी बातको इस बार उन्होंने पूरा किया। परिवारमें अविनाशकी भार्या आलोकलता, आई० ए० फेल पुत्र हिमांशु और कन्या शाश्वती यही तीन प्राणी थे। नौकर-नौकरानियोंकी संख्या इतनी थी कि अनगिनित कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

उस दिन अविनाश अदालतसे प्रसन्नचित्त लौटे, यथानियम कपड़े बदले, हाथ-मुँह धो जलपान करनेके लिए बैठते हुए बोले—जाने दो, इतने दिनोंके बाद मुक्ति मिली छोटी बहू। सरकारी खबर न आनेपर भी हाईकोर्टके एक मित्रका तार मिला है कि मेरी जेलकी मियाद खतम हो चली। अधिक विलम्ब नहीं होगा। विलम्ब नहीं होगा, इस बातको खुद ही जानता था। आलोकलता निकट ही एक कुर्सीपर बैठी सिलाई कर रही थी, और कन्या शाश्वती पिताके बगलमें बैठी, उन्हें पंखा झल रही थी। सुनकर दोनों चौंक उठीं।

स्त्रीने प्रश्न किया—इसका मतलब?

अविनाशने कहा—शायद सुना होगा कि कोई गोविन्दपद बाबू इस बार भी मुझे पीछे छोड़ छह महीनेके लिए सबजज हो गये। हाग् साहबके हाइकोर्टमें आनेके बादसे पिछले तीन सालोंसे यही होता आ रहा है। मैंने एक शब्द भी नहीं कहा। सोचा था अपने अन्यायको किसी दिन वह खुद समझेंगे। लेकिन देखा; यह नहीं होनेका। कमसे कम उस आदमीके रहते दम तक तो नहीं। अविचारको इतने दिनों तक सहता रहा। लेकिन सहन करनेसे मनुष्यत्व नहीं रहेगा।

कल शामको सदगालाके यहाँ घूमने जाकर आलोकलता इसी तरहकी बात आभास-इशारेसे सुन आई थीं। लेकिन उसका मतलब समझमें नहीं आया था, और इस वक्त भी नहीं समझ पाईं। बोलीं—तदबीर-तगादेके बगैर आजके जमानेमें कौन-सी बात होती है? मनुष्यत्व कायम रखनेके लिए क्या किया है सुनूँ तो जरा?

अविनाशने कहा—तदबीर-तगादा नहीं किया जाता मगर जो कर सकता था उसे अवश्य ही किया है।

आलोकलता पतिके मुँहकी ओर देखती रहीं, अभी तक तात्पर्य उनकी

भला-बुरा

अविनाश घोषाल कुछ वर्ष और नौकरी कर सकते थे। लेकिन सभव नहीं हुआ। खबर आई कि इस बार भी उन्हें धता बतलाकर कोई जूनियर मुन्सिफ सबजज बन गया। दूसरी बारकी तरह इस बार भी अविनाश चुप रहे। अन्तर केवल इतना ही था कि इस वार उन्होंने डाक्टरके सर्टिफिकेटके साथ जल्दसे जल्द अवसर लेनेके लिए दरख्वास्त भेज दी। दरखास्त मजूर होगी ही, इसमें उन्हें सदेह नहीं था।

अविनाशके कामकी फुर्तीसे सभी प्रसन्न थे, भद्र आचरणकी प्रशंसा सभी करते हैं, फिर भी उसकी यह दुर्गति हुई। इसके पीछेके गुप्त इतिहासको बहुत कम लोग जानते हैं। उसे वतला दूँ। उसकी नौकरीकी शुरुआतमें एक वार एक नौजवान आई. सी एस. जिलेका जज होकर दफ्तरका इन्सपेक्शन करने आया। छोटी-सी बातको लेकर दोनोंमें पहले मत-भेद हुआ और बादमें इसीने बड़े झगड़ेका रूप ले लिया। लौटकर जज साहव निरन्तर उसके कामके छिद्रान्वेषणमें लगे रहे। लेकिन छिद्रका पाना सहज नही था। जज साहव इससे तनिक प्रसन्न नहीं हुए। उसके फैसलेको काटकर देखा कि हाइकोर्टमें वह नहीं टिकता, खुद ही अधिक लज्जित होना पड़ता है। तबादलेका समय हो गया था, अविनाश दूसरे जिलेमें चले गए। लेकिन जजसे मुलाकात करके नहीं गए। श्रद्धा-निवेदनकी प्रचलित रीतिमें उनसे बहुत बड़ी त्रुटि हुई। इसके बाद कितने ही साल बीत गए। बातको अविनाश भूल गये थे मगर वह नहीं भूले थे। इसका प्रमाण मिला कुछ दिन पहले। वह नौजवान जज अब हाइकोर्टमें आये हैं मुन्सिफ वगैरहके विधाता बनकर। अविनाश सीनियर आदमी था, कामके लिए काफी मशहूर था, उसकी उन्नतिका पथ सम्पूर्ण रूपसे वाधा-हीन था। अचानक देखा गया कि उसकी जगह नीचेका आदमी सवजज हो गया। और मामला यहीं खत्म नहीं हुआ। एक-एक करके और भी तीन आदमी उसे पीछे छोड़ आगे बढ गए। जो लोग नहीं जानते वे कहेंगे कि कहीं ऐसा भी होता है? यह तो सरकारी नौकरी है और उसपर इतनी बड़ी नौकरी है! यह क्या काजियोंका जमाना है? लेकिन अनुभवी कहेंगे

उससे भी ज्यादा ज्यादतियाँ होती हैं। अतएव अविनाश मन ही मन समझ गए कि अब इससे छुटकारा नहीं। आत्म-सम्मान और नौकरी इन दो नावोंपर पैर नहीं रखा जा सकता—दोनोंमेंसे एकको चुन लेना होगा। उसी बातको इस बार उन्होंने पूरा किया। परिवारमें अविनाशकी भार्या आलोकलता, आई० ए० फेल पुत्र हिमांशु और कन्या शाश्वती यही तीन प्राणी थे। नौकर-नौकरानियोंकी सख्या इतनी थी कि अनगिनित कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

उस दिन अविनाश अदालतसे प्रसन्नचित्त लौटे, यथानियम कपड़े बदले, हाथ-मुँह धो जलपान करनेके लिए बैठते हुए बोले—जाने दो, इतने दिनोंके बाद मुक्ति मिली छोटी बहू। सरकारी खबर न आनेपर भी हाईकोर्टके एक मित्रका तार मिला है कि मेरी जेलकी मियाद खत्म हो चली। अधिक विलम्ब नहीं होगा। विलम्ब नहीं होगा, इस बातको खुद ही जानता था। आलोकलता निकट ही एक कुर्सीपर बैठी सिलाई कर रही थी, और कन्या शाश्वती पिताके बगलमें बैठी, उन्हें पंखा झल रही थी। सुनकर दोनों चौंक उठीं।

स्त्रीने प्रश्न किया—इसका मतलब ?

अविनाशने कहा—शायद सुना होगा कि कोई गोविन्दपद बाबू इस बार भी मुझे पीछे छोड़ छह महीनेके लिए सबजज हो गये। हाग् साहबके हाइकोर्टमें आनेके बादसे पिछले तीन सालोंसे यही होता आ रहा है। मैंने एक शब्द भी नहीं कहा। सोचा था अपने अन्यायको किसी दिन वह खुद समझेंगे। लेकिन देखा; यह नहीं होनेका। कमसे कम उस आदमीके रहते दम तक तो नहीं। अविचारको इतने दिनों तक सहता रहा। लेकिन सहन करनेसे मनुष्यत्व नहीं रहेगा।

कल शामको सदगलाके यहाँ घूमने जाकर आलोकलता इसी तरहकी बात आभास-इशारेसे सुन आई थीं। लेकिन उसका मतलब समझमें नहीं आया था, और इस वक्त भी नहीं समझ पाईं। बोलीं—तदबीर-तगादेके बगैर आजके जमानेमें कौन-सी बात होती है? मनुष्यत्व कायम रखनेके लिए क्या किया है सुनूँ तो जरा ?

अविनाशने कहा—तदबीर-तगादा नहीं किया जाता मगर जो कर सकता था उसे अवश्य ही किया है।

आलोकलता पतिके मुँहकी ओर देखती रहीं, अभी तक तात्पर्य उनकी

भला-बुरा

अविनाश घोषाल कुछ वर्ष और नौकरी कर सकते थे। लेकिन सभव नहीं हुआ। खबर आई कि इस बार भी उन्हें धता बतलाकर कोई जूनियर मुन्सिफ सबजज बन गया। दूसरी बारकी तरह इस बार भी अविनाश चुप रहे। अन्तर केवल इतना ही था कि इस बार उन्होंने डाक्टरके सर्टिफिकेटके साथ जल्दसे जल्द अवसर लेनेके लिए दरख्वास्त भेज दी। दरखास्त मंजूर होगी ही, इसमें उन्हें सदेह नहीं था।

अविनाशके कामकी फुर्तीसे सभी प्रसन्न थे, भद्र आचरणकी प्रशंसा सभी करते हैं, फिर भी उसकी यह दुर्गति हुई। इसके पीछेके गुप्त इतिहासको बहुत कम लोग जानते हैं। उसे बतला दूँ। उसकी नौकरीकी शुरुआतमें एक बार एक नौजवान आई. सी एस. जिलेका जज होकर दफ्तरका इन्सपेक्शन करने आया। छोटी-सी बातको लेकर दोनोंमें पहले मत-भेद हुआ और बादमें इसीने बड़े झगड़ेका रूप ले लिया। लौटकर जज साहब निरन्तर उसके कामके छिद्रान्वेषणमें लगे रहे। लेकिन छिद्रका पाना सहज नही था। जज साहब इससे तनिक प्रसन्न नहीं हुए। उसके फैसलेको काटकर देखा कि हाइकोर्टमें वह नहीं टिकता, खुद ही अधिक लज्जित होना पड़ता है। तबादलेका समय हो गया था, अविनाश दूसरे जिलेमें चले गए। लेकिन जजसे मुलाकात करके नहीं गए। श्रद्धा-निवेदनकी प्रचलित रीतिमें उनसे बहुत बड़ी त्रुटि हुई। इसके बाद कितने ही साल बीत गए। बातको अविनाश भूल गये थे मगर वह नहीं भूले थे। इसका प्रमाण मिला कुछ दिन पहले। वह नौजवान जज अब हाइकोर्टमें आये हैं मुन्सिफ वगैरहके विधाता बनकर। अविनाश सीनियर आदमी था, कामके लिए काफी मशहूर था, उसकी उन्नतिका पथ सम्पूर्ण रूपसे बाधा-हीन था। अचानक देखा गया कि उसकी जगह नीचेका आदमी सबजज हो गया। और मामला यहीं खत्म नहीं हुआ। एक-एक करके और भी तीन आदमी उसे पीछे छोड़ आगे बढ़ गए। जो लोग नहीं जानते वे कहेंगे कि कहीं ऐसा भी होता है? यह तो सरकारी नौकरी है और उसपर उतनी बड़ी नौकरी है। यह क्या काजियोंका जमाना है? लेकिन अनुभवी कहेंगे

उससे भी ज्यादा ज्यादतियाँ होती हैं। अतएव अविनाश मन ही मन समझ गए कि अब इससे छुटकारा नहीं। आत्म-सम्मान और नौकरी इन दो नावोंपर पैर नहीं रखा जा सकता—दोनोंमेंसे एकको चुन लेना होगा। उसी बातको इस बार उन्होंने पूरा किया। परिवारमें अविनाशकी भार्या आलोकलता, आई० ए० फेल पुत्र हिमांशु और कन्या शाश्वती यही तीन प्राणी थे। नौकर-नौकरानियोंकी सख्या इतनी थी कि अनगिनित कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

उस दिन अविनाश अदालतसे प्रसन्नचित्त लौटे, यथानियम कपड़े बदले, हाथ-मुँह धो जलपान करनेके लिए बैठते हुए बोले—जाने दो, इतने दिनोंके बाद मुक्ति मिली छोटी बहू। सरकारी खबर न आनेपर भी हाईकोर्टके एक मित्रका तार मिला है कि मेरी जेलकी मियाद खत्म हो चली। अधिक विलम्ब नहीं होगा। विलम्ब नहीं होगा, इस बातको खुद ही जानता था। आलोकलता निकट ही एक कुर्सीपर बैठी सिलाई कर रही थी, और कन्या शाश्वती पिताके बगलमें बैठी, उन्हें पंखा झल रही थी। सुनकर दोनों चौंक उठीं।

स्त्रीने प्रश्न किया—इसका मतलब ?

अविनाशने कहा—शायद सुना होगा कि कोई गोविन्दपद बाबू इस बार भी मुझे पीछे छोड़ छह महीनेके लिए सबजज हो गये। हाग् साहबके हाइकोर्टमें आनेके बादसे पिछले तीन सालोंसे यही होता आ रहा है। मैंने एक शब्द भी नहीं कहा। सोचा था अपने अन्यायको किसी दिन वह खुद समझेंगे। लेकिन देखा; यह नहीं होनेका। कमसे कम उस आदमीके रहते दम तक तो नहीं। अविचारको इतने दिनों तक सहता रहा। लेकिन सहन करनेसे मनुष्यत्व नहीं रहेगा।

कल शामको सदगलाके यहाँ घूमने जाकर आलोकलता इसी तरहकी बात आभास-इशारेसे सुन आई थीं। लेकिन उसका मतलब समझमें नहीं आया था, और इस वक्त भी नहीं समझ पाई। बोलीं—तदबीर-तगादेके बगैर आजके जमानेमें कौन-सी बात होती है! मनुष्यत्व कायम रखनेके लिए क्या किया है सुनूँ तो जरा ?

अविनाशने कहा—तदबीर-तगादा नहीं किया जाता मगर जो कर सकता था उसे अवश्य ही किया है।

आलोकलता पतिके मुँहकी ओर देखती रहीं, अभी तक तात्पर्य उनकी

समझमें नहीं आया। वह डर गई। बोली—सुनूँ भी ? क्या किया है बतलाओ भी तो सही ?

अविनाशने कहा—वह है कामसे इस्तीफा देना,—और इस्तीफा दे भी दिया है।

आलोकके हाथसे सिलाईका सामान जमीनपर गिर पड़ा। वज्राहतकी भाँति कुछ देर तक स्तब्ध रहकर बोलीं—यह क्या कह रहे हो ? इतने प्राणियोंको भूखों मारनेका संकल्प किया है क्या ? काम छोड़ो तो भला, तुम्हारी सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मैं उसी दिन आत्म-हत्या कर लूँगी।

अविनाश चुप बैठे रहे। कोई जवाब नहीं दिया।

दरख्वास्त अगर दे ही दी है, तो वचन दो कि कल ही वापिस ले लोगे ?

नहीं।

नहीं क्यों ? दुःखी हो तरंगमें आकर लोग न जाने क्या-क्या कर बैठते हैं। लेकिन इसका क्या कोई प्रतिकार नहीं है ?

अविनाशने धीरे-धीरे कहा—तरंगमें आकर तो मैंने ऐसा नहीं किया है छोटी बहू। जो कुछ किया है वह सोच-विचारकर ही किया है।

वापिस नहीं लोगे ?

नहीं।

तो तुम चाहते हो कि मैं मर ही जाऊँ ?

तुम तो जानती हो छोटी बहू कि मैं इसकी कामना नहीं करता। तुम पत्नी होकर अगर पतिकी मर्यादाको इस तरहसे नष्ट करती हो कि लोगोंके सामने मस्तक ऊँचा करके खड़ा भी न हो सकूँ तो—

बात अविनाशके मुँहमें अचानक रुद्ध हो गई—खत्म नहीं हुई।

आलोकलताने कहा—तो क्या कहते हो ?

जवाबमें एक कठोर बात उनकी जबानपर आई थी मगर इस बार भी वह उसे नहीं बोल पाए। कन्याने बाधा डाल दी। अब तक वह सब कुछ चुपचाप सुन रही थी। लेकिन अब उससे नहीं रहा गया। बोली—नहीं पिताजी, इस वक्त माँमें सोचने-विचारनेकी शक्ति नहीं है। तुम उन्हें कोई जवाब नहीं दे सकते।

लड़कीकी हिमाकत देखकर माँ पहले कुछ हितबुद्धि-सी हो गई। दूसरे ही क्षण बड़े जोरोंकी फटकार बताकर बोल उठीं—शाश्वती, जा यहाँसे चली जा, कहती हूँ।

लड़की बोली—अगर चला जाना ही पड़ता है तो पिताजीको साथ ले जाऊँगी माँ। तुम्हारे पास छोड़कर नहीं जाऊगी।

क्या कहा?

कहा कि तुम्हारे पास उन्हें अकेला छोड़कर मैं नहीं जाऊँगी। कभी नहीं जाऊँगी। चलो पिताजी, हम जरा नदीके किनारे घूम आएँ। शामके बाद मैं खुद तुम्हारा खाना बना दूँगी। इस वक्त खाना रहने दो। उठो, चलो पिताजी, यह कहकर उसने उनका हाथ पकड़कर खड़ा कर दिया।

दोनों सचमुच ही चले जा रहे हैं, देखकर आलोकने अपनेको कुछ सँभालकर कहा—जरा रुको। सचमुच ही क्या एक बार भी नहीं सोचा कि नौकरी छोड़ देनेपर तुम्हारे परिवारके इतने प्राणी क्या खायेंगे?

अविनाशने जवाब देना चाहा मगर इस बार भी लड़कीने बाधा दी। वह बोली—खानेकी क्या सचमुच ही तुम्हें चिन्ता हो गई है माँ? लेकिन रोना तो नहीं चाहिए। नौकरी छोड़नेपर भी पिताजीको पेन्शन मिलेगी—और वह भी तीन-सौसे कम क्या होगी। बगलवाले मकानके संजीव बाबू साठ रुपये तनख्वाह पाते हैं, खानेवाले उनके यहाँ भी नौ-दस हैं। कितनी बार देख आई हूँ, उनके यहाँका खाना हमारे यहाँसे बुरा नहीं होता। उनका चला जा रहा है तो हम तीन-चार प्राणियोंका खाना-पहनना नहीं चलेगा?

माँके धीरजका बाँध टूट गया। कटु-व्यंगके स्वरमें चिल्ला उठी—जा भाग मेरी नजरोंके सामनेसे। जब अपना परिवार बसाना तब गिरिस्तिनपना दिखाना। मेरी गृहस्थीमें दखल दिया कि तुझे घरसे निकाल बाहर कर दूँगी।

लड़कीने जरा हँसकर कहा—अच्छी बात है माँ, वही करो। पिताजीका हाथ पकड़कर मैं चली जाऊँ। तुम और भैया पिताजीकी पेन्शनके सारे रुपए लेकर जो चाहो करो। हम कुछ भी नहीं कहेंगे। मैं लड़कियोंके किसी स्कूलमें नौकरी करके बूढ़े पिताजीका खर्च चला लूँगी।

माँ आगे कुछ नहीं बोलीं। देखते-देखते उनकी दोनों आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली।

लड़कीने पिताका हाथ किंचित् दबाकर कहा—चलो पिताजी, चलें। शाम हो जायगी।

अविनाशके पग बढ़ाते ही आलोकलता आँचलसे आँखें पोंछकर रुँधे गलेसे बोली—जरा और रुको। तुम्हारी यह कैसी भीष्म प्रतिज्ञा है? इसमें क्या हेर-फेर नहीं होनेका?

अविनाशने गर्दन हिलाकर कहा—नहीं। ऐसा नहीं होनेका।

देखो, मैं तुम्हारी स्त्री हूँ, तुम्हारी सुख-दु:खकी साथिन हूँ।

अविनाश बाधा देकर बोले—अगर यह सच है तो इतने दिनों तक मेरे सुखोंका हिस्सा मिला है, अब मेरे दुःखोंका हिस्सा लो।

आलोकने कहा—तैयार हूँ मगर सारी इज्जत-आबरू कायम रखनेके लिए इतने रुपए काफी नहीं हैं, तो पेन्शनके थोड़ेसे रुपयोंसे काम कैसे चलेगा?

अविनाश बोले—इज्जत-आबरूका मतलब अगर अमीरी ठाट समझ रखा है तो वह नहीं होनेका, इसे मानता हूँ। नहीं तो यों सजीव बाबूका भी चल जाता है।

लेकिन तुम्हारी लड़की? उन्नीस-बीसकी हो गई, उसका ब्याह कब करोगे?

माकी समस्याका समाधान किया शाश्वतीने। बोली—माँ, मेरे ब्याहके लिए तुम चिन्ता न करो। अगर सोचना ही चाहती हो तो बल्कि सोचो सजीव बाबूने दो बेटियोंका ब्याह कैसे किया।

जवाब सुनकर माँका धीरज फिर टूटा। सजल आँखें रक्त हो उठीं, रुँधे गलेका स्वर पञ्चमपर पहुँच गया। बोलीं—शाश्वती, मुँहजली, मेरी नजरोंके सामनेसे अब भी क्यों नहीं हटती? जा हट जा, कहे देती हूँ।

जाती हूँ माँ, चलो न पिताजी।

बगलवाले कमरेमें हिमांशु कविता करनेमें लगा हुआ था। आई० ए० परीक्षाके तीसरे प्रयासमें अब भी कुछ देर है। उनकी कविताएँ वातायन पत्रिकामें छपती हैं। दूसरी कोई पत्रिका नहीं लेती है, वातायन-सम्पादक उत्साहित करते हुए चिट्ठी लिखते हैं—"हिमांशु बाबू, आपकी कविता अच्छी बन पड़ी है। अगली बार एक कविता और भेजें—कुछ छोटी। और साथ ही शाश्वती देवीकी एक रचना अवश्य ही भेजें।" नहीं जानता, वातायन-सम्पादक सच लिखते हैं या मजाक करते हैं। या उनके मनमें कोई और बात है। शाश्वती देखकर हँसती हुई कहती है—भैया, यह चिट्ठी मित्रोंको दिखाते न फिरना।

क्यों, बतला तो?

नहीं, यों ही कह रही हूँ। अपने मुँह मियाँ-मिट्ठू बनते फिरना क्या अच्छा लगता है!

कविता भेजनेके पहले बहनको पढ़ानेके बहाने अपनी भूलोंको वह सुधार लेता है। संशोधनकी मात्रा कुछ अधिक हो जाने पर लज्जित होकर कहता है— तेरी तरह मैंने तो पिताजीसे संस्कृत, व्याकरण, काव्य, साहित्य नहीं पढ़ा है। मेरा क्या दोष है? लेकिन शाश्वती, तू जान ले, यह कुछ भी नहीं है, दस रुपए महीना पर एक पण्डित रख लेनेसे सब कुछ बन जाता है। कविताका यथार्थ जीवन है कल्पनामें, भावमें, उसकी अभिव्यञ्जनामें। वहाँ तेरे मुग्धबोधके बापकी क्या मजाल, कि टाँग अड़ावे!

यह तो बिल्कुल सच बात है भैया।

हिमांशुकी कलमकी नोकपर एक अच्छी तुक आ गई थी। लेकिन माँके कठोर कण्ठ स्वरने सब कुछको छितरा दिया। कलम रख बगलवाले दरवाजेको ठेल इस कमरेमें पैर रखते ही माँ चिल्ला उठीं—जानता है हिमांशु, हमारा कितना बड़ा सत्यानाश हो गया! उन्होंने नौकरी छोड़ दी—नहीं तो उनका मनुष्यत्व नष्ट हो रहा था। क्यों? इसलिए कि उनकी जगह कोई दूसरा आदमी सबजज बन गया है, वे नहीं हो सके। मैं साफ कहे देती हूँ, यह डाहके सिवा और कुछ भी नहीं है। निरा डाह।

हिमांशुने अचरजसे आँखें फाड़कर कहा—तुम यह क्या कह रही हो माँ। नौकरी छोड़ दी? ह्वाट् नानसेंस!

अविनाशका मुँह पीला पड़ गया। दाँतों होठ चबाकर वह चुप खड़े रहे। आसन्न सन्ध्याकी म्लान छायामें उनका चेहरा विचित्र लग रहा था।

शाश्वती पागलोंकी भाँति चिल्ला उठी—ओफ्, संसारमें धृष्टताकी कोई सीमा भी है? तुम चलो, जल्दी चलो, नहीं तो मैं सिर पीटकर मर जाऊँगी। कहकर आधे अचेत पिताको लेकर वह घरसे बाहर चली गई।

अरक्षणीया

१

मझली मौसी, माँ-ने महाप्रसाद भेज दिया है—लो।

कौन है रे, अतुल? आ बेटा आ, कहकर दुर्गामणि रसोईघरसे निकलीं अतुलने प्रणाम करके पदधूलि ग्रहण की।

नीरोग होओ बेटा, दीर्घजीवी होओ। अरी ज्ञानदा, तेरे अतुल भैया लौट आये हैं। एक आसन बिछाकर महाप्रसादको घरमें रख दे बिटिया। कल रातको साढ़े नौ-दस बजे आम सड़कपर घोड़ागाड़ीकी आवाज सुनकर सोचा, कौन आया! तब अगर जानती, दीदी आई हैं तो दौड़ कर उनके चरणोंकी धूल ले लेती। इस तरहके मनुष्य क्या अब संसारमें मिलते हैं! दीदी अच्छी तो हैं न बेटा? इस समय पुरीसे आ रहे हो न? क्या कर रही है बिटिया, तेरे अतुल भैया जो खड़े हैं!

माँके बुलाने पर एक बारह-तेरह वर्षकी साँवली लड़की कमरेसे निकली; जितना हो सकता है गर्दन झुकाकर उसने ओसारेमें आसन बिछा दिया और अतुलके पैरोंके पास आकर प्रणाम किया। बोली भी नहीं, सिर उठाकर देखा भी नहीं। प्रणाम करके उठी और महाप्रसादके पात्रको हाथमें लेकर धीरे धीरे भीतर चली गई। लेकिन जरा ध्यानसे देखने पर पता चलता कि जाते समय लड़कीके मुख-मण्डलसे मानो दबी हँसी छलकी पड़ती थी।

और केवल लड़की ही नहीं, इधर भी जरा ध्यान देनेसे दिखाई पड़ता कि इस सुन्दर लड़केके चेहरेपर भी अपनी छटा विकसित करके बिजलीका एक अदृश्य प्रवाह क्षण भरमें विलीन हो गया।

आसनपर बैठकर अतुल तीर्थयात्राकी कहानी सुनाने लगा। उसके पिता उस जमानेके सदर आला थे। काफी रुपया पैसा और दूसरी सम्पत्ति पैदा करके पेंशन लेकर घर आ बैठे थे। वे परलोकवासी हो गये हैं। बी० ए० की परीक्षा देकर अतुल दो महीने पहिले माँको लेकर तीर्थाटनको निकला था हालमें ही रामेश्वर, पुरी होता हुआ कल घर लौटा है।

कहानी सुनकर दुर्गामणिने एक लम्बी सॉस ली और कहा, और एक महापातकिन मैं हूँ जो और कुछ न हो एक बार काशी जाकर बाबा विश्वनाथके ही चरणोंका दर्शन कर आती, सो इस जन्ममें यह साध भी पूरी नहीं हुई।

अतुलने कहा, मझली मौसी, काशीकी कहो या और कहींकी, एक बार सब कुछ छोड़-छाड़कर घरसे जबरदस्ती निकल पड़े बिना कुछ नहीं होता। मैं यदि इस प्रकार जोर देकर न ले जाता, तो क्या मेरी मॉका ही जाना कभी हो सकता था?

दुर्गामणिने एक लम्बी सॉस लेकर कहा—बेटा, तू तो सब कुछ जानता है। जोर ही करूँ तो भला किस बिरतेपर, बतला तो? तीस रुपयेकी नौकरीमें खा पहिन कर, लोकाचार, नाता-रिश्ता, दवा-दारूका खर्च जुटा कर भला क्या बच रहता है? और देखते देखते यह लड़की तेरहमें पहुँच गई। तुझसे सच कह रही हूँ अतुल, इसकी ओर देखते ही मेरे सीनेका खून सूख जाता है। ओफ! इतने बड़े शत्रुको गर्भमें धारण करके माँको लालन-पालन करना पड़ता है!

इन बातोंको मुँहसे निकालते-निकालते उनकी दोनों ऑखें डबडबा आईं।

लेकिन अचरजकी बात है कि इतनी बड़ी दुश्चिन्ता और कातरतामय बातें सुननेके बाद भी अतुल हँस पड़ा और बोला—मौसीजी, आप बातें बढ़ाकर कह रही हैं। अच्छा, लड़की क्या ओरोंके नहीं होती? सिर्फ एक तुम्हारे ही हुई है जो संसार-भरकी चिन्ता तुम्हींपर आ पड़ी है?

दुर्गामणिने कहा—मेरे मनकी हालतको सही मानेमें दुश्चिन्ता भी नहीं कहा जा सकता अतुल, यह तो हमारी मृत्यु-पीड़ा है। समाजको मैं जानती जो हूँ। लड़कीका ब्याह न कर पानेसे हम बिरादरीमें न रहेंगे। लेकिन ब्याह करूँ, तो कैसे? रुपए चाहिए, मगर पाऊँ कहाँ? इस मकानके एक हिस्सेको छोड़कर अपना कहनेके लिए मेरा कुछ भी तो नहीं है बेटा!

आध घण्टा पहले इस लड़कीको लेकर पति-पत्नीमें झगड़ा हो चुका था। पति आधा ही पेट खाकर थाली ठेलकर दफ्तर चले गये थे। उस व्यथासे दुर्गामणिका हृदय आलोड़ित हो उठा और टप-टप करके आँसूकी दो बूँदें कपोलोंपरसे होकर उनकी गोदमें गिर पड़ीं। हाथसे ऑसू पोंछकर बोलीं—पहले जन्ममें न जाने कितनी स्त्री-हत्या, ब्रह्महत्या की थीं अतुल, जो मैंने इस जन्ममें लड़कीको गर्भमें धारण किया!

नहीं, मझली मौसी, मैं चला, नहीं तो तुम नहीं रुकोगी।

एक बार और आँखें पोंछ कर दुर्गामणिने कहा—नहीं बेटा, जरा बैठ; थोड़ी देर तेरे सामने रोनेसे हृदयका भार कुछ हलका हो जाय। इसीलिए कहती हूँ, भगवान, अभागीको अगर मेरी गोदमें भेजा ही था तो रंग जरा साफ करके क्यों नहीं भेजा? काली होनेसे कोई भी उसे आश्रय नहीं देना चाहता। सभी सुन्दरी लड़की चाहते हैं। अरे अत्याचारी समाज, तू अगर कुल-शील, स्वभाव-चरित्र कुछ भी नहीं देखेगा, किसी लड़कीको केवल इसलिए अपने घरमें स्थान नहीं देगा कि वह काली है, तो उस लड़कीके ब्याह न होनेपर माँ-बापको क्यों दण्ड देगा?

अतुलने कहा—काली लड़कीका क्या ब्याह नहीं होता? भौंरा भी काला होता है, कोयल भी काली होती है। क्या इनका आदर नहीं होता? ये सब तो चिरकालके दृष्टान्त हैं मझली मौसी!

दुर्गामणिने कहा—इसीलिए ये दृष्टान्त ही अमर बने हुए हैं बेटा, और कुछ नहीं। इनसे अब न तो कोई सान्त्वना मिलती है और न बल ही मिलता है अतुल! गिरीश भट्टाचार्यकी लड़कीका ब्याह अपनी आँखों देखकर मेरे प्राण सूख गये। उनकी हालत भी ठीक मेरी ही जैसी थी—न तो रुपयेका बल और न लड़की ही रूपवती। इसलिए वरकी उम्र भी मिली साठके करीब करीब। उसकी माँका रोना मानों आज भी मेरे कानोंमें गूँज रहा है।

अतुलने अचरजमें आकर पूछा, साठके करीब? कहती क्या हो!

साठका क्यों न होगा बेटा! उस मुहल्लेका निताई चटर्जी हरी चक्रवर्तीका नत-दामाद है। उसके भी एक आठ-दस वर्षकी लड़की है। अब जरा हिसाब लगाकर देख लो!

बात सुनकर अतुल स्तब्ध होकर ताकता रह गया।

दुर्गामणि कहने लगी—वह लड़की अगर मनकी ग्लानिके कारण जहर खा ले, फाँसी लगा ले, या कुलमें दाग लगाकर निकल जाये, तो माँ होकर हृदयके अन्तस्तलसे उसे कैसे अभिशाप दूँ बतलाओ तो बेटा!

अतुल चुप रहा। दुर्गामणिने अचानक उसका हाथ जोरसे पकड़कर कहा—बेटा अतुल, आजकल सभी कहते हैं कि तुम लड़कोंमें दया-धरम है।

देखना, तुम्हारे स्कूल-कालिजका कोई लड़का अगर नितान्त दया करके ही इस लड़कीको अपने चरणोंमें जरा-सा स्थान दे दे। ऐसा हुआ तो मैं आजीवन तुम्हारे हाथों बिक जाऊंगी।

उतावलीके साथ अपना हाथ छुड़ाकर अतुल उनके चरणोंकी धूल लेकर गीले गलेसे बोल उठा—इतनी व्यग्र क्यों हो रही हो मझली मौसी ! मैं वचन देता हूँ—

लेकिन वचन नहीं दे सका। एकाएक लज्जासे उसके कान लाल हो गये और गला रुँध गया। दुर्गामणिका ध्यान यद्यपि उधर नहीं गया लेकिन अगर कोई दूसरा वहाँ उपस्थित होता तो शायद उसके दिलमें सन्देह उठता कि अतुल तरंगमें आकर ऐसी कोई बात कहने जा रहा था जिसे मुँहसे निकाल कर भी पूरा किये बिना ही रुक गया।

अपने आपको सँभाल कर अतुल उठ खड़ा हुआ और स्वाभाविक भावसे बोला—अच्छा मौसी, मैं पूरी कोशिश करूँगा।—क्यों री ज्ञानदा, कहाँ है तू ? एक बीड़ा पान तो ला दे—अब घर चलूँ।

दुर्गामणिने चिल्ला कर कहा—अपने अतुल भैयाको एक बीड़ा पान दे जा री ग्येनी ! मुँहजली लड़कीमें न तो रूप है और न गुण ही। भला यह सब बातें भी सिखलानी पड़ेंगी ? महाप्रसाद लेकर जो घरमें घुसी, सो फिर बाहर निकली ही नहीं। जल्दी पान ले आ।

अच्छा, मैं ही जाकर पान ले लेता हूँ। तू किस कमरेमें है री ज्ञानदा ? इस तरह ऊँची आवाज दे अतुल सोनेके कमरेमें जा पहुँचा।

सामने पानका सामान लेकर लड़की चुप बैठी थी। अतुलने कमरेमें घुसते ही गम्भीर होकर कहा, मझली मौसीने कहा, मुँहजली ग्येनीके न तो रूप है और न गुण। एक साठ सालके बूढ़ेके साथ इसका व्याह करना होगा।

ज्ञानदाने कोई जवाब नहीं दिया। मुँह नीचा किये ही पान-दानसे दो पान लेकर उसने हाथ ऊपर कर दिया।

ज्ञानदाके पीछे आकर उसके हाथसे पान लेते हुए अतुलने कहा—पान अच्छा लगाया होगा, तो इस बार माफ कर दिया जायगा। साठको घटा कर बीस-इक्कीस तक लाया जा सकेगा।

ज्ञानदाने लज्जाके मारे सिर झुकाकर उसे पान-दानसे मिला दिया।

अतुल धीमी आवाजसे बोला—मौसीके आगे और जरा-सा होता तो मैंने कह ही डाला था! अच्छा, दोपहर हो चला, अब चलता हूँ।

ज्ञानदाने इसका भी कोई उत्तर नहीं दिया। वह जैसे सिकुड़ कर सिर नीचा किए बैठी थी, वैसी ही बैठी रही।

तुमने तो कोई बात नहीं कही? अच्छा—कह कर अतुलने लड़कीके भींगे हुए केशोंका एक गुच्छा खींचते हुए कहा—लेकिन आ रहा है हरि चक्रवर्ती जैसा ही एक बूढ़ा—मैं चला, और वह हँसते-हँसते कमरेसे बाहर हो गया। लेकिन आँगनमें पैर रखते ही ऊँचे स्वरसे वह फिर बोल उठा—'मझली मौसी, ज्ञानोके लिये बम्बईमें माँने एक जोड़ी चूड़ियाँ खरीद दी हैं। बाहर आकर जरा देखो तो!'

चूड़ियोंका रंग और उनपर किया गया काम देख कर दुर्गामणि अत्यन्त पुलकित होकर दाताकी बारबार प्रशंसा करने लगीं। चूड़ियोंकी जोड़ी थी तो काचकी ही, मगर उस तरहकी कीमती और शौकीनी चूड़ियाँ गाँवोंकी कौन कहे, कलकत्तेमें भी तब तक नहीं आ पहुँची थीं। वस्तुतः उनकी बनावट, चमक-दमक और खूबसूरती देख कर माँका बहाना करके अतुल अपने रुपयेसे ही उन्हें बम्बईसे खरीद लाया था।

माँके बारबार पुकारने पर ज्ञानदा बाहर निकल आई। सिर नीचा किये हुए स्नेहके इस प्रथम उपहारको उसने ग्रहण करनेके लिये हाथ बढाये, तो वे काँप उठे। इसके बाद दाताके चरणोंमें नमस्कार करके वह धीरे-धीरे वहाँसे चल दी। उसके मुँहसे एक भी शब्द नहीं निकला। लेकिन आज उसके अंतःकरणकी बात अन्तर्यामीने जान ली। पीछे खड़े हुए केवल यही दो प्राणी सस्नेह मुग्ध नेत्रोंसे इस किशोरीके अनिन्द्य गठन और गति-भंगिमाको देखते रह गये।

२

बड़े भाई गोलोकनाथकी मृत्युके बाद उनकी विधवा स्वर्णमंजरी मैकेकी जो थोड़ी बहुत सम्पत्ति थी उसे बेच बाँचकर और मुट्ठीमें कुछ रुपये करके छोटे देवर अनाथनाथके आश्रयमें आ रही थी। पिछले साल ठीक इसी समय मझले भाई प्रियनाथने जब अनाथसे झगड़ा करके मकानको बाँटकर आँगनमें एक दरवाजा तक रखनेकी जरुरत महसूस नहीं की, तब विधाता निश्चय ही आड़में बैठे हँस रहे थे। कारण, एक वर्ष भी नहीं बीत पाया कि दीवार उठानेके सारे उद्देश्योंको निष्फल

करके केवल सात दिनोंके बुखारमें बिना दवा-दारूके ही प्रियनाथने प्राण त्याग दिये।

प्रियनाथकी मृत्युके एक दिन पहलेकी बात है। उनके मरनेके बारेमें किसीको कोई सन्देह नहीं रह गया था। इसीलिए उन्हें अंतिम बार देखनेके लिए गाँवके सारे लोगोंकी भीड़ उनके मकानमें घुसकर दरवाजे पर खड़ी अस्पष्ट और करुण स्वरमें हाय-हाय कर रही थी। प्रियनाथ उस समय भी सर्वथा अचेत नहीं हुए थे। अतुल गाँवमें नहीं था। कलकत्तेकी मेसमें खबर पाकर वह आज दौड़ा आया था। भीड़ ठेलकर वह रोगीके कमरेमें घुसनेका प्रयत्न कर रहा था कि ज्ञानदा दौड़ती हुई आई, पछाड़ खाकर गिर पड़ी और उसके पैरोंपर सिर पीटने लगी। जो लोग तमाशा देखने आये थे वे तो यह एक और अभावनीय फाऊ* पाकर और विस्मित होकर मन ही मन तर्क-वितर्क करने लगे। लेकिन अतुल इतने आदमियोंके सामने दुःख और लज्जाके कारण हतबुद्धि हो गया।

क्षणभरके बाद जब अतुल कुछ स्वाभाविक अवस्थामें आया और ज्ञानदाको पकड़कर उठाने लगा, तब वह अपनी समस्त शक्ति लगाकर अतुलके चरणोंसे लिपटी रही और दोनों पैरोंके बीच मुँह छिपाये रोते-रोते बोली—पिताकी मृत्युके समय तुम अपने मुँहसे कुछ सान्त्वना दिए जाओ। मेरी तकदीरमें जो कुछ भी क्यों न लिखा हो, पर इस समय मेरे लिये उन्हें जो चिन्ता है मेरे समान उसे भी वे यहीं छोड़कर जा सकें, यही मेरी इच्छा है। मैं तुमसे और कुछ नहीं माँगूँगी। इतना कहकर ज्ञानदा फिर सिर पटक-पटककर रोने लगी।

उसके दुश्चिन्ता-ग्रस्त अभागे पिता अत्यन्त अकालमें असमयमें मर रहे हैं। आज उसे भले-बुरेका ज्ञान नहीं रह गया था। इतने आदमियोंके सामने वह क्या कर और कह रही है कुछ भी सोच नहीं सकी, वह लगातार सिर पीट रही थी। लेकिन अतुल संयमी आदमी था। ज्ञानदाके इस व्यवहारसे अन्तःकरणमें वह चाहे कितने ही क्लेशका अनुभव क्यों न कर रहा हो मगर बाहरसे इतनी कौतूहल-पूर्ण आँखोंके सामने वह कठोर हो गया। जोर करके उसने पैरोंको छुड़ाकर एक मीठी फटकार बतलाते हुए कहा—छिः, शान्त हो जाओ, इस तरह रोओ-धोओ मत। मुझे जो कुछ कहना है वह सब मैं कहूँगा ही। इतना कह वह मरणासन्नके

* मूल्यके बदलेमें जो प्राप्य होता है, उससे अतिरिक्त द्रव्य। बंगालमें उसे 'फाऊ' कहते हैं।

बिस्तरके एक किनारे जा बैठा। दुर्गामणि पतिके सिरहाने बैठी हुई थीं। अतुलके मुँहकी ओर देखकर वह चुपचाप रोने लगीं।

पड़ोसी नीलकण्ठ चटर्जी द्वारपर खड़े थे। अतुलको बोलनेमें विलम्ब करते देख बोले—प्रियनाथको अभी थोड़ा बहुत होश है भैया, जो कुछ कहना चाहते हो खूब जोरसे चिल्लाकर कहो। तभी वह तुम्हारी बात समझ पावेगा। कहनेकी जरूरत नहीं कि वृद्धके इस प्रस्तावका दो एक व्यक्तियोंने तत्काल ही अनुमोदन कर दिया।

भीड़को देखकर अतुल एक तो पहले ही क्रुद्ध हो उठा था, दूसरे इन लोगोंके इस नितान्त अशोभन कुतूहलसे मन ही मन आग बबूला होकर बोला—'आप लोग निरर्थक भीड़ लगा कर तो कोई उपकार कर नहीं सकेंगे। जरा-सा बाहर जाकर बैठ जायें, तो मुझे जो कुछ कहना है मैं कह डालूँ। नीलकण्ठ गरम होकर बोल उठे—निरर्थक कैसे जी? पड़ोसीके संकटमें पड़ोसी ही तो आया करता है! तुम्हीं ऐसा कौन-सा सार्थक उपकार करनेके लिए बिस्तरपर जा बैठे हो बाबू? अतुलने खड़े होकर दृढतापूर्ण स्वरमें कहा—मैं कोई उपकार करूँ या न करूँ, मगर आप लोगोंको इस तरह हवा रोककर अपकार न करने दूँगा। आप सभी लोग बाहर जाइए।

अतुलका रुख देखकर नीलकण्ठ दो कदम पीछे हटकर खड़े हो गए और बोले —तुम अभी कलके छोकरे हो, इस तरह बढ़ बढ़कर बातें करते हो! नीलकण्ठकी आड़में खड़ा कोई बोल उठा—एल० ए० बी० ए० पास किया है न! एक दस बारह सालका लड़का झाँक रहा था। किसीकी बातका कोई उत्तर न दे अतुलने उसे ठेल दिया। वह बाहर एक दूसरे आदमीके ऊपर जा गिरा और वह दबे स्वरमें 'बड़े सदरआलाका बेटा' इत्यादि कहता हुआ बाहर चला गया। नीलकण्ठ आदि सज्जनोंने जब देखा कि अतुलकी बातोंको सुन सकनेकी कोई आशा नहीं है, तो वे मन ही मन उसको धमकियाँ देते हुए चले गए।

जब वहाँ बाहरका कोई आदमी नहीं रह गया तब अतुलने मरणासन्न रोगीके मुँहपर झुककर कहा—मौसाजी! प्रियनाथ अपनी लाल आँखें खोले देखते रहे, अतुलने फिर ऊँची आवाजमें कहा—मुझे पहचान रहे हैं आप? प्रियनाथ आँखें मूँद अस्पष्ट स्वरमें बोले—अतुल!

अब कैसे हैं?

प्रियनाथ सिर हिलाकर वैसे ही अस्पष्ट स्वरमें बोले—अच्छा नहीं हूँ।

अतुलकी दोनों आँखें डबडबा आईं। वह बड़ी कठिनाईसे अपने आपको सँभाल कर आँसुओंसे रुँधे हुए स्वरमें बोला—मौसाजी, एक बात आपको बताए दे रहा हूँ। आप निश्चिन्त हो जायँ, ज्ञानदाका भार आजसे मैंने लिया। प्रियनाथ अतुलकी बातको समझ नहीं पाये। इधर उधर देखकर बोले—कहाँ है ज्ञानदा ?

दुर्गामणि पतिके मुँहपर झुककर आँसुओंसे आर्द्र रुदनभरे कण्ठसे बोली—देखोगे एक बार ज्ञानदाको ? प्रियनाथने पहले कोई जवाब नहीं दिया। बादमें कहा—नहीं !

दुर्गामणि रो पड़ीं, बोलीं—अतुलने क्या कहा, सुना न ? वह तुम्हारी ज्ञानदाका भार लेने आया है। अब तुम चिन्ता मत करो। उस अभागीको बहुत कुछ कोस चुके हो, आज एक बार बुलाकर आशीर्वाद दे जाओ।

प्रियनाथ चुपचाप देखते रहे। दुर्गामणिके फिर उन्हीं बातोंका दोहरा जानेके बाद उनकी आँखोंसे आँसुओंकी बूँदें चू पड़ीं। अपने अक्षम हाथको बड़े कष्टसे उठाकर अतुलके मस्तकको छूकर उन्होंने करवट बदली। उनके मुँहसे कोई बात नहीं निकल पाई सही, मगर इस आसन्न-मृत्युकालमें उनके हृदयके एक बहुत बड़े बोझको निस्सन्देह रूपसे मैंने उतार लिया है इसका अनुभव करके अतुल अकस्मात् बालककी तरह उच्छ्वसित होकर रो पड़ा। साक्षी रही दुर्गामणि और भगवान्।

दूसरे दिन शामको अस्सी फीसदी भद्र बंगाली जो करते हैं वही प्रियनाथने भी किया। दफ्तरकी तीस रुपयेकी नौकरीकी माया छोड़कर छब्बीस वर्षकी विधवा तथा तेरह वर्षकी अविवाहिता कन्याका भार तदपेक्षा दुर्भागी किसी सम्बन्धीके सिर-पर डालकर छत्तीस सालकी उम्रमें एक प्रकारसे बिना इलाजके ही अस्सी वर्ष जैसी एक कंकालसार देहको तुलसीकी वेदीके नीचे छोड़कर 'गंगा-नारायण ब्रह्म' नाम-सुनते-सुनते, शायद हिन्दुओंके विष्णु-लोकको सिधार गये।

३

छोटे भाई अनाथनाथको मजबूर होकर आँगनकी दीवारमें एक दरवाजा खोलना पड़ा। बड़े भाईके क्रिया-कर्म हो जानेके पन्द्रह-सोलह दिन बादकी बात है। दफ्तर जाते हुए चौखटपर खड़े खड़े पान चबाते-चबाते अनाथनाथ बोले—अब बिना कहे तो नहीं रहा जाता भाभी। तुम तो सब कुछ समझ-बूझ रही हो। भैयाने मेरे साथ चाहे जितना भी बुरा व्यवहार क्यों न किया हो, पर मैं तुम्हें एक बेला मुट्ठीभर

अन्न देनेसे मुँह नहीं मोड़ूँगा। परन्तु यह बात निश्चित है कि मैं इतनी बड़ी लड़कीके ब्याहका भार नहीं ले सकता। कहनेको मुझे डेढ़ सौ रुपये महीने मिलते हैं। लेकिन बाल-बच्चे भी तो कम नहीं हैं। इसके सिवाय मेरी लड़की भी बारहकी हो गई, देख रही हो न? इसीलिए मैं कहता हूँ कि लड़कीको लेकर इस समय तुम्हें कुछ दिनोंके लिए हरिपाल चला जाना चाहिए।

दुर्गामणि रसोईघरमें एक खम्भेके सहारे किसी तरह खड़ी थीं। डरते-डरते सकोचके साथ बोलीं—भैयाकी हालत तो तुम जानते हो देवर। उनके पास कुछ भी नहीं है। इतनी बड़ी विपत्तिकी बात सुनकर भी एक बार देखनेके लिए नहीं आ सके। और दूसरी बात यह कि वे जब तक आकर ले नहीं जाते, तब तक जाऊँ कैसे?

बड़ी बहू स्वर्णमंजरी देवरके बगलमें दीवारकी आड़में खड़ी थीं। जरा ऊँची आवाजमें बोलीं—भैयाकी हालत अच्छी नहीं है, जानती हूँ। लेकिन तुम्हारे देवर ही कौन ऐसे लाट साहब हैं मझली बहू! और ये कहनेके लिए ही डेढ सौ रुपये पाते हैं। गृहस्थीको जिस तरह चलाती हूँ इसे तो मैं जानती हूँ न! और यह भी कह दूँ कि इतनी बड़ी सयानी लड़की तुम्हारे सिरपर है। ऐसी हालतमें भला किसे पड़ी है कि तुम्हें बुलाकर अपने यहाँ ठौर देगा बतलाओ तो! लेकिन इसीलिए मान-अभिमान करके घरमें बैठे रहनेसे भी तो काम नहीं चलेगा।

दुर्गामणिने धीरे-धीरे कहा—नहीं दीदी, मेरा अब मान-अभिमान क्या!

स्वर्णने बायें हाथसे देवरको पीछे ठेलकर खुद आगे बढकर कहा—मने तुम्हें कोई बुरी बात तो कही नहीं मझली बहू कि इस तरह चबा-चबाकर बातें करती हो तुम! तुम्हें चाहे गुस्सा आये, चाहे बुरा लगे, तुम्हारी इस पर-कटी परीका ब्याह हमारे किये न होगा। लड़की तो एक छोटी बहूके भी है। यदि कोई एक बार भी देख ले, तो मजाल क्या कि आँखें फेरकर चला जाय। सच्ची बात कह देती हूँ मझली बहू। जैसा तुम्हारी लड़कीका चेहरा है वैसे ही हरिपाल जाकर जैसा भी हो किसी किसान-विसानको पकड़कर ब्याह कर दो, बला दूर हो। सुना है कि वहाँके लोग रूप-रंग नहीं देखते, बस लड़की-भर कोई मिल जाय।

दुर्गामणि चुप रही। जिस विषकी ज्वालासे उन्हें एक दिन अलग होना पड़ा था, उन्हीं विषैले दाँतोंको फिर उद्यत देखकर वह डरके मारे काठ हो गई। स्वर्ण-

बोली—जैसा जिसका हो। तुम्हारी तो कोई निन्दा कर नहीं सकेगा। हाँ, हमारी अवश्य करेंगे। तीन इम्तहानोंसे कम पासशुदा दामाद अगर घरमें लाई तो चारों ओर निन्दा होने लगेगी। सभी कहेंगे कि क्या किया! इतनी बड़ी ताईके रहते देवाङ्गना जैसी प्रतिमाको पानीमें डुबो दिया। सच कहती हूँ न देवर, कहो? कहकर स्वर्णने अनाथको कनखियोंसे देखा।

ठीक ही तो कहती हो, कहकर अनाथने महामाननीया भाभीकी मर्यादाकी रक्षा करके दफ्तर जानेका समय हो जानेके बहाने प्रस्थान कर दिया।

स्वर्णने कहा—अपने भाईको घेर-घारकर किसी तरह किसीके गले मढ़ दो। इसमें तुम्हारे लिए लज्जाकी बात नहीं मझली बहू। तुम्हारी कोई निन्दा नहीं कर सकेगा। कुल तीस रुपयेकी ही तो नौकरी थी। उन्हें कौन ऐसा जानता-पहचानता था। इन लोगोंका भाई होनेके कारण ही लोग जानते थे। मैं कहती हूँ कि कलका दिन अच्छा है। कल ही चली जाओ।

दुर्गामणिने मन ही मन अतुलकी बातोंपर विचार किया, मगर जेठानी और देवरके सामने कुछ कहा नहीं। क्योंकि इसी बड़ी जेठानीके नाते अतुलसे उनका नाता था। स्वर्ण अतुलकी माँकी ममेरी बहन थी।

उस दिन ज्ञानदा अतुलके पैरों पड़कर जिस तरह रोई-धोई थी माँने उसे देखा था सही, लेकिन इतनी बड़ी विपत्तिको सिरपर लादे वे यह नहीं सोच सकीं कि ज्ञानदाके ऐसा करनेका कोई विशेष अर्थ है। दुखियाके घर तो एकाग्र होकर शोक-करनेका भी अवसर नहीं। इसीलिए पतिकी मृत्युके अगले दिनसे ही वे इस बातको सोच रही थीं। कमरेमें जाकर देखा कि लड़की चुपचाप जमीनपर बैठी है। धीरे-धीरे उसके पास बैठकर बोलीं—दीदीने जो कुछ कहा, सुना है तूने?

लड़कीने सिर हिलाकर जवाब दिया। लेकिन इसके बाद क्या कहें, यह उनकी समझमें नहीं आया। लेकिन लड़कीने स्वयं इस बातके लिए उन्हें मौका दिया उसने कहा—माँ मायके तो कभी गई नहीं, चलो एक बार हो आयें।

माँ बोली—माँ जिन्दा नहीं है। भैया हैं, उन्होंने कभी कोई खोज-खबर ली नहीं। इतनी बड़ी विपत्तिकी बात सुनकर एक चिट्ठी तक नहीं लिखी। इस हालतमें स्वेच्छासे भला कैसे चलूँ बेटी?

लड़कीने कहा—दुखियोंकी खोज-खबर कोई अपने मनसे नहीं लेता माँ। उन्होंने नहीं ली है—ये लोग भी तो नहीं लेते। ये लोग तो बल्कि जानेके लिए

ही कह रहे हैं। हमारा रूठना-ऊठना पिताके साथ ही चला गया माँ, चलो, वहीं चलकर रहें।

माँकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। लड़कीने उन्हें सस्नेह पोंछकर कहा—मैं जानती हूँ कि सिर्फ मेरे ही लिए तुम कहीं जाना नहीं चाहतीं। नहीं तो ताईकी बात सुनकर तुम एक दिन भी यहाँ नहीं रहतीं। मेरे लिए तुम्हें इतना नहीं सोचना होगा माँ। चलो, कुछ दिनोंके लिए और कहीं चलीं जायँ। यहाँ रहनेसे तो तुम मर जाओगी।

माँसे अब न रहा गया। लड़कीको खींचकर हृदयसे लगा लिया और सिसक-सिसककर रोने लगीं। लड़कीने उन्हें रोका नहीं, शान्त करनेके लिए चेष्टा नहीं की। माँकी छातीपर मुँह रखकर चुपचाप बैठी रही। बहुत देरके बाद दुर्गामणि खुद ही बहुत कुछ शान्त होकर आँखें पोंछकर बोलीं—मैं तुझसे सच कहती हूँ ज्ञानदा, तू अगर न होती तो मुझे जहा सूझता वहीं मैं उसी दिन चली जाती, जिस दिन कि वे यहाँसे उठ गये। केवल तेरे ही कारण नहीं जा सकी।

यह मैं जानती हूँ माँ।

अच्छा, एक बात तू मुझे सच-सच बतला दे बेटी, उस दिन अतुलने वह बात क्यों कही थी? देख ज्ञानदा, अब तू इस तरह मुँह बन्द किये न रह बेटी, लजानेका समय यह नहीं है। मैं जानती हू कि वह ऐसा लड़का नहीं है कि झूठ बोले। तब फिर ऐसा कौन-सा कारण है कि उनकी मृत्युके समय उसने ऐसा भरोसा दिया और तू भी क्यों इस तरह उसके पैरोंपर पड़कर रोई?

ज्ञानदाने माँकी छातीपर मुँह रखे हुए अस्पष्ट स्वरमें कहा, यह मैं नहीं जानती।

दुर्गामणिने जोरसे लड़कीका सिर उठाकर एक बार देखनेकी चेष्टा की, मगर वह उसी तरह चिपटी रही। व्यर्थ-मनोरथ होकर उन्होंने फिर कहा—तेरे पिताके जीवित रहते मुझे कभी कुछ नहीं महसूस हुआ सही, मगर उस दिनसे सोचते-सोचते अब मानो बहुत-सी बातोंको समझ पाती हूँ। अतुलके मुँहसे निकली कितनी ही छोटी-मोटी बातें मुझे याद आ रही हैं। यह कहते-कहते उन्होंने अकस्मात् व्यग्र होकर लड़कीके दोनों हाथोंको अपने हाथोंमें लेकर पूछा—सच बता, मैं जो कुछ सोच रही हूँ वह झूठा तो नहीं है? मैंने इन कितने ही दिनोंमें केवल स्वप्न ही तो नहीं देखा है?

ज्ञानदा उसी तरह मुँह ढँके धीमे स्वरमें बोली—क्या जानूँ माँ, उनका धर्म उनके साथ है।

दुर्गामणिने आनन्दके आवेगमें रोते हुए कहा—मुझे संशयमें डाले रखकर और व्याकुल न कर बेटी। एक बार मुँह खोलकर बोल, मैं तेरे पिताके नामसे एक बार दिल खोलकर रोऊँ। मेरे इस रोनेको आज वह सुन पावेंगे।

लड़कीने बहुत धीरे-धीरे कहा—रोओ न माँ, मैंने तो तुम्हें रोनेसे मना नहीं किया। पितासे कहनेके लिए कहा था—उन्होंने खुद ही तो कहा है। अब उनका धर्म उनके साथ है।

दुर्गामणि अब रोके नहीं रुक सकीं। जोर करके लड़कीके आरक्त अश्रुसिक्त मुँहको हाथोंमें लेकर उसका अनेकों बार चुम्बन करके छातीसे सटाकर चुपचाप बहुत देर तक रोती रहीं। बादमें आँखें पोंछकर कहने लगीं—तू ठीक कहती है बेटी, ठीक कहती है। मेरा अतुल दीर्घजीवी हो, उसका धर्म अवश्य उसके साथ है। परन्तु यह बात हम लोगोंमेंसे किसीके मनमें एक बार भी नहीं उदित हुई बेटी, कि तूने स्वयं ही उसे मरनेसे बचाया है। उस वर्ष लोगोंने कहा कि बेरी बेरी रोगका प्रकोप है। वह चाहे कोई भी रोग क्यों न रहा हो, पहले माके और फिर अतुलके पैर फूल गए, बादमें फटकर बहुत बड़े घाव हो गये। अतुलकी तो बचने तककी आशा नहीं थी। उस समय डरके मारे उनके घरकी ओर कोई पैर तक नहीं बढ़ाता था। नन्हीं-सी बच्ची होकर भी तू रात-दिन जमराजसे लड़ती रही और अन्तमें उसे मौतके मुँहसे लौटा लाई। उस धर्मका पालन किये बगैर वह कैसे रह सकता है? सावित्रीकी तरह यमके चंगुलसे जिसे तू छुड़ा लाई थी, उसे क्या भगवान किसी औरके हाथोंमें सौंप सकते हैं! यह धर्म अगर बाकी नहीं है तो फिर चन्द्र, सूर्यका उदय क्यों अब भी होता है?

दुर्गामणि कुछ देर तक मौन रहकर फिर गद्‌गद् होकर कहने लगीं—अब मुझे जहाँ जानेके लिए कहेगी वहीं जाऊँगी। लेकिन तू तो अब उसकी राय लिए बगैर जा नहीं सकती बेटी। यही ठीक है! यही ठीक है। इसीलिए घर लौटकर ही मेरे भैया सवेरा होते न होते चूड़ियाँ देनेके बहाने मेरी बेटीको देखने आये थे। अजी, एक वर्ष और जीवित रहकर तुम अपनी आँखोंसे क्यों नहीं देख गए! इतना कहकर दुर्गामणिने अपने उमड़ते हुए आँसुओंको आँचलसे रोका।

सुनती हो मझली बहू?

दुर्गामणिने उतावलीमें लड़कीको छातीसे ठेलकर हटा दिया और आँखें पोंछकर उत्तर दिया, क्या है दीदी?

मुलाकात करनेके लिए भी न आऊँ? हरिपाल अर्थात् मैलेरियाका डिपो। इस क्वाँरके मंगल-प्रभातमें यह सुबुद्धि तुम्हें किसने दी मझली मौसी, भला बतलाओ तो? वाह! बाँधबूँधकर बिल्कुल तैयार हो गई हो देखता हूँ? कह कर उसने हँसते-हँसते कमरेके अन्दर नजर डाली तो उसे एक कोनेसे दो आँसुओंसे भरी लाल आँखोंका टेलीग्राफ पाकर स्तब्ध रह जाना पड़ा।

छोटी बहूने प्रश्न किया—तुम्हें कैसे खबर मिली अतुल!

मुझे? वाह! यह कर अतुलने इसकी कैफियत दे डाली।

अकस्मात् आँगनकी किसी अनिर्दिष्ट जगहसे स्वर्णमंजरीका कंठ-स्वर शब्दभेदी बाणके समान सभीके कानोंमें आकर बिंध गया। अर्थात् उन्होंने गंगा नहाकर शान्त पवित्र होकर मकानमें पैर रखते ही नौकरानीके मुँहसे कोयलेके चूल्हेकी बात सुन ली थी। अतएव वे मझली देवरानीके हाल ही विधवा होनेके यथार्थ कारणका मुक्तकंठसे वर्णन करती आ रही थीं—चारों चरण पूरे न होनेसे क्या भगवान कभी किसीका सर्वनाश करते हैं? नहीं, हर्गिज नहीं। यह तो उनका धर्मका संसार है—यहाँ अधर्म कदापि नहीं होनेका। सीधे घरकी चौखटके अन्दर पैर रखकर बोली—मनकी बात तो तुम्हारी यही है मझली बहू कि छोटे मालिक बिना खाये ही भूखे दफ्तर जायें और शामको पित्त बढ़ जानेके मारे बुखार लेकर घर लौटें। उसके बाद जैसा अपना हुआ है वैसा ही सर्वनाश एक और प्राणीका हो!

दुर्गामणि अन्दर ही अन्दर काँप उठीं और बोलीं—जिस स्त्रीका भाग्य फूट गया है दीदी, वह अपने बहुत बड़े शत्रुके लिए भी इस विपत्तिकी कामना नहीं कर सकती! लेकिन मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है कि उठते-बैठते मुझे इतनी जली-कटी सुना रही हो?

स्वर्णमंजरीने हाथ मटकाकर और मुँह बिचकाकर कहा—दुधमुँही बच्ची हो न? मुझे बतलाना होगा कि क्या किया है तुमने? साढ़े सात बज रहे हैं, टाइमपर रसोई कौन बनावेगा?

इतनी देरतक अतुल अवाक् होकर सुन रहा था। अपनी बड़ी मौसीको वह भलीभाँति जानता था, इसीलिए उनसे कदाचित् ही बातचीत किया करता था। लेकिन अब सहा नहीं गया और वह खुद ही उनकी बातोंका जवाब दे बैठा, बोला—सच्ची बात कही जाय तो तुम्हीं नाराज होगी मौसीजी, अगर भाग्य

बिल्कुल ही न फूट जाय, तो कोई तुम्हारे यहाँ पेट पालने नहीं आवेगा। इस बातको तुम भी जानती हो और मुहल्लेके चार आदमी भी जानते हैं। लेकिन आज जानेके दिन इन अभागिनोंको जरा माफ कर देनेसे तुम्हारा महाभारत अशुद्ध न हो जाता मौसीजी।

एकाएक अतुलकी तीखी बातें सुनकर देवरानी और जेठानीके अचरजकी सीमा न रही। मिनट-भरके लिए दोनोंमेंसे किसीके मुँहसे कोई बात न निकली। इसके बाद स्वर्णने कहा—कलकत्तेसे क्या तू हम लोगोंसे झगड़ा करनेके लिए ही दौड़ा आया है?

छोटी बहू बोली—झगड़ा करने क्यों आयगा दीदी? उसकी मँझली मौसीको हम लोग हरिपालकी गंगा-यात्राके लिए भेज रही हैं, इसीलिए यह अन्तिम भेंट करने आया है।

ओह, ऐसी बात है?

छोटी बहूने कहा, हाँ दीदी, यही बात है। इसीलिए तो तबसे सोच रही हूँ कि घरके हम लोगोंतकको बात मालूम न हुई और तुम्हारी बहिनके सुपुत्रने कलकत्तेमें बैठे-बैठे कैसे जान लिया! तब तो लोग जो कहते हैं, देखती हूँ, वह झूठ नहीं है।

स्वर्णमंजरीने गुस्सेमें होश खोकर चीख-चिलाकर एक हंगामा खड़ा कर दिया। कहने लगी, अच्छी बात तो है बच्चा, इनके लिए अगर इतनी पीड़ा पैदा हुई है तो अपनी मौसीको जो अब सास हो गई हैं गंगा-यात्रा क्यों कराओगे? अपने घर क्यों नहीं टिका लेते? गाँवभरके लोग वाह वाह करेंगे।

उनके जहरकी ज्वालासे अतुलका दिमाग खराब हो गया। वह भी बोल बैठा—अच्छी बात है मौसीजी, तुम लोग अपनी हो। बात अगर दो दिन पहले ही जान गई हो, अच्छा ही है। मेरे घर आना चाहें तो मैं इन्हें सिर-माथे ले चलनेके लिए तैयार हूँ। इसके लिए तुम्हारे गाँवके लोग वाही-वाही देंगे या छिः छिः करेंगे इसकी चिन्ता मुझे नहीं है।

इस बातको मुँहसे निकालकर जिस तरह अतुल खुद लज्जासे सिकुड़ गया, उसके गुरुजन भी उसी तरह असह्य विस्मयसे स्तम्भित हो रहे।

यह न जाने कहाँका बवंडर उठ खड़ा हुआ जिसने लज्जा-शर्म और पर्दे सब कुछ पलकोंमें तोड़-फोड़कर सभीको एक खुले मैदानमें लाकर खड़ा कर दिया। किसीके सामने किसीको कुछ भी छिपाने-ढाकनेके लिए जगह नहीं रह गई।

अतुल चुपचाप बाहर चला गया। यदु बाग्दीने बैल-गाड़ी लाकर कहा— माँ, चलनेका समय हो गया है, चीज-वस्तु जो कुछ देना चाहती हो दे दो। अभीसे न निकलनेसे स्टेशनपर गाड़ी नहीं मिलेगी। कहकर घरमें घुसकर वह हुक्मके-मुताबिक सामनेके टीनके सन्दूकपर विस्तरको रख बाहर निकल आया। बड़ी और छोटी बहूने तेजीसे पैर बढ़ाते हुए वहाँसे प्रस्थान किया। दुर्गामणि भी दुर्गा-दुर्गा कह घरमें ताला लगाकर चुपचाप लड़कीका हाथ पकड़े गाड़ीपर बैठ गईं। लड़की भी मूर्छित-सी होकर आँखें मूदे माँकी गोदमें लुढक पड़ी।

४

ग्यारह वर्षके बाद दुर्गामणि हरिपालमें पिताके घर जा पहुँचीं। उस समय शरद् ऋतुकी सध्या एक ऐसा अस्वास्थ्यकर धुँधला धुँआ लिए सारे गाँवके ऊपर मँडरा रही थी कि उसके अन्दर प्रवेश करते ही दुर्गामणिका कलेजा काँप उठा। घरमें माँ-बाप नहीं रहे—बड़े भाई हैं। शम्भु चटर्जीको उस दिन शामको अतरा ज्वर आनेकी बारी थी। अतएव सूर्यास्तके बाद ही तैयार होकर उन्होंने विस्तर पकड़ लिया था। खबर पाकर बहुत पुरानी दुलाईसे सिर तथा दोनों कानोंको ढक कर खड़ाऊँ चटकाते हुए वे बाहर निकले।

कौन है? दुर्गा, तू आई है क्या? अच्छा आ।

रोते हुए आगे बढ़कर दुर्गाने बड़े भाईके चरणोंमें प्रणाम किया।

ज्ञानदाके प्रणाम करने पर बोले—यह तेरी बेटी है क्या? इसका ब्याह कहाँ किया?

दुर्गाने कुंठित स्वरमें कहा—ब्याह तो इसका अभी तक नहीं कर सकी हूँ भैया। लेकिन जल्दी ही कहीं न कहीं—

ऐं ब्याह नहीं किया? यह तो खूब सयानी हो गई है दुर्गा!

बहुत दिनोंके बाद बहिनसे मिलनेके कारण उनका किंचित् करुण-कण्ठ-स्वर एक क्षणमें जलकर सूख गया। वे बोले— वही तो यहाँके बदजात लोग—यदि जान गये तो—मैं कहता हूँ कि इसे रसोई या पूजाघरमें जाने देनेकी जरूरत नहीं। यहाँके समाजको तो तू जानती है, खास तौरसे हरिपालके समाजको। इस तरहके पाजी आदमी सारे संसारमें नहीं हैं। अच्छा आ, घरके भीतर आ। इतनी बड़ी लड़की—इसे यदि इसके चाचाके यहाँ छोड़ आई होती, तो चार दिन आराम़से रह सकती। यहाँ रही तो......समझी नहीं दुर्गा—तो आ, अब हाथ

पैर धो ले। अजी, क्या कर रही हो? यह कह कर खड़ाऊँ खटखट करते हुए वे अन्दर चले गये। दुर्गा और उनकी लड़कीने उनके पीछे-पीछे चल कर किस तरहसे घरमें प्रवेश किया इसे केवल भगवानने ही देखा।

शम्भुका यह दूसरा विवाह था। पहली स्त्रीको दुर्गाने देखा था मगर इन्हें नहीं देखा था। ये जितनी काली थीं, उतनी ही दुबली-पतली और लम्बी भी। जूड़ी बुखारके कारण शरीरका रंग जली लकड़ी-सा हो गया था। तीन दिनका गोबर आँगनके बीचमें जमा किया हुआ था। उसे अभी-अभी निबटाकर हाथ पैर धो चिराग जलानेकी तैयारी कर रही थीं। पतिके बुलाने पर सामने आ मामलेको देख स्थिर होकर खड़ी हो गईं। शम्भुको ज्वर चढा आरहा था। आगन्तुकोंकी अभ्यर्थनाके लिए स्त्रीसे उनका परिचय करा कर वह कमरेके अन्दर चले गए। स्त्रीका नाम है भामिनी। वह मेदिनीपुर जिलेकी लड़की हैं। इनकी बातें जरा टेढी मेढ़ी होती हैं। उन्होंने हँसकर ऊपर और नीचेके प्राय सारे मसूढे खोल कर ननदको हाथ पकड़ रसोईघरके चबूतर पर ले जाकर एक पीढ़ेपर बैठाया। उनकी हँसी और बातचीत करनेका ढंग देखकर दुर्गामणिका कलेजा तक सूख गया। आनेके समय दुर्गाने एक हाँड़ी रसगुल्ला मँगा लिया था। उसे उतार कर रखते-रखते न जाने कहाँसे लड़के और लड़कियोंका एक झुण्ड दौड़ता हुआ आ पहुँचा और उसने दुर्गामणिको घेर लिया। चिल्लपों और रेल-ठेलसे मानो वहाँ एक बाजार लग गया। बच्चोंकी माँने किसीको आधा, किसीको चौथाई और दोको जरा जरा-सा टुकड़ा देकर धता बता दिया। इसके बाद रसगुल्लेसे भरी हाँड़ीको झमसे उठाकर सोनेके कमरेमें ले जाकर छींकेपर टाँग दिया। बच्चोंने जो कुछ पाया था उसे आनन-फानन निगल कर हाथोंमें लगे सीरेको चाटते-चाटते अपनी राह ली।

दुर्गा यहाँकी रीति-नीति कुछ-कुछ जानती थीं, क्योंकि वह यहींकी लड़की थीं। लेकिन ज्ञानदा आठ-दस सालके लड़कों तकको दिगम्बर देखकर सिर नीचा करके रह गई। लड़कियोंकी भी प्रायः यही हालत थी। थोड़ा बहुत जो कुछ अन्तर था वह नितान्त ही साधारण। उसका अपना गाँव भी शहर नहीं था सही। लेकिन वहाँ रास्ते घाट हैं। आम, कटहल और बाँसबाड़ियोंने ऐसा अन्ध-कार नहीं कर रक्खा है। गोबर और पटसनकी सड़ाँद चारों ओरसे आकर साँस लेनेकी क्रिया तकको भाराक्रांत और व्याकुल नहीं कर देती है। अभी अँधेरा नहीं हुआ था। एक सियारके आँगनमें आ खड़े होते ही बड़ा लड़का उसे खदेढ़नेके लिए

दौड़ पड़ा। चारों ओरसे अनगिनित झिल्लियोंकी विकट आवाज शुरू हो गई। दीवारसे सटी हुई सूखी डालपर अचानक पहले कभी न सुने हुए एक तरहके विकट शब्दको सुनकर ज्ञानदाने चुपके चुपके पूछा—माँ, यह क्या बोल रहा है? मामीने सुनकर जवाब दिया यह तक्षक है।

ज्ञानदाने काँप कर कहा—तक्षक? तक्षक साँप?

मामीने कहा, हाँ बिटिया, वही। वही जिसने कहते हैं किसी राजाको काटा था। डाली-डालीपर मरे पड़े हैं।

जवाब सुनकर ज्ञानदाने एक बार माँका मुँह देखा। इसके पहले ही रोदनसे उसकी छाती भर उठी थी।

अब वह माताकी गोदमें लेटकर फफक-फफक कर रोते हुए बोली—माँ, यहाँसे चलो। यहाँ मै एक घड़ी भी जिन्दा नहीं रहूँगी।

मामीको बड़ा अचरज हुआ। बोलीं—डरनेकी कौन-सी बात है। यह तो देवता हैं। कभी किसीका अपकार नहीं करते हैं। इसके सिवा साँप वगैरहके काटनेसे मरते ही कितने आदमी हैं बेटी! बल्कि जो कुछ डर है वह इसी मलेरियाका है। एक बार जिसे पकड़ लेता है उसे निस्सार किये बिना नहीं छोड़ता। इस साल बीसेक दिन हुए तुम्हारे मामाको पकड़ा है। इतने ही दिनोंमें उन्हे जीर्ण-शीर्ण कर डाला है। और कुछ ही दिनोके बाद इस गाँवमें कौन किसके मुँहमे पानी डालेगा, इसका भी कोई ठिकाना नहीं है बिटिया।

ज्ञानदा मन ही मन अतुलकी अंतिम बातोंका मिलान करके चुपचाप पड़ी रही। उस रातको वह एक बार भी नहीं सो सकी। माताकी छातीके समीप मुँह रख कर वह रह-रह कर चौंकने लगी। इसी तरह सवेरा हुआ। नई जगहमें चेहरे पर नई रोशनी पड़नेसे उसे तनिक भी खुशी नहीं हुई। बल्कि सारी आब-हवा और रोशनीने मानो कलसे भी अधिक दबा रखा।

इतनी बड़ी उम्रकी लड़कीको देखकर टोलेके लोगोंके अचरजका ठिकाना नहीं रहा। हमारे बंगालमें अविवाहिता लड़कीकी अवस्था ठीक ठीक बतलानेकी रीति नहीं है। सभी जानते हैं कि माता-पिताको दो एक वर्ष घटाकर लड़कीकी उम्र बतलानी पड़ती है। अतएव दुर्गाने जब कहा कि लड़कीकी उम्र तेरह है, तो मामीने पन्द्रह समझा। इसके अलावा एकमात्र सतान होनेके कारण स्वय भूखे रहकर लड़कीको खिलाया, पिलाया, पहिनाया था, सुडौल स्वास्थ्य इस समय और भी काल

बन गया, ज्ञानदाकी यथार्थ उम्रके खिलाफ बढ़कर गवाही देने लगा दो दिन भी न बीत पाये थे कि बातचीतके सिलसिलेमें शम्भुने बहनसे कहा—लड़कीके कारण तो टोलेमें मुँह दिखाना कठिन हो गया है। एक बहुत अच्छा वर है। उसके साथ ब्याह करेगी लड़कीका ?

दुर्गा बोली, जमाई ठीक हो गया है। अब और कहीं सबन्ध नहीं हो सकता। शम्भुने कहा—तब तो कोई बात ही नहीं। लेकिन यह बतलाये देता हूँ कि ऐसा अच्छा वर बड़े भाग्यसे मिलता है। बीस पचीस बीघे ब्रह्मोत्तर भूमि है, तालाब है, बगीचा है, धानका बखार है, साथ ही वह लिखा पढ़ा भी—

बीचहीमें बात काटकर दुर्गाने कहा—नहीं भैया, अब दूसरी जगह नहीं हो सकता। इस वर्षके बाद वहीं इसका ब्याह करना पड़ेगा।

शम्भुने कहा—मेरे विचारसे तो इसी अगहनमें कन्यादान कर देना जरूरी हो गया है। दुर्गाने इसका प्रतिवाद करना बेकार समझा। और काम है, कहकर उठ गई। धीरे-धीरे पता चला कि वह उत्तम वर शम्भुके बड़े साले हैं। स्त्रीकी मृत्युके कारण करीब छह महीनेसे अकेले पड़े हुए हैं। अब अधिक दिनों तक उनका अकेले रहना कोई भी उचित नहीं समझता। खास तौरसे घरमें कई बच्चे-कच्चे होनेके कारण एक सयानी लड़की उनके लिए नितान्त आवश्यक हो गई है।

शायद इसी लिए दुर्गाके बारम्बार अस्वीकार करते रहने पर भी ये उत्तम वर एक दिन एकाएक प्रकट हो गये। सामने ही ज्ञानदा उन्हें दिखाई पड़ गई। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि लड़कीको पसन्द करके वह लौट गये। थोड़े ही समयमें बहिनके प्रति शम्भुनाथके स्नेहयुक्त अनुरोधने घोर अत्याचारका रूप धारण कर लिया। एक दिन साफ ही कह दिया कि प्रियनाथकी अनुपस्थितिमें अब वही भानजीके वास्तविक अभिभावक हैं। अतएव जरूरत हुई तो इसी अगहनमें जबर-दस्ती उसका ब्याह कर देंगे।

बड़े भाईसे वादानुवाद करके दुर्गा कमरेके भीतर चली गई और वहाँ लड़कीके चेहरेकी ओर देखते ही वह समझ गई कि उसने सब कुछ सुन लिया है। उसकी दोनों आँखें सूज कर लाल हो गई हैं। उसे छातीसे लगाकर बोलीं—मेरे जिन्दा रहते डर किस बातका है बेटी ? जबानी अभय दिया सही, मगर भयसे उनका कलेजा तक सूख गया था। इन इलाकोंमें इस तरह जबरदस्ती ब्याह कर देना एक आम बात है, इस बातको वह जानती थी। माँकी छातीमें मुख छिपाकर लड़की

फफक-फफक कर रोने लगी। माँने उसके मस्तक और सीनेपर हाथ रखकर देखा कि बुखारके मारे उसका शरीर जला जा रहा है। आँखें पोंछकर पूछा—बुखार कब हो गया बेटी?

कल रातसे।

मुझे बताया क्यों नहीं? आजकल भीषण मलेरियाका मौसम है। लड़की चुप रही, जवाब नहीं दिया।

बड़े भाईकी स्त्रीसे दुर्गाने अब तक किसी प्रकारकी घनिष्ठता बढ़ानेकी चेष्टा नहीं की थी। न केवल उनके विकट चेहरे और उससे भी विकट हँसीको देखकर उनके शरीरमें आग लग जाया करती थी बल्कि उसकी अत्यन्त कर्कश आवाजको भी वह सहन न कर पाती थीं। देहातकी औरतें स्वभावतः जरा ऊँची आवाजमें बोलती हैं। मगर भाभीकी बातें जरा दूरसे सुनने पर झगड़ा करने जैसी मालूम होती थीं। इसपर वह जैसी वाचाल थी वैसी ही कलहकी कलामें भी प्रवीण। लेकिन उसके एक गुणका पता दुर्गाको चल गया था कि वह जबरदस्ती झगड़ा नहीं मोल लेना चाहती थी। उसके लिए रास्ता छोड़ देनेसे वह किसीको कुछ नहीं कहती थी। बाल बच्चे और घर-गृहस्थीमें ही वह सदा लगी रहती थी। दूसरोंकी बातोंकी ओर ध्यान ही नहीं देती थी।

पहिले पहल आते ही दुर्गा एक दिन उसकी रसोईमें मदद करने गई थीं। तब उसने स्पष्ट कह दिया था—ननद, तुम दो दिनोंके लिए आई हो। तुम्हें काम करनेकी जरूरत नहीं। रसोईघर और भण्डार मैं किसीको नहीं सौंप सकती। तभीसे इस मामलेमें दुर्गा एक प्रकारसे निश्चिन्त हो गई थी।

आज देर करते देख भौजाईने दरवाजेके पास आकर स्वाभाविक ऊँची आवाजमें प्रश्न किया—आज क्या खाना-पीना न होगा ननदजी? मैं बैठी रहूँ रसोई ताकती?

सिर उठाकर दुर्गाने कहा—लड़कीको बड़े जोरका बुखार हो आया है भाभी, तुम लोग खाओ, हम आज नहीं खायेंगी। भाभीने कहा—लड़कीको बुखार है, तो तुम्हें क्या हुआ है? बुखार किसे नहीं होता? लो, उठो। दुर्गाने कातर स्वरमें कहा—भाभी, मुझे खानेके लिए मत कहो। लड़कीको छोड़कर मैं मुहमें अन्न न डाल सकूँगी। तुम लोगोंकी सारी बातें संसारसे परे होती हैं, यह कहकर वह चली गई। रसोईघरसे फिर बोली—बुखार हुआ है तो वैद्य बुलाकर काढ़ा बनवा दो। मलेरिया बुखारमें कौन नहीं खाता? हमारे यहाँ तो यह सब अन्न-

पानी छोड़नेका रिवाज नहीं है भाई! यह कहकर वह अपने काममें लग गई। दिन ढल जानेके बाद एक कटोरा काढा लाकर उसने कहा—अरी ग्येनी, उठ काढा पी। भातमें पानी डाल रखा है, चल खा ले।

ज्ञानदा मामीसे बहुत डरती थी। बिना कुछ बोले ही उठकर उसने थोड़ा-सा कड़ुआ काढा पीकर कय कर दी और फिर लेट रही। दुर्गामणि कमरेमें नहीं थीं। कयकी आवाज सुनकर दौड़ती हुई आईं और मामला देखकर चुप खड़ी रह गईं। मामी गुस्सेसे ओसारेम चली गईं और गाँवके लोगोंको सुनाकर कहने लगीं—इस तरह शौकीन लड़कियोंको लेकर हम जसे गरीव-दुखियोंके घरमें आनेकी क्या जरूरत थी?

उस दिनसे ज्ञानदाकी बीमारी दिनों दिन बढती ही गई। उसकी भामिनी मामीने पहिले ही दिन कह दिया था कि बिटिया, गँवई-गाँवमें साँपके काटनेसे कितनेसे लोग मरते हैं! जो मरते हैं वे इसी मलेरियासे मरते हैं। जिसे एक बार पकड़ लिया कि फिर छुटकारा नहीं मिलता। उनकी इस बातकी सचाईको साबित होते अधिक देर नहीं लगी। कुछ ही दिनोंमें मलेरियाने ज्ञानदाको चारपाईसे लगा दिया। उस दिन कार्त्तिककी सक्रांति थी। एक तो गृहस्थीका काम-काज छोड़कर इन फिजूलके कामोंके लिए उन्हें फुरसत नहीं मिलती, तिसपर पराएकी लड़कीकी इस तरहकी अयाचित सेवा जैसे उनकी स्वभाव-विरुद्ध बातको देखकर दुर्गाको अद्भुत-सा लगा और बड़े भाईके प्रस्तावित उस ब्याहके मामलेकी बात याद आते ही वह आशंकासे काँप उठीं। भामिनीकी यह सेवा उसीके लिए ही है, इसमें उन्हें लेशमात्र सन्देह नहीं रह गया। क्योंकि दुर्गाने पहिलेहीसे इस बातको स्वतःसिद्धकी तरह मान लिया था कि भाभीने ही अपने बड़े भाईके साथ ज्ञानदाका ब्याह करानेके लिए पतिको लगाया है और भीतर ही भीतर उन्हें उत्तेजित किया है! भाभीने कण्ठ-स्वरको और धीमा करके कहा—तारकेश्वरमें एक पासशुदा डाक्टर हैं, उन्हें बुलानेके लिए तुम्हारे भैयाको भेजा है ननदजी। ज्वर रोज बढता ही जा रहा है—यह तो अच्छी बात नहीं है। दुर्गाने अव्यक्त स्वरमें जो कुछ कहा वह सुनाई नहीं पड़ा, क्योंकि इस खुशखबरीको सुनकर भी वह हृदयसे प्रसन्न नहीं हो सकीं।

भाभी गृहस्थीके काम-काजमें लग गई। ज्ञानदाने तकियाके नीचेसे एक पत्र निकालकर कहा—उन्होंने जवाब दिया है।

ला तो देखूँ। यह कहकर माँने चिट्ठीको मानों छीन-सा लिया। लेकिन क्षण-बाद असह्य आग्रहका दमन करके वह चिट्ठी दोनों हाथोंकी मुट्ठीके बीच दबाए चुपचाप बैठी रहीं। एक बार मनमें आया कि खोलकर पढ़ें। फिर सोचा कि यह उचित नहीं होगा। लड़कीने हाथोंमें दे दिया है मगर माँ होकर वह पढ़ें कैसे? मन्द स्वरमें पूछा—क्या लिखा है अतुलने?

इसी बीच ज्ञानदाने करवट बदल ली थी। संक्षेपमें कहा—यहाँ आना उचित नहीं था—यही सब। पत्रकी इन दो बातोंको सुनते ही माँकी आँखें छलछला उठीं। उन्होंने मन ही मन दोहराया 'आना उचित नहीं था यही सब' अतुलके चेहरेको याद कर, उसे अशेष आशीर्वाद देती हुई दुर्गामणिने मातृस्नेहसे विगलित होकर मन ही मन कहा—न जाने कितना रुठना, कितनी मर्मान्तिक व्यथा भैयाकी इन दोनों बातोंके भीतर छिपी हुई है। यहाँ आकर ज्ञानदाको बुखार हो गया है—इसीसे तो गुस्सेमें आकर भैयाने कहा था—इनके गंगा-लाभको देखनेके लिए कलकत्तेसे आया हूँ। सच ही तो लिखा है। मैं खुद जो भी करूँ और जहाँ भी जाऊँ, यह दूसरी बात है। लेकिन लड़कीको लेकर आना मेरे लिए कदापि उचित नहीं था। कितना भी कष्ट क्यों न होता, सब कुछ सहकर हमें वहीं पड़ा रहना चाहिए था।

कागजको अपूर्व ममताके साथ मुट्ठीमें हिलाते-डुलाते हुए आज न जाने कितनी बातें उन्हें याद आ रहीं थीं। पतिकी मृत्यु-शय्यापर अतुलकी प्रतिज्ञा, उन दोनों चूड़ियोंको देनेके लिए महाप्रसादका बहाना करके आना, विशेष करके आनेके दिन मौसीसे उसका झगड़ना। इस बातको उसकी माँने सुना था, पास-पड़ोसके लोगोंने सुना था कि वह कलकत्तेसे क्यों दौड़ा आया था। आनन्दसे गर्वसे दुर्गामणिका मातृवक्ष परिपूर्ण हो उठा। मन ही मन बोलीं—काली लड़की! अब मेरी लड़कीका गौरव सभी देख लें! अरे, कोयल काली होती है, भौंरा भी काला ही होता है! उन्होंने पुकारा—ज्ञानदा, इस समय तबीयत कैसी है बेटी?

अच्छी है माँ।

क्यों री, मेरे बारेमें अतुलने क्या लिखा है?

पढ़ न लो माँ!

कौतूहलको अब वह रोक न सकीं। खिड़कीके पास कागजको खोल कर वह खड़ी हुईं। इतने बड़े कागजमें केवल दो पंक्तियाँ देखकर पहले उन्हें लगा कि

लड़कीने शायद कोई दूसरा कागज दे दिया है। लेकिन अगले क्षण 'श्रीचरणेषु' पढ़कर मन ही मन हँसकर बोलीं—इसीलिए पढ़नेको दिया है, यह तो मेरी ही चिट्ठी है। लिखा है—तभी कहा था यह जगह मलेरियाकी डिपो है! ज्ञानदाके ज्वरकी खबर पाकर दुःख हुआ—आशा है शीघ्र ही अच्छी हो जायगी। हम मजेमें हैं, हमारा प्रणाम लें। इति।

बात पूछनेमें दुर्गामणिकी जबान रुकी। परन्तु माँका हृदय ठहरा—बिना पूछे भी उनसे रहा न गया। पास बैठकर लड़कीके रूखे बालोंको उँगलियोंसे इधर उधर करते हुए धीरे-धीरे कहा—हाँ बेटी, तुम्हारी चिट्ठीमें अतुलने शायद क्रोधका भाव प्रकट किया है? ज्ञानदाने विस्मयसे मुँह फेर कर कहा—मेरी चिट्ठी और कहाँ है, माँ? तुम्हीको तो चिट्ठी लिखी है। दुर्गाने जरा हँसकर कहा—मैं देखना नहीं चाहती, सुनकर ही मुझे खुशी होगी। गुस्सा हुआ है, यह तो मैं समझ ही रही हूँ।

नहीं माँ, मुझे अलगसे कोई चिट्ठी उन्होंने नहीं लिखी है। जो कुछ लिखा है, तुम्हारे सामने है। इतना कह उसने फिर करवट बदल ली।

कुल दो पंक्तियाँ? और कोई बात नहीं लिखी है? कहकर दुर्गामणि सन्नाटेमें आ गई। उनकी जो उँगलियाँ अब तक नाना प्रकारकी विचित्र गतिसे विचरण कर रहीं थीं वे भी मानो हड्डीकी भाँति कड़ी हो गईं। बहुत देर तक इसी तरह चुपचाप बैठी रह कर वह उठ गई।

फिर दिन व्यतीत होने लगे।

५

अगहनके प्रारम्भकी सर्दीकी हवा बह रही थी। दुर्गामणिके बचपनकी एक सहेली मायके आई हुई थी। आज दोपहरके वक्त लड़कीको कुछ अच्छी देख दुर्गामणि उससे मुलाकात करनेके लिए निकलीं थीं। रास्तेमें डाकिएको देख पुकार कर बोलीं—क्यों दासू, मेरे नामकी चिट्ठियाँ क्यों नहीं मिलती हैं?

दासूने हँसकर कहा—चिट्ठी न आनेसे आपको कैसे मिलेंगी बहिनजी?

दुर्गाने सन्देहभरे स्वरमें कहा—मेरे या मेरी लड़की ज्ञानदा देवी किसीके भी नामसे चिट्ठियाँ नहीं आतीं?

दासूने कहा—आतीं तो मैं दे जाता बहनजी।

दुर्गाने कहा—नहीं दासू, अपने डाकके थैलेको जरा अच्छी तरहसे

देख लो—आ भी सकती हैं। तीन-तीन चिट्ठियोंका जवाब नहीं देगा—मेरा अतुल ऐसा लड़का नहीं है।

दासूने बेकारकी मेहनत नहीं करके कहा—बहनजी, नहीं है—आते ही तुम्हें मिल जायगी। कह कर दासू चलनेहीको था कि इतनेमें उसे टोक कर दुर्गामणिने कहा—अच्छा दासू, यह भी तो हो सकता है कि तुम्हारे डाकखानेमें ही पड़ी हो—पोस्टमास्टर हमारा नाम नहीं जानता। कहीं मेजके नीचे कोने-ओनेमें गिर पड़ी हो, तुम लोगोंमसे किसीने देखी नहीं हो। मुझे तो यहाँ सभी लोग जानते हैं। क्या मैं स्वय, एक बार जाकर नहीं खोज सकती?

उनकी व्याकुलता देखकर दासूने दयार्द्र होकर कहा—खोज क्यों नहीं सकतीं बहनजी, लेकिन वह खोजना बेकार होगा। अच्छा, लौटकर मैं खुद एक बार खोज देखूँगा। अगर मिल गई तो दे जाऊँगा, यह कह दासू वहाँ वक्त और जाया न करके चल दिया।

दुर्गामणि भी देवी-देवताओंके चरणोंमें ससारके ऐश्वर्यकी मनौतियाँ करते-करते चलीं।—हे माता दुर्गा, हे माता काली, एक भी चिट्ठी जिसमें खोजने पर मिल जाय। ज्ञानदाकी इतनी बड़ी बीमारीकी बात सुनकर भी वह जवाब नहीं देगा, इस बातपर किसी भी तरह विश्वास नहीं किया जा सकता। उसने पत्र अवश्य लिखा है। लेकिन वह कहीं गड़-बड़ हो गया है।

हाय रे मनुष्यकी आशा! करोड़ों समव असभव सोच-विचारोंमें यह बात एक बार भी दुर्गाके मनमें नहीं आई कि इसी बीच अतुलकी मनकी गति बदल भी तो सकती है! एक बार भी नहीं सोचा कि अतुलकी जो कामना एक दिन नितान्त ही गुप्त भावसे पूरी तरह पर्देकी ओटमें उसके अन्तरमें निर्विवाद रूपसे बढ सकी थी उसे ऐसे असमयमें सरे आम खींच लानेसे वह क्षण भरमें सूख जा सकती है! अब सैकड़ों विरोधी शक्तियाँ सजग होकर उसे क्षणभरमें लहमें भरमें दबाकर मार सकती हैं! मनुष्य ऐसा ही अन्धा है।

दुर्गामणिने जरा जल्दी घर लौट लड़कीके कमरेमें प्रवेश घरके पूछा—क्यों री ज्ञानदा, दासू कोई चिट्ठी दे गया है क्या?

लड़कीने कुंठित स्वरमें कहा—नहीं माँ।

आज दो महीनेसे एकके बाद एक तीन पत्रोंका जवाब नहीं आ रहा है। दुर्गाने भयसे क्षुब्ध स्वरमें कहा—शायद तू सो गई थी। तेरी आहट न पाकर दासू शायद लौट गया होगा। मैं घरमें नहीं थी—एक दिन जरा जागती नहीं रह सकी

बिटिया ? कह कर मुँह फुलाए हुए दुर्गा वहाँसे चली गईं। ज्ञानदा चुप रही। वह सोई नहीं, बराबर जागती रही, यह कह कर उसने बहस नहीं की। माँके सामने रोज एक ही प्रश्नका पुराना जवाब देते-देते वह लज्जाके मारे जमीनमें गड़ी-सी जा रही थी।

दुर्गाने उसी दम लौट कर दरवाजेके बाहरसे कहा—तो दासूने मुझसे क्यों कहा कि खोज कर दे जायगा ? आज न जाने कैसे उन्हें निश्चित रूपसे विश्वास हो गया था कि अतुलकी चिट्ठी आई ही है !

लड़कीने जबान नहीं खोली, एक मैली-सी कथरीमें मुँह छिपाए पड़ी रही। लेकिन दुर्गा इतनेहीसे शान्त नहीं हो सकीं। उन्होंने भतीजेको डाकखाने भेज कर मालूम किया कि दासू नहीं आया।

बादके तीन-चार दिन उन्होंने पत्रकी प्रतीक्षामें अहोरात्र मानो काँटोंके बिछौने-पर काटे। फिर भी वह नहीं आया। अन्तमें निराश होकर अतुलकी माँको पत्र लिखा। उन्होंने पत्रोत्तरमें संक्षेपमें लिखा कि अतुल मजेमें है और कलकत्तेमें रह कर पूर्ववत् लिख-पढ़ रहा है। उनकी चिट्ठीसे दुर्गामणिके कानोंमें एक उपेक्षाका स्वर ही झंकृत हुआ। इसी तरह अगहन बीता, पूस बीता, मगर अतुलकी कोई चिट्ठी नहीं आई। आधा माघ बीतते-बीतते लड़कीकी तबीयत कुछ ठीक-सी हुई, तो माँ बीमार पड़ गईं। निराशाका इतना बड़ा आघात वह सहन न कर सकीं। इसके सिवा भाभीके प्रति उनके विद्वेषकी सीमा नहीं। उसकी चर्चा आते ही घृणासे उसे कभी 'जली लकड़ी' कहतीं तो कभी 'ताड़का' और जैसे-जैसे दिन बीतते जा रहे थे वैसे-वैसे उनकी घृणा भी अपरिसीम होती जा रही थी। उसका और एक कारण यह भी था कि 'जली लकड़ी' अपने ढंगसे ज्ञानदाको शायद उसके स्वाभाविक माधुर्यके कारण प्यार करती थी, उसकी सेवा भी करती थी। लेकिन ज्ञानदाकी इस सेवामें भाभीके एक उग्र स्वार्थकी बू पाकर दुर्गामणिका हृदय विषकी ज्वालाकी भाँति जलने लगा। शरीर उनका बड़े दुःखका था, इसीलिए बहुत सहा था मगर अब आगे नहीं सहा गया। माघके अन्तमें उन्होंने बिस्तर पकड़ लिया। लड़कीने रोते हुए कहा—अब यहाँ नहीं माँ, अपने घर चलो। जो कुछ होना होगा, वहीं होगा।

दुर्गा सहमत हुईं। उनके असहमत होनेका अब कोई विशेष कारण नहीं

था। इस 'जली लकड़ी'की सेवा और आत्मीयतासे निकल भागनेके लिए उनका मन निरन्तर यही कहने लगा था—भागो, भागो, भाग चलो यहाँसे।

जानेका आयोजन सुनकर शम्भुका मिजाज गरम हो गया। सबेरेके सात आठ बजे थे। सन्ध्या-पूजासे निवृत्त होकर खड़ाऊँ चटकाते हुए, बाहर निकल उन्होंने दुर्गाको पुकारा।

दुर्गामणि चबूतरेके एक किनारे खमेके सहारे बैठी मुँह धो रही थीं। ज्ञानदा पास ही बैठी उनकी सहायता कर रही थी। बड़े भाईके पुकारनेकी आवाज सुनकर उन्होंने कहा—क्या है भैया? शम्भुने कहा—इस समय तो तुम्हारा जाना नहीं हो सकता।

क्यों भैया?

क्यों भैया? मैं क्या वचन देकर तुम्हारे लिए झूठा बनूँ? ऐसे नक्षत्रमें मेरा जन्म नहीं हुआ है! बातको न जानते हुए भी दुर्गाका दिल धड़कने लगा। धीमी आवाजमें पूछा—कौन-सी बात भैया?

शंभुने कहा—ज्ञानदाके ब्याहकी बात। अब तो मैं अधिक दिनों तक रोके नहीं रख सकता। इसीलिए इसी फागुनकी पंचमीको अपने नवीनके साथ इसके ब्याहका निश्चय कर देना पड़ा। इधर गहने आदि भी कम नहीं देगा, कह रहा है। देखा कि देखने सुननेमें सभी दृष्टियोंसे अच्छा होगा।

समाचार सुनते ही दुर्गामणिके माथेपर मानों वज्रपात-सा हो गया। आँखोंमें आँसू भरे हुए उन्होंने कहा–मुझसे पूछे बगैर तुमने वचन क्यों दे दिया भैया? यह ब्याह तो मैं प्राण रहते नहीं होने दूँगी!

शभुने क्रुद्ध होकर कहा—तुम्हारी चलेगी, तभी तो न होने दोगी? मैं इसका मामा हूँ। मैं जो कुछ कहूँगा, वही होगा। तेरे लिए मैं अपनी बातसे मुकर जाऊँ ऐसे बापने मुझे जन्म नहीं दिया, जानती नहीं तू!

अब दुर्गामणि सचमुच ही रो पड़ीं। बोलीं—नहीं भैया, लड़कीका ब्याह मैं यहाँ जीवन रहते नहीं होने दूँगी—मेरे लिए तुम तनिक भी चिन्ता मत करो भैया,—गला रुँध जानेके कारण वह बात पूरी न कर सकीं।

शभुने यह रोना देख झल्लाकर दाँत पीसते हुए कहा—शुभ कार्यमें व्यर्थ पिन-पिन करके रो मत। जो होनेका नहीं, जो मेरे किए नहीं होगा—

रंगभूमिमें 'जली लकड़ी' ने आकर दर्शन दिया। उसके दोनों हाथोंमें गोबर लगा हुआ था। शायद उस समय भी गोशालेकी सफाईमें लगी हुई थी। आँगन-

में आकर पतिकी ओर मुँह किए हुए वह अकस्मात् फूटी हुई काँसेकी थालीकी तरह खन-खना उठी—भला वह तुम्हारा उत्तम वर कौन है, जरा मैं भी तो सुनूँ ?

स्त्रीका रंग-ढंग देखकर शंभु घबरा गए। लेकिन जवानी हिम्मतको कायम रखते हुए बोले—कोई भी हो, तुझे क्या करना है ?

'जली लकड़ी' गोबरमें सने हुए दोनों हाथोंको मटका कर आधे आँगनमें नाच आई और वैसे ही सुमधुर कंठसे सारे टोलेको चौंकाती हुई बोली—मामा हैं ! मामापन दिखाने आए हैं ! नवीनके संग व्याह कर देंगे ! इसीलिए न कि सौ रुपए व्याज-सहित अदा हो जायँ ! इसीलिए वह उत्तम वर है ? ठीक है ! मेरा सगा भाई है, क्या मैं जानती नहीं ? ताड़ी-गाँजेके नशेमें इसने पाँच-पाँच बच्चोंकी माँ आठ महीनेकी गर्भवती बहूको पेटमें लात मार कर मार डाला ! इसीलिए इसके जैसा उत्तम वर कहाँ मिलेगा ? गलेमें फाँसी नही लगा लेते ? धिक्कार है तुम्हें, धिक्कार है !

बहन और भानजीके सामने शंभु अपने गुस्सेको सँभाल नहीं सके और पैरका खड़ाऊँ हाथमें लेकर चिल्ला उठे—चुप रह, हरामजादी !

'जली लकड़ी' अब पागल हो उठी। वह एक ऐसी भयावनी भंगिमा प्रदर्शित करके चिल्लाने लगी कि उसे आँखों देखे बगैर केवल विवरण पढ़कर नहीं समझा जा सकता। बोली—ऐं, मुझे हरामजादी कहा ? फिर इस तरहकी बात जबानपर लाये तो मुँहमें जलती हुई लकड़ी न ठूँस दूँ तो मैं पाँचू घोषालकी लड़की नहीं। जबरदस्ती व्याह कर दोगे ? क्यों, कौन हो तुम ? वह लड़की लेकर आई हैं दो दिन चैनसे रहनेके लिए। तुम उसे रात दिन डर दिखानेवाले कौन होते हो ? मेरे इस बड़े हँसियाको देख रखो। साले बहनोई दोनोंके नाक-कान एक साथ काट कर तब दम लूँगी ! याद रखना मेरा नाम भामिनी है !

उस मूर्त्तिके सामने शंभुसे और कुछ कहते नहीं बना। वह भीतर चले गए।

अब 'जली लकड़ी'ने दुर्गाकी ओर मुखातिब होकर कहा—यह पूरा चमार है ननद ! जबसे तुम आई हो तभीसे मनसूबा बाँध रहा है कि किस तरहसे इस सोनेकी प्रतिमाको बन्दरके हाथों सौंप कर्ज अदा कर जमीन छुड़ा ले। तिसपर कहता है—मैं मामा हूँ !

जरा दम मारकर वह फिर कहने लगी—कहनेसे तुम्हें दुःख होगा, इसीलिए मै चर्चा नहीं करती थी ननद। मैंने कहा—लड़की बुखारसे मर रही है, एक

अच्छा डाक्टर बुला लाओ। उत्तरमें इसने कहा—मेरे पास उतने पैसे नहीं हैं। मेरे पास एक चाँदीकी करधनी-भरका सहारा था। उसे गिरवी रख कर डाक्टर बुलवाया। और अब कहता है कि मेरी जो मर्जी होगी करूँगा, मैं मामा हूँ! मुहजला! मेरे जिन्दा रहते डर किस बातका ननद! आज ही मैं इन्तजाम किए देती हूँ, तुम घर जाकर लड़कीका ब्याह करो। बादमें जब तुम्हारी इच्छा हो, चली आना।

दुर्गा खंभेके सहारे उसी तरह बैठी रहीं। उनके दोनों नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली।

'जली लकड़ी' कंठ-स्वरको जरा धीमा करके अदृश्य पतिके प्रति लक्ष्य करके कहने लगी—अनाथ समझ कर इसपर अत्याचार क्यों करेगा? क्या ऊपर भगवान नहीं है? मैं कहती हूँ कि जो कुछ तुम्हारे पास है उसीको लेकर चलो फिरो, और गुजर-बसर करो। पराएका लेकर अपना पेट क्यों मोटा करने जाओ? ऐसे आदमीका भगवान कभी भला नहीं करते।

उसी दिन दोपहरको जानेका सारा बन्दोबस्त हो गया।

बैलगाड़ीपर सवार होते समय दुर्गामणिने 'जली लकड़ी'के दोनों पैरोंपर मस्तक टेक कर उन्हें आज सचमुच ही आँसुओंसे भिगो दिया। बोलीं—तुम मेरी बड़ी भावज हो। मैं तुम्हें आशीर्वाद नहीं दे सकती। लेकिन भगवानसे तुम्हारे लिए विनती करती हूँ। मेरे लिए तुमने अपनी करधनी तकको नष्ट कर दी!

'जली लकड़ी' ने मसूड़े निकाल कर हँसते हुए कहा—भाड़में जाय करधनी! ननद, यही आशीर्वाद दो कि हाथकी चार चूड़ियाँ और माँगका सिन्दूर बना रहे, मैं पति-पुत्र, गौ-ब्राह्मणकी सेवा करती करती मरूँ। लो, ऐसा दुर्बल शरीर लेकर खड़ी मत रहो, गाड़ीपर बैठ जाओ। हाँ री ज्ञानदा, ननिहालमें तुझे बड़ा कष्ट सहना पड़ा बेटी। लेकिन फिर आना, भूल न जाना।

इतना कह ज्ञानदाके हाथपर भाभीने दो रुपए रख दिए।

गाड़ी चल देने पर दुर्गा आँसू पोंछते हुए बोलीं—बिना समझे-बूझे मैंने तुम्हारे चरणोंमें बड़ा अपराध किया है भाभी! उसके लिए मुझे क्षमा करना।

'जली लकड़ी' इस बार मसूड़े निकाल कर हँसी नहीं, बल्कि झटसे एक बूँद आँसू पोंछ कर बोली—दुर्भाग्यकी बात है! अपराध तो सब हमारा ही है ननद! क्यों री ज्ञानदा, देख, मामा-मामीपर क्रोध न करना! अगले साल आम-

कटहलकी मौसम आने पर तेरा न्यौता रहा। अबकी बार दामादको साथ लेकर आना बिटिया। इतना कह उन्होंने हाथकी पीठसे दो बूँद आँसू पोंछ लिये।

६

सूचना देनेकी कोई आवश्यकता न थी, इसीलिए चिट्ठी लिखे बिना ही दुर्गामणि चली आई। ज्ञानदाका चेहरा देखकर उसकी ताई हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई। बोली—क्यों री ज्ञानदा, तेरे दोनों गाल थप्पड़ें मार मार किसने बिगाड़ दिये? अरी मेरी माँ, कैसी घिनौनी बात है! सिर गंजा कैसे हो गया? ओ छोटी बहू, जल्दी आओ, जरा जल्दी, हमारी ज्ञानदा सुन्दरीको तो देख जाओ! मामा मामीने क्या छौंक देकर तेरे चमड़ेको जला डाला है? ज्ञानदा सिर झुकाकर निरुत्तर बैठी रही। छोटी चाचीके आते ही उसने उतावलीके साथ उठकर प्रणाम करके पैरोंकी धूलि ले ली।

छोटी बहू काँप उठी—बोलीं—एँ, तू इस तरहकी कैसे हो गई बेटी?

ताईने नितान्त अत्युक्ति नहीं की। कहा—मानो बाँसवाड़ीकी चुड़ैल है जिसे अँधेरेमें देखनेसे चौंक उठना पड़े। इतना कहकर वह खिलखिला कर हँसने लगीं। किन्तु छोटी बहू आज उनकी इस हँसीमें शामिल नहीं हुई। कुछ भी हो वह सन्तानकी जननी तो हैं। लड़कीके इस कंकालसार पीले चेहरेको देखकर उनका मातृ-हृदय मानो शतधा विदीर्ण हो गया।

ज्ञानदाके पास बैठकर उसके सिर और चेहरेको हाथसे सहलाते हुए एक-एक करके उसके रोगका हाल सुना और एक लम्बी साँस छोड़कर कहा—तो उसी वक्त क्यों नहीं चली आई बेटी? मैंने तो तुम लोगोंको यहाँ आनेके लिए मना नहीं किया था। मझली दीदी कहाँ हैं?

माँको गाड़ीहीमें ज्वर आ गया था। उन्हें भीतर सुला दिया है।

स्वर्णमंजरीने कहा—ज्वर क्यों नहीं आएगा? हजार हो, मैं जेठानी जो ठहरी! इतना ताव दिखाकर चला जाना क्या कभी सहा जाएगा?

छोटी बहू ज्ञानदाका हाथ पकड़े उसकी माँको देखनेके लिए उठ खड़ी हुई थी। बड़ी जेठानीका इस तरह पीछे पड़ कर जली कटी बातें सुनाना आज उसे इतना बुरा लगा कि वह सह न सकी। बोली—दीदी, दो वर्ष मधु-सक्रांतिका व्रत कर डालो जिससे अगले जन्ममें तुम्हारी जबान कुछ अच्छी हो जाय। स्वर्णमंजरी इस

अप्रत्याशित मन्तव्यको सुनकर क्रोध और विस्मयसे अवाक् रह गई। लेकिन क्षण-भर बाद ही तीव्र स्वरमें गरज उठीं—यह अच्छा ही हुआ छोटी बहू, अच्छा ही हुआ जो इतने दिनोंके बाद मझली जेठानीको देखकर शोक उमड़ आया। हे भगवान्, न जाने तू कितना ढोंग रचना जानती है!

छोटी बहूने कोई जवाब नहीं दिया। वह ज्ञानदाका हाथ पकड़े उस घरमें चली गई। लेकिन यह जाना ज्ञानदाके लिए एकदम काल हो गया क्योंकि एक तो ऐसे ही उसके और उसकी माताके विरुद्ध स्वर्णमंजरीके डाहकी सीमा नहीं थी और उसपर छोटी बहूके आजके व्यवहारसे उसका विद्वेष पहलेकी अपेक्षा कहीं और बढ़ गया। दुर्गामणिको हरिपालमें रहते जब ज्वर आता तो वे लेट जाया करती थीं, ज्वर उतर जाने पर वे घूमने-फिरने लगती थीं। तबीयत गवाही देती तो स्नान-पूजन करके एक बेला कुछ खा भी लेती थीं। लेकिन यहाँ आने पर हालत कुछ और ही तरहकी हो गई। गाँवकी स्त्रियोंने रात-दिन सहानुभूति प्रकट कर-करके दो चार दिनोंमें ही उन्हें बिल्कुल चारपाईपर पड़े रहनेके योग्य बना दिया। नीलकण्ठ मुखर्जी महाशयकी सहधर्मिणी जब मझली बहूको देखने आईं तो मानो वे एकाएक आकाशसे गिर पड़ीं। आँखें माथेपर चढ़ाकर बोलीं—यह क्या कर रही है मझली बहू, लक्ष्मीका ब्याह कब करेगी? अब तो इसकी ओर देखा भी नहीं जाता।

दुर्गामणिने अपने थके हुए नेत्रोंको मूँदकर क्षीण-कण्ठमें कहा—पता नहीं बुआजी, भगवानकी कृपा-दृष्टि हमपर कब होगी!

यह तो नहीं जानती बिटिया, लेकिन चेष्टा तो करनी चाहिए। भगवान तो कहींसे लड़का ढूँढ़ कर ला नहीं देंगे।

दुर्गाने आगे कोई जवाब नहीं दिया।

एक मिनट प्रतीक्षा करके वे फिर बोलीं—तू तो मायके गई थी न? भाईने कहीं कुछ तजवीज नहीं की? देवर क्या कहता है?

भगवान जाने! कह कर दुर्गामणि दूसरे करवटसे लेट गई।

घण्टा-भरके बाद आदरिणी घूमने आकर चौखटके बाहरसे ही झाँक कर बोली—मझली बहू, इस बेला तबीयत कैसी है?

बिस्तरके एक किनारे बैठी ज्ञानदा माँके पैरोंको सहला रही थी। बोली—

बुआजी, बुखार अभी नहीं उतरा है। दुर्गाने मुँह फेर कर देखा, बोलीं—बैठो न दीदी।

नहीं बहू, बड़ी देर हो गई है, अब नहीं बैठूँगी। लेकिन एक बात कहती हूँ मझली बहू, अब किसी न किसीको पकड़ कर कन्या सम्प्रदान कर दो। अब अधिक विचार करना ठीक नहीं। कहना नहीं चाहिए—पहले इस लड़कीके शरीरमें थोड़ी बहुत आभा थी। लेकिन मलेरियासे एकदम कोयला हो गई है। क्यों री ज्ञानदा, सामनेके बाल शायद झड़ गये हैं?

ज्ञानदा गर्दन हिलाकर सिर नीचा किए चुपचाप बैठी रही। आदरिणीने कोमल स्वरमें कहा—सुनती हूँ, उस टोलेके गोपाल भट्टाचार्य फिर ब्याह करेंगे। एक बार अनाथको भेजकर पता क्यों नहीं लगा लेती हो मझली बहू?

अच्छा, करूँगी। यह कहकर दुर्गामणिने लम्बी साँस ली और वे दीवारकी ओर मुँह फेर कर फिर लेट गईं।

इसी तरह न जाने कितने लोग कितने तरहका हितोपदेश दे गए, इसका कोई हिसाब नहीं। परन्तु जिनकी प्रतीक्षामें दुर्गामणि हर क्षण कान खड़ा किए रहती, उन्होंने दर्शन नहीं दिया। न आया अतुल, न आई उसकी माँ।

छोटी बहूके हृदयमें दया-माया थी। लेकिन वह बड़ी आलसी थी। इसके सिवा वह गर्भवती थी। इसीलिए जब स्वर्णमंजरीने ज्ञानदाको बुलाकर कहा कि बिटिया, सदा बीमार बनी रहनेसे तो काम नहीं चलेगा, माना कि तुम्हारी माँका शरीर अभी कुछ करनेके लायक नहीं है। लेकिन तुम तो काफी सयानी हो चुकी हो, अपने काकाके लिए सबेरेका भोजन नहीं बना सकतीं? तब कमरेके अन्दरसे इस बातको अन्यायपूर्ण समझकर भी छोटी बहू चुप रही। दूसरेका दुःख देखकर वह दुखित होती थी मगर स्वयं परिश्रम करके उस दुःखको दूर करना उसके लिए असाध्य था।

ज्ञानदा तत्काल सहमत होते हुए धीमे स्वरमें बोली—मैं ही बना दिया करूँगी ताईजी।

यद्यपि अब भी रोज रातमें ज्वर हो आया करता था परन्तु माँकी परेशानी बढ़नेके डरसे इस बातको उसने प्राण पणसे छिपा रखा था। खोखले निर्जीव शरीरको सबेरे मानो वह बिस्तरसे खींच-तान कर भी न उठा पाती थी। किन्तु

तो भी ताईकी बातको मान लेनेमें उसने तनिक भी आना-कानी नहीं की। एक बार भी मुँह भारी नहीं किया।

दुःखी माता-पिताकी कन्या होनेपर भी वह एकलौती सन्तान थी। उन्होंने बड़े लाड़-चावसे उसका लालन पालन किया था। लेकिन बचपनसे ही गुरु-जनोंकी उचित-अनुचित हर प्रकारकी आज्ञाओंको बिना उज्रके नत मस्तक होकर स्वीकार कर लेने, उनकी सेवा करने, मुँह बन्द किए उनकी बातोंको सह लेनेमें वह ससारमें कदाचित् अपना सानी नहीं रखती थी। लेकिन आज उसने कितना बड़ा, कितना भारी बोझ अपने मस्तकपर लाद लिया, इस बातको चाहे और कोई न समझे पर छोटी बहूने समझ लिया। अतएव बड़ी जेठानीके इस अत्यन्त अनुचित आदेशके कारण उसका हृदय जलने लगा तथापि मुँह खोलकर प्रतिवाद करनेका भी उसे साहस नहीं हुआ। कारण यह था कि कुछ बोलनेपर शायद उसे भी अपनी बारीपर सबेरे उठकर चौकेमें घुसना पड़े।

अगले दिन यथासमय चाचाको स्नान-घरमें जाते देख ज्ञानदा थाली परोस कर उन्हें देने जा रही थी। इतनेमें उसकी ताई न जाने कहाँसे हाँ-हाँ करती हुई दौड़ती आईं। बोलीं—कहाँ जा रही है री ज्ञानदा?

ज्ञानदा अकचका कर बोली—चाचा स्नान करके आ गए हैं न!

तो इससे तेरा क्या? ताई चिल्ला उठीं—मना कर दिया था न कि थाली परोस कर उनके सामने न ले जाना। तेरा परोसा पुरुष होकर वे कहीं खा सकते हैं री?

दुर्गा उसी समय उठकर कमरेके सामने बैठी थीं। बक-झक सुनकर सहमी हुई ताकती रह गईं।

छोटी बहूने कमरेसे निकल कर पूछा—क्या हुआ दीदी?

और किसीकी ओर ध्यान दिए बिना ही स्वर्णमजरी उस हक्का-बक्का होकर खड़ी बालिकाको फटकारती रहीं—परोसी हुई थाली ले जानेसे चाचा खुश होकर सिरपर लेकर नाचेंगे—राजकुमार लाकर तेरा ब्याह कर देंगे न? इस उम्रमें लोगोंको खुश करनेकी कलामें कितनी प्रवीण हो गई है, हे भगवान्! इतना कह थाली छीनकर वह चली गईं।

दुर्गा हजारों ज्वालाओंसे जलती जलती धीरे-धीरे असहिष्णु होती जा रही

थीं। लड़कीको उद्देश्य कर रोते हुए बोलीं—मुँहजली, गुरुजनोंकी बात नहीं सुनती तो तेरी मौत क्यों नहीं होती!

ज्ञानदा चुपचाप रसोईघरमें चली गई। एक बार भी नहीं कहा कि ऐसा करनेके लिए किसीने उसे मना नहीं किया था। मुँह खोलकर प्रतिवाद करना तो शायद वह जानती ही नहीं थी।

प्रतिवाद छोटी बहू ही कर सकती थी। किन्तु बड़ी जेठानीको वह पहचानती थी, इससे बोली नहीं। बड़ी जेठानीकी जिस तरह तेजीसे जबान चलती थी उसी तरह वह आत्ममर्यादाके ज्ञानसे भी शून्य थी। मुँहपर उसकी हजारों भूलें दिखा देनेपर भी वह लज्जाका अनुभव नहीं करेगी—बल्कि और भी अधिक निठुर होकर ज्ञानदाको सताएगी, यह जानकर छोटी बहू ज्ञानदाके पीछे-पीछे चुपचाप रसोई-घरमें चली आई। उसे चुमकारते हुए स्नेहपूर्वक उसका हाथ पकड़कर उन्होंने कहा—दीदीका कहना मानती क्यों नहीं बिटिया?

अबतक इतनी कठोर लांछना वह सहन करती रही। लेकिन स्नेहभरे इस उलहनेको वह नहीं सह सकी। एक बार आखे ऊपर उठाकर चाचीके मुँहकी ओर देख अवसन्न होकर उनके चरणोंपर गिर पड़ी। मुझे किसीने मना नहीं किया था चाचीजी, इतना कहकर वह सिसक कर रो पड़ी।

पास बैठकर चाचीने ज्ञानदाके आँसू पोंछ दिए परन्तु क्या कहकर इस बालिकाको सान्त्वना दी जाय, यह बात उसकी समझमें नहीं आई।

इसी प्रकारसे इस रूपहीना अभागिनी अविवाहिता कन्याके दिन बीतने लगे। क्या घरमें, क्या बाहर, क्या अपने, क्या पराए, सभी मिलकर उसे हर क्षण खरी खोटी सुनाने तथा उसके भाग्यको दोषी ठहराने लगे। लेकिन उसको उबारनेके लिए किसीने तनिक भी प्रयत्न नहीं किया।

७

आजकल किसीके सहारेके बिना दुर्गामणि प्रायः उठ ही नहीं पाती थीं। लड़कीके सिवा सहारा देनेवाला दूसरा कोई था नहीं। इसीलिए हजारों कामोंमें लगी रहनेपर भी ज्ञानदा बीच-बीचमें माँके कमरेमें आकर उनके पैरोंके पास बैठती। आज सबेरे जरा-सी फुरसत पाकर माँके पास बैठी धीरे-धीरे उनकी पीठ

सहला रही थी। एकाएक एक अत्यन्त सुपरिचित कण्ठ-स्वर सुनकर उसका कलेजा धक कर उठा।

होलीका दिन था। छुट्टीमें अतुल घर आया था। मुहल्लेके दो-तीन साथियोंको लिए रंग पोते जेबमें अबीर भरे अतुलने जोरसे पुकारा—मौसीजी! और इसके बाद वह घरमें चला आया।

दुर्गामणि दिन-भर तन्द्रा और जागरणमें एक प्रकारसे अभिभूत-सी रहतीं। ज्ञानदाको इस बातका बड़ा डर लगा कि कहीं कण्ठ-स्वर सुनकर माँ जाग न जायँ। मन ही मन वे इसी व्यक्तिकी प्रतीक्षा कर रही हैं, इस बातको वह जानती थी। लेकिन उनमें पहिले-सा स्वाभाविक धीरज, गम्भीरता, आत्म-सम्मान मानो अब नहीं रहा था। बुद्धि और विवेचना भी उनकी न जाने कैसे तेजीसे विकृत-सी होती जा रही थी। उसकी जो जननी झगड़ेकी परछाईं भी देखकर डर जाया करती थीं वे आजकल मानो उससे भी विमुख नहीं हैं, इस ओर ज्ञानदाका ध्यान गया था। ऐसी अवस्थामें दोनोंकी मुलाकात होनेपर एक अत्यन्त अशोभन झगड़ा अनिवार्य है, यह बात ज्ञानदाके अन्तर्यामीने बतला दी।

किस प्रकार इस सकटको टाला जाय, इस चिन्तासे ज्ञानदा व्याकुल उठी। दबे पाँव उठकर वह किवाड़ बन्द कर रही थी, इतनेमें माँने कहा—क्यों ज्ञानदा, यह अतुल ही बोला है न?

ज्ञानदा दरवाजेके पाससे लौटकर बोली—पता नहीं माँ, शायद वे नहीं हैं।

न, वही तो है। उठकर एक बार देख तो।

तर्क करनेसे माँ गुस्सा हो जायँगी, यह ज्ञानदाको मालूम था। इसीलिए धीरे-धीरे उठकर झाँककर देखनेकी चेष्टा की, मगर कुछ दिखाई नहीं पड़ा। सिर्फ बरामदेके उस ओरसे कई लोगोंके कण्ठ-स्वरके बीच उसका कण्ठ-स्वर भी कानोंमें आ पड़ा। इतनी ही खबर लेकर वह लौट सकती थी। किन्तु ओटसे एक बार अतुलका मुँह देख लेनेका लोभ ज्ञानदाको मानो आगेकी ओर धकेल ले गया।

ज्ञानदा चुपचाप आगे बढ़ी। एक खम्भेकी आड़में खड़ी होकर उसने देखा कि अतुल मुट्ठीभर अबीर वही मौसीके चरणोंपर डालकर हँस रहा है। मुहल्लेके लड़के भी उसकी देखा-देखी वही कर रहे हैं।

छोटी बहू नहीं थी। कुछ दर्द-सा होनेके कारण आज वह कमरेसे बाहर नहीं

निकली थी। इधर अब लौटती हूँ, अब लौटती हूँ, करते-करते ज्ञानदाको लौटनेमें शायद कुछ देर हो गई। अकस्मात् प्राय. वज्रकी-सी चोट खाकर उसने देखा कि जिस बातके लिए वह डर रही थी, वह होकर ही रही। माँ लड़खड़ाते पैरों इसी ओर आ रही थीं।

दौड़कर ज्ञानदाने दोनों बाँहोंमें मॉको जकड़कर व्याकुल कण्ठसे कहा—आगे मत जाओ माँ, लौट चलो।

दुर्गामणिने आँख लाल-लाल करके कहा—क्यों?

क्यों, सो मैं नहीं जानती माँ, तुम लौट चलो। अब तो उनसे कोई आशा ही नहीं है माँ—

मुझे छोड़ दे अभागी,—छोड़ दे! यह कहकर अमानुषिक बलसे दुर्गामणिने अपनेको छुड़ा लिया और वे आगे बढ़ गईं। ज्ञानदा कठपुतलीकी भाँति उनका अनुसरण करती हुई उनके पीछे जाकर खड़ी हो गई। सभीने चकित-भावसे देखा कि मझली बहू हैं।

दुर्गामणिके उस कंकालसार मुखमण्डलपर भूखे शेर जैसी दृष्टि थी। उनकी दोनों जलती हुई आँखोंको देखकर अतुलने डरसे सिर नीचा कर लिया।

दुर्गामणिने कहा—अतुल, हमने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था कि तुमने इस तरह हमारा सर्वनाश किया?

अतुल क्या उत्तर देता! अपराधके भारसे गर्दन ही सीधी नहीं कर सका।

अतुलकी ओरसे उत्तर दिया स्वर्णमंजरीने। हृदय नामकी कोई चीज तो उसके पास थी ही नहीं। बड़ी आसानीसे सिर ऊपर उठाकर बोली—क्यों, तुम्हारा क्या सर्वनाश कर डाला है इसने? जरा सुनें।

दुर्गामणिने कहा—तुम्हें इसका क्या उत्तर दूँ दीदी, जिससे कह रही हूँ, वही जानता है कि क्या किया है।

स्वर्णमंजरीने कहा—हम भी घास नहीं खातीं मझली बहू। लेकिन इसने क्या इस बातकी लिखा-पढ़ी कर दी थी कि वह तुम्हारी लड़कीसे व्याह करेगा, जो इतने आदमियोंके बीच इसे फटकार बताने आई हो? जाओ, भीतर जाओ। आज त्योहारका दिन है। हँसी-खुशीके दिन उपद्रव न खड़ा करो।

उपद्रव खड़ा करने मैं नहीं आई हूँ दीदी। इतना कह अतुलकी ओर देखकर बोलीं—जिस तरहसे हमारा यह एक वर्ष बीता है उसे तुम नहीं जानते अतुल,

मगर भगवान जानते हैं। तुम्हारे मनमें अगर यही बात थी तो उनकी मृत्युके समय क्यों आशा दे दी थी ? क्यों नहीं तभी साफ कह दिया तुमने ?

रोषमें आकर स्वर्णमजरीने कहा—मैं तुमसे कहे देती हूँ मझली बहू, बच्चेको तुम भगवान मत दिखाओ, नही तो बात ठीक नहीं होगी। हमारे जिन्दा रहते वचन देनेका मालिक वह नहीं है।

इतने आदमियोंके सामने अतुल अपनेको अपमानित समझ रहा था। मौसीका सहारा पाकर बोला—क्या मैंने अपने आप ब्याह करनेका वचन दिया था ? मेरे पैर नहीं छोड़ती थी—पैरोंपर सिर पटकने लगी कि पिताजीको तुम खुद अपने मुँहसे वचन दो। तब मै क्या करता ? उतने लोगोंके सामने मैं लज्जासे गड़ा जा रहा था। इसीलिए पैर छुड़ानेके लिए अगर एक कौशलसे काम लिया तो क्या उसे वचन देना कहते हैं ?

स्वर्णमजरी खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली—अरी मैयारी, कैसी घिनौनी बात है! तू कैसी बात कर रहा है रे अतुल! छोकरीने खुद पैर पकड़कर कहा कि मुझसे ब्याह कर लो ?—ऍं!

अतुलने कहा—सच है या नहीं, यह उसीसे पूछ लो। मझली मौसी खुद बतलाएँ कि उन्होंने मेरे पैरोंपर सिर पटकते देखा था कि नहीं। नहीं तो मैं ऐसी लड़कीसे ब्याह करनेकी कैसे सोच सकता हूँ ? मरनेके लिए क्या मुझे एक रस्सी और घड़ेकी कमी थी!

अतुलके साथी मुँह फेरकर हँसने लगे। दुर्गामणि पागल-सी चिल्ला उठीं—रे निष्ठुर! रे कृतघ्न! रस्सी और घड़ा तेरे लिए मैं खरीद दूँगी, तू क्यों नहीं मर जाता ? तेरे लिए मरना ही उचित है। इतने लोगोंके सामने तूने जिस लड़कीका अपमान किया उस लड़कीने ही तो तुझे यमके मुँहसे बचाया था, तू सब भूल गया ?

कोलाहल सुनकर छोटी बहू दर्द भूलकर दौड़ती हुई आई, देखा कि स्वर्णमजरी उछल-कूद रही है, कह रही है—अभागी, तू मेरे घरसे निकल जा! मैं कहती हूँ निकल जा!

ज्ञानदा खड़ी थी। किन्तु वह अचेतन पत्थर हो गई थी। लज्जा, घृणा, मान, अपमान, भला-बुरा कुछ भी उसे स्पर्श नहीं कर रहा था। मानो इन सारी बातोंसे परे वह चुपचाप सूनी दृष्टिसे देखती खड़ी थी। छोटी बहूने इस अदृष्टपूर्व

मूर्तिकी ओर देखकर डरते-डरते जरा धक्का-सा देकर पुकारा—ज्ञानदा ? उन्होंने कमरेके अन्दरसे ही इस कलहको कुछ कुछ सुन लिया था।

ज्ञानदाने जवाब दिया—क्या है चाची ?

अब क्यों खड़ी है बेटी, अपनी मॉको भीतर ले जा।

चलो मां, कहकर मॉका हाथ पकड़े हुए ज्ञानदा धीरे-धीरे उन्हें कमरेमें ले गई।

स्वर्णमजरीने कहा—देखा छोटी बहू, कैसी हिमाकत है! बौनेका चॉदके लिए हाथ बढाना इसीको कहते हैं।

अतुलने मुस्कराके दॉत बाहर निकालकर कहा—मामलेको सुन लिया न छोटी मौसी, कैसी लज्जाकी बात है!

स्वर्णमंजरीने झनझनाकर कहा—एक जरा-सी लड़की,—कैसा घोर कलियुग है! छोटी बहूने जरा हॅसकर कहा—घोर कलियुग है, इसीलिए तो रक्षा हुई दीदी, और कोई युग होता तो धरती माता अबतक लज्जाके मारे फट गई होतीं अतुल! इतना कह छोटी बहू कमरेके अन्दर चली गई।

व्यंगके तात्पर्यको स्वर्णमंजरी नहीं समझ पाई, इससे प्रसन्न होकर बोली—मैं भी तो यही कह रही हूँ छोटी बहू।

लेकिन अतुलका मुँह काला हो गया। छोटी बहूके कथनका तात्पर्य स्वर्णमंजरीने भले ही न समझा हो मगर अतुल समझ गया। इसीलिए कुछ देर चुप बैठे रहनेके बाद जब वह उठकर चला, तो उसे ऐसा लगा कि होलीके दिन मानो किसीने उसकी धोती और कुरतेमें लाल रंग और मुँहमें गाढी स्याही पोतकर छोड़ दिया है।

वास्तविक बात इतने दिनोंतक प्रकट नहीं हुई थी, पर अब हो गई। मुहल्लेकी शुभाकांक्षिणियोंकी बातोंसे शीघ्र ही पता चल गया कि अतुल इसी घरानेमें बॉध लिया गया है। अनाथनाथकी बड़ी लड़की माधुरीसे उसका ब्याह तय हो गया है। ब्याहकी अगुआई स्वर्णमंजरीने की है और लड़की भी अतुलको बहुत पसन्द है।



माधुरी बचपनसे ही कलकत्तेमें अपने मामाके यहाँ रहती है और वहीं महाकाली पाठशालामें पढती है। अँगरेजी, बगला, सस्कृत पढी है। गाना, बजाना, छोटे

गलीचे बुनना, साथ ही शिवकी मूर्ति बनाना और स्तोत्र पाठ करना भी जानती है। देखनमें बड़ी सुन्दर है। इस बार दशहरेमें दो महीनेके लिए घर आई थी। उसी समय बातचीत पक्की हो गई है। अतुलके समान दुर्लभ वर खोजनेके लिए अधिक प्रयत्न नहीं करना पड़ा। वर अपने आप ही पकड़में आ गया। हाँ, स्वर्णमंजरीकी मध्यस्थता अवश्य थी।

छोटी बहूके भाई अच्छी हैसियतके आदमी हैं। उनकी माँ जीवित हैं, आसन्न-प्रसवा बेटीको ले आनेके लिए उन्होंने आदमी भेजा है। साथमें माधुरी भी आई है। मझली ताईको उसने बहुत दिनोंसे नहीं देखा था। आते ही वह उन्हें प्रणाम करने गई।

चिरंजीवी होओ बेटी! यह कह कर दुर्गामणि आशीर्वाद देकर एकटक उसकी ओर देखती रहीं। माधुरी एक तो ऐसे ही सुन्दरी है, दूसरे उसकी मामीने उसे खूब सजाकर भेजा है। मामी कलकत्तेकी लड़की हैं। लड़कीको कैसे सजाया जाता है, इसे वह जानती हैं। शरीरपर थोड़ेसे चुने हुए गहने हैं। चौड़े लाल किनारेकी साड़ी पहन रखी है। खुले बाल पीठपर लटक रहे हैं। माथेपर एक बिन्दी है। देखते-देखते दुर्गामणि पलकें गिराना ही नहीं चाहती है। एकाएक एक लम्बी साँसके साथ उनके मुँहसे निकल पड़ा—अहा! लड़की क्या है, सोनेकी प्रतिमा है। और साथ ही चरणोंके पास बैठी हुई सौन्दर्यहीन काली लड़कीकी ओर दृष्टि जाते ही उनकी दोनों आँखें मानो जल उठीं। करवट बदलकर रूखे स्वरमें बोलीं—और मैंने गर्भमें धारण की छछूँदर।

माधुरीके कमरेमें प्रवेश करते ही उसकी रूपराशि और साज-शृंगारके सामने अपनी हीनताके सकोचसे ज्ञानदा मानो जमीनमें गड़ गई। माधुरीने कहा—दीदी चलो न, जरा गपशप करें।

इसके उत्तरमें ज्ञानदाने अव्यक्त स्वरमें क्या कहा, कुछ समझमें न आया। परन्तु उसके कानमें पड़ते ही दुर्गामणि कड़वे स्वरमें बोल उठीं—तू अपना काला मुँह किसीको न दिखलाना ज्ञानदा, बैठी रह। ज्ञानदा चुपचाप बैठी रही।

माधुरीके चले जाने पर दुर्गामणिने संभवतः हृदयकी भयंकर ज्वालाके मारे दो एक बार आह ऊह किया। ज्ञानदाने आहिस्तेसे कहा—सिर जरा दबा दूँ माँ!

नहीं।

जरा दवा दूँ।

नहीं री, नहीं। जा, मेरे बिस्तरसे उठ जा हरामजादी! तेरा मुख देखनेसे मेरा सारा शरीर जलकर भस्म हो जाता है। इतना कहकर दुर्गामणिने लड़कीको जोरसे पैरोंसे ठेल दिया।

ज्ञानदाने बहुत कुछ सहन किया था। लेकिन आज वह इस लातको नहीं सह सकी। चुपचाप नीचे उतर आई और एकदम भूमिपर औंधी पड़ गई। उसके नेत्रोंके जलसे जमीन गीली हो गई। दोनों हाथ सामनेकी ओर फैलाकर मन ही मन कहने लगी—हे भगवान्! मैंने किसका क्या बिगाड़ा है कि सभीकी आँखोंका काँटा हो रही हूँ। मेरे रूप नहीं है, गहने और कपड़े नहीं है, पिता नहीं हैं, तो क्या यह सब मेरा दोष है? मेरी यह रोगग्रस्त कंकाल देह, यह मुरझाया हुआ पीला चेहरा, जो एक पुरुषको भी आकर्षित नहीं कर सका, तो इसमें क्या मेरा दोष है? मेरा व्याह करानेवाला कोई नहीं है, फिर भी मेरी उम्र बढ़ती जा रही है, यह भी क्या मेरा अपराध है? प्रभु! अगर मुझमें इतने दोष भरे हुए हैं तो मुझे मेरे पिताके पास भेज दो, वे मुझे कभी नहीं ठुकरा सकेंगे।

ज्ञानदा! कहकर दुर्गामणिने करवट बदली। माताकी इस पुकारसे आँखें पोंछकर वह तड़फड़ा कर उठ बैठी।

रोगी शरीर है। इस तरह गीली भूमिपर क्यों पड़ी है बेटी! यह कहकर दुर्गामणि उत्कंठाके मारे खुद उठ बैठीं।

ओह, शायद मैंने तुझे डाँट दिया है बेटी! यह कहकर निमेष-मात्रमें दुर्गामणिने लड़कीको गोदमें खींच लिया और रोने लगी।

आज संध्याके बाद अनाथनाथ अचानक दुर्गामणिके कमरेमें प्रवेश करके खिन्न-भावसे बोले—अब तुम्हारी तबीयत कैसी है भाभी? लेटी रहो, लेटी रहो, उठो मत। मैंने सुना कि अब तुम दवा वगैरह भी नहीं खाना चाहतीं हो। भला, इस तरह कैसे अच्छी हो सकोगी?

बात बिलकुल सच थी। इसमें संदेह नहीं कि उन्हें जो कुछ दवा दी जा रही थी उसके न देनेमें भी कोई हानि न थी। लेकिन उसे भी लेना उन्होंने बिलकुल बन्द कर दिया था। उनके जीवित रहनेकी अब आशा नहीं थी। साथ ही उन्हें जीवित रहनेकी इच्छा भी नहीं थी। कंठस्वर उनका

रुदनका वेग एकदमसे सहस्रमुख हो उठा। इशारेसे समीप बुलाकर लड़कीकी गोदमें मुख रखकर माता आज छोटी बालिकाकी तरह सिसक सिसककर रोने लगी।

काफी देरके बाद जब रोना बन्द हो गया, तब ज्ञानदाने कहा—मुझे क्या पहचानती नहीं हो माँ कि मुझे कोई तुमसे अलग कर सके? यह तो चाचाका मकान नहीं है। मकान मेरे पिताका है। चाचा अगर खाना नहीं देंगे, तब तो फिर मेरे लिए लज्जाकी कोई बात नहीं। तब जिस तरहसे भी हो सकेगा, मैं तुम्हें खिलाऊँगी माँ। यह कह कर कन्या आज माँको इस तरह गोदमें लिये बैठी रही, मानों वही माँ हो गई है। कुछ देर बाद माँ श्रान्त शिथिल होकर सो गई। लेकिन लड़की गहरी रात तक जागी रहनेपर भी यह स्थिर नहीं कर सकी कि अगर खाना बन्द हो गया तो 'मेरा यह जिस तरहसे भी' क्या होगा! उस दुर्दिनमें माताके भोजन-वस्त्रका प्रबंध कहाँसे और कैसे करूँगी!

ज्ञानदाको विदा कर देनेका प्रस्ताव छोटी बहूके कानोंमें गया। पतिको एकान्तमें बुलाकर उन्होंने कहा—अब क्या तुम सठिया गये हो कि बड़ी भौजाईके परामर्शसे ऐसे असमयमें माँसे बेटीको दूर हटानेकी बात कह आए? गलेपर छुरी चलाना ही कसाइयोंका पेशा होता है, पर उनमें भी तुम लोगोंसे अधिक दया माया होती है!

जो भी हो, यह काम निन्तान्त असम्भव था। इसी लिए अनाथनाथ चुप रह गए। अन्यथा, इन मामलोंमें वे स्त्रीके अनुगत हैं, उनके ऊपर इतना बड़ा दोषारोपण उनके बड़ेसे बड़े शत्रु भी नहीं कर सकते थे!

दुर्गामणि आसन्न-मृत्युकी घड़ीमें फिर भी हरिपाल चली जातीं मगर वहाँके उस पात्रकी बात याद आते ही उनका कलेजा काँपने लगता था जिससे अपनी स्त्री—पाँच-छ बच्चोंकी माँ—को गर्भवती होनेकी दशामें पेटमें लात मारकर मार डाला था।

अगले दिन अनाथनाथको अपनी रोगशय्याके निकट बुलवाकर उसके दोनों हाथोंको अपने हाथोंमें दबाकर रोते रोते दुर्गामणिने कहा—देवर, रिश्तेमें बड़ी न होती तो आज मैं तुम्हारा पैर पकड़कर भिक्षा माँगती कि लड़कीको अपनी इच्छाके अनुसार चाहे जिसे दे दो, लेकिन ऐसे समयमें उसे मेरे पाससे अलग मत करो।

यह कह कर दुर्गामणिने ज्ञानदाके दोनों हाथ अपने हाथोंमें लेकर उन्हें उसके चाचाके हाथोंपर रख दिये।

अनाथनाथने अपने हाथोंको खींचते हुए नाराज होकर कहा—दूसरोंकी बदौलत मुझे बिरादरीसे निकलना पड़े यही न! क्या मैंने भरसक कोशिश करनेम कुछ उठा रखा है मझली भाभी? लेकिन मसानका मुर्दा भी तो इस गीधिनीसे ब्याह करनेके लिए तैयार नहीं होता। हाँ, तुम्हारे पास जो एक जोड़ी कड़े थे उनका क्या किया?

वे तो तुम्हारे भैयाके श्राद्धके समय ही बिक गये देवर!

अनाथनाथने हाथ उलटकर कहा—तब फिर मैं क्या करूँ? एक पैसा भी नहीं दोगी और लड़कीको भी नहीं छोड़ोगी। इसका मतलब है, मेरे सिरपर पैर रखकर मुझे डुबाना और क्या? इतना कहकर अनाथनाथ गुस्सेसे चले गए।

उनके चले जानेपर दुर्गामणि क्षणभर शान्त बैठी रही। फिर अकस्मात् कन्याका हाथ झकझोर कर बोलीं—बैठी है तू, शाम हो गई, घरमें चिराग नहीं जलावेगी?

अभी अभी जो आलोचना हो गई है, शायद उसीकी ज्वालासे ज्ञानदा कुछ अन्य-मनस्क हो गई थी। उसके जवाब देनेके पहिले ही माँ अत्यन्त कठोर होकर बोल उठी—इसे मौत भी नहीं पूछती। तिसपर राजकन्याकी तरह रूठी बैठी है। हाँ री ज्ञानदा, इतने धिक्कारपर भी तेरे प्राण नहीं निकलते! यदुघोषका एक लड़का उस दिन तीन दिनके बुखारसे मर गया। तू सालभरसे रोज ज्वरसे जूझ रही है, किन्तु तुझे तो यमराज नहीं उठा ले जा सके? तू ही ऐसी है जो आज भी मुँह दिखाती है। दूसरी कोई लड़की होती तो ग्लानिके मारे अब तक कहीं डूब मरती। जा, जा, सामनेसे हट तो जा शकुनि, क्षणभर तो चैनकी साँस ले लूँ। दिन रात जोंककी तरह काटती हुई चिपकी पड़ी है। यह कहकर ज्ञानदाको एक धक्का देकर मुँह फेर कर लेट गई।

यथार्थमें माँकी बात सच थी कि कोई दूसरी लड़की होती तो एकमात्र मनोव्यथाके कारण ही उसने अबतक आत्महत्या कर ली होती। कितनी ही लड़कियोंने तो ऐसा किया हैं। किन्तु इस लड़कीको भगवानने मानो किसी गुप्त कारणसे माता वसुन्धराके ही समान सहनशील बनाया था। मुँह खोले बिना ही वह उठ गई और सदाकी भाँति काम-काजमें लग गई। इतनी बड़ी निष्ठुर लांछनासे

क्षणभरके लिए अपनेको भूलकर उसने यह नहीं कहा—माँ, मरना मैं भी जानती हूँ। सब कुछ सहकर जिन्दा हूँ, वह केवल इसलिए कि तुम्हारे मनको क्लेश होगा।

ज्ञानदाने दीपक जलाया, घरके भीतर गंगाजल छिड़ककर, धूप जलाई और छोटा प्रदीप जलाकर तुलसीके चबूतरेपर रखने गई। बंगाली लड़की होनेके कारण बचपनसे ही उसने उस नन्हेंसे वृक्षको देवता समझना सीखा है। यहाँ आकर आज वह किसी प्रकार भी अपनेको सँभाल न सकी। गलेमें आँचल लपेट कर प्रणाम करनेके लिए जो बैठी* तो फिर उससे उठा न गया। दोनों हाथ फैलाकर रोते-रोते वह साष्टांग लोट गई।

ज्ञानदा बोली—हे नारायण, हे दयामय, यहींपर तुमने मेरे पिताको लिया था। अब मुझे और मेरी माँको गोदमें लेकर मेरे पिताके पास भेज दो। दुःख-क्लेश अब हमसे नहीं सहा जाता।

९

चैत महीनेके अन्तिम दिन थे, इसीलिए छोटी बहूका मैके जाना नहीं हो सका। महीनेके समाप्त होते ही उनका छोटा भाई उन्हें और माधुरीको ले जानेके लिए आ पहुँचा।

आज दिन अच्छा है, खाने-पीनेके बाद ही यात्राका मुहूर्त था। अतुल घर आया था। इसीलिए स्वर्णमंजरीने उसे भी निमन्त्रण दिया था।

दोपहरको ये दोनों युवक (माधुरीके मामा और अतुल) भोजनके लिए बैठे। स्वर्णमंजरी भी आकर उनके पास बैठ गई। बड़ी साधसे परोसनेका भार उन्होंने माधुरीको दिया था। सबेरेकी आमिष रसोई ज्ञानदासे ही बनवा ली जाती थी, पर छिपाकर। बाहरका कोई पूछता तो स्वर्णमंजरी निःसंकोच कह दिया करती—राम कहो, कहीं ऐसा भी हो सकता है! उसे तो हम रसोईघरमें पैर भी नहीं रखने देते। अतएव ज्ञानदाके लिए परोसनेकी बिलकुल मनाही थी। इसके सिवा अपनी लज्जाके मारे भी वह स्वयं किसीके सामने नहीं निकलती थी। जहाँ तक हो सकता सबकी नजर बचाकर चला करती थी।

अतुलके साथ माधुरीका विवाह होगा, इसीलिए यह सुन्दरी बालिका जिसके अंग-प्रत्यंग सजे हुए थे और जिसे संसारभरकी लज्जाने घेर रखा था जब

* बंगालमें स्त्रियाँ इसी प्रकारसे देवताके सामने प्रणाम करती हैं।

अपने अल्हड़ हाथोंसे परोसते समय भूलपर भूल करने लगी तब उसकी ताई स्नेहके साथ प्यारसे भरी डाँट बतलाते हुए कभी कह देती—दुर मुँहजली, कभी कह देती—दुर अभागी, साथही हँस हँस कर उसे एक-एक बात बतलाने लगती। उसी समय संसारके सभीके पैरों ठुकराई हुई एक और लड़की इसीके लिए रसोई-घरके एक एकांत कोनेमें सिर नीचा किए बैठी सब तरहकी खानेकी चीजें सजासजाकर देने लगी।

स्वर्णने जैसे ही ब्याहकी बात छेड़ी, वह दौड़कर रसोईघरमें जा पहुँची। ज्ञानदाने पूछा—क्या चाहिए बहिन ?

कुछ नहीं दीदी, अब तो मुझसे नहीं होता ! यह कहकर हाथकी थाली-को झमसे जमीनपर पटक कर तेजीसे भाग गई।

दूसरे ही क्षण स्वर्णमंजरीने चिल्लाकर पुकारा—जरा-सा नमक तो दे जा बेटी। लेकिन माधुरी नमक देनेके लिए नहीं आई। उन्होंने फिर पुकारा—क्यों री, तेरे छोटे मामा जो बैठे हैं। फिर भी कोई नहीं आया। अब रोषमें आकर ऊंची आवाजमें कहा—क्या किसीके कानों तक आवाज नहीं पहुँच रही है ? क्या ये लोग उठ जायँ ?

तो भी माधुरी नहीं लौटी। अब ज्ञानदासे चुप न बैठा गया। उसने सोचा कि नमकमें छूत नहीं लगती है इसलिए शायद यह आदेश उसे ही दिया गया है। वह तब अपनी मैली धोतीसे जो जगह जगह फटी हुई थी, सभी अंगोंको सावधानीसे ढकते हुए नमकको हाथमें लेकर धीरे-धीरे चौखटके पास आ खड़ी हुई। दोनों युवकोंमेंसे कोई भी उसे देख न सका। ताईने उसे दो बार पैर तक देखकर धीरेसे पर कठोर स्वरमें कहा—तुझे ले आनेके लिए किसने कहा ?—माधुरी कहाँ गई ?

ज्ञानदा जहाँ खड़ी थी, वहींसे चुपकेसे बोली—पता नहीं, कहाँ चली गई।

इसीलिए तू आई है ? एक ही बात तुझे कितनी बार याद दिलानी पड़ेगी कि तेरा मुँह देखनेसे सात पीढ़ी नरकगामी होती हैं, मेरे सामने तू न आया कर ! अतुल खाने आया है न, इसीलिए तुझे सामने आना ही चाहिए, क्यों ? नमकका पात्र रख कर जा।

पात्र रखकर ज्ञानदा चली गई। वह वहाँसे केवल इसीलिए जा सकी कि धरती माताने फटकर उसे निगल नहीं लिया।

स्वर्णमंजरीने स्वय उठकर नमक परोसा और फिर अपनी जगह बैठ अतुलकी ओर देखकर कहा—तू तो लड़का है, पुरुष है। तुझे कहाँकी लज्जाने आ घेरा कि गर्दन झुकाए बैठा है। खा।

माधुरीके मामाने पूछा—वह कौन है बहनजी? स्वर्णमंजरीने कुछ मुस्करा कर कहा—कोई नहीं, तुम लोग खाओ।

लेकिन अतुलका सारा खाना बेस्वाद हो गया। पूड़ीके कौरको मानो वह किसी तरह गलेके नीचे नहीं उतार सका। उतारता भी तो कैसे? आज माधुरीको देखकर वह भूला हुआ था, इसमें संदेह नहीं। किन्तु ज्ञानदाको भी वह पहचानता था। अब भी ज्ञानदा उससे प्रेम करती है या घृणा, यह बात यद्यपि अतुल ठीक-ठीक नहीं जानता लेकिन एक दिन था जब वह उसे प्राणोंसे भी अधिक प्यार करती थी, इसे तो जानता है। किन्तु उन दिनों भी जिसने कभी उसके सामने जबर्दस्ती आनेकी कोशिश नहीं की, आज वह वही करने आई है, इतने बड़े निर्लज्जतासे भरे अपवादपर अतुल इतनी जल्दी कैसे विश्वास कर लेता?

तीसरे पहर छोटी बहू लड़कीको लेकर मायके चली गई। जाते समय वह मझली जेठानीसे मिलकर नहीं गई। केवल क्षणभरके लिए रसोईघरमें गई और ज्ञानदाके हाथमें दस रुपएका एक नोट रखकर बहुत कुछ चोरकी तरह वहाँसे भाग खड़ी हुई, ज्ञानदाका प्रणाम तक स्वीकार करनेके लिए न रुकी।

घरमें एकमात्र छोटी बहू थी जिसने इस अभागी लड़कीके हृदयको देखा था। पर वह भी आज न जाने कितने दिनोंके लिए दूसरे जगह चली गई। घरमें रहते हुए भी उसने विशेष कुछ किया था, ऐसी बात नहीं—व्यथित होना और व्यथा दूर करनेके लिए सचेष्ट होकर काम करना, दोनों एक बात नहीं है। सब वह नहीं कर सकते, फिर भी छोटी चाचीको जाते देखकर इस बालिकाका अन्तःकरण घोर अन्धकारसे परिपूर्ण हो गया।

आधा वैशाख बीत चुका था। एक दिन अनाथनाथने दफ्तर जानेके समय बड़ी बहू चेहरेपर गृहस्थीकी सारी दुश्चिन्ता लिये हुए आ खड़ी हुई।

अनाथनाथने भयभीत होकर कहा—क्या हुआ भाभी ?

स्वर्णमंजरीने कहा—तुम कर क्या रहे हो देवर, मझली-बहूकी मौत तो आ पहुंची !

अनाथनाथने हाथके हुक्केको झटसे रखकर उतरे हुए चेहरेसे कहा—यह क्या भाभी ? मुझे तो कुछ पता नहीं !

स्वर्णमंजरीने कहा—नहीं, नहीं। ऐसी बात नहीं है। आज ही नहीं मरतीं, परन्तु अधिक दिनों तक नहीं चल सकेंगी, यह मैं बताए देती हूँ। बहुत हुआ तो दस-पन्द्रह दिन। इसके बाद छह महीने साल भरतक लौंडियाका ब्याह न हो सकेगा। परन्तु अपनी माधुरी बेटीका ब्याह मैं इसी आषाढ़के अन्दर कर देना चाहती हूँ। इसके बारेमें मैं किसीकी कोई बात नहीं सुनूँगी। ऐसा सम्बन्ध खोजने पर भी नहीं मिलेगा। इसके सिवा देने लेनेका भी कोई झमेला नहीं। लड़केने स्वयं लड़कीको पसन्द किया है। माँ साली कहेगी—यह लूँगी, वह लूँगी, नहीं तो काम नहीं चलेगा—ऐसा नहीं होनेका। ऐसी सुविधाको क्या आखिरमें देर करके हाथसे जाने दूँगी ?

अनाथनाथने डरसे गर्दन हिलाते हुए कहा—नहीं, नहीं, भला ऐसा कहीं हो सकता है ! हमारी गृहस्थीकी मालिकिन मालिक तुम्हीं सब कुछ हो। अपनी बेटीका ब्याह अपने बहनके लड़केसे करती हो, सो जब चाहो करो, जैसे चाहो करो। मैं कभी ना नहीं कहूँगा भाभी।

स्वर्णने गर्वके साथ कहा—सो तो नहीं कहोगे, जानती हूँ। मेरी बातमें तुमने ना कभी नहीं कहा है। तुम मेरे वैसे देवर नहीं हो। इसीलिए कहती हूँ कि अब जो कहती हूं, वही करो। सकल्प-विकल्प मत करो। जो कोई मिल जाय उसीको पकड़कर ज्ञानदासे अपना पिण्ड छुड़ाओ। ऐसा किये बिना माधुरीका ब्याह किसी तरह नहीं हो सकता। एक तो यों ही पास-पड़ोसके बुरे लोग तरह-तरहकी बातें करते हैं। बादमें हम न जाने किस मुसीबतमें पड़ जायँ। इसे अच्छी तरह सोच समझ लो कि मुर्दा तुम्हारे ही घरका है। फेंकना हो तो फेंको, नहीं तो दुर्गंधके मारे मरो।

बातपर विचार करते-करते अनाथनाथ दफ्तर चले गए और घरका मुर्दा फेंकनेके लिए दूसरे ही दिनसे दौड़ धूप करने लगे और दो चार ऐसे पात्र खोजकर लाने लगे जिनका परिचय अपने मुँहसे देनेमें शायद स्वर्णमंजरीको भी संकोच होता।

बहुत दिनोंके बाद उस दिन दोपहरको स्वर्णमंजरीने दुर्गामणिके कमरेमें प्रवेश किया और पूछा—अब कैसी हो मझली बहू ?

बड़ी कठिनाईसे करवट बदल कर दुर्गामणिने हाथको जरा उलट कर कहा—अब कैसी वैसी क्या दीदी, आशीर्वाद दो कि अधिक दिनों तक भुगतना न पड़े

स्वर्णमंजरीने सहानुभूतिके स्वरमें कहा—नहीं, नहीं, घबरानेकी कौन-सी बात है, अच्छी क्यों नहीं होगी !

दुर्गामणि चुप रहीं, प्रतिवाद नहीं किया। स्वर्णने अब मतलबकी बात छेड़ी। कहा—लड़की काफी सयानी है न, इसलिए पात्र अगर कम उम्रका हुआ तो ठीक नहीं लगेगा मझली बहू। उसके माता पिता नहीं है, इसलिए उस बेला मगरासे वह स्वयं लड़की देखने आवेगा, कहला भेजा है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि माँ-बाप अगर अमर न हों तो पात्रकी इस उम्रमें उनका जीता रहना असंभव है। स्वर्ण कहने लगी—अब काली माई करें, लड़की उन्हें पसन्द आ जाए। तभी छोटे देवरकी दौड़ धूप सार्थक होगी ! उसके बाद लेने-देनेकी बात है, सो मैं कहती हूँ कि—

बात समाप्त भी न हो पाई कि आग्रहके कारण दुर्गामणि उठ बैठीं और छल-छलाई हुई आँखोंसे देखते हुए बोलीं—आशीर्वाद दो दीदी, कि बातचीत न टूटे और मैं जिससे देख जा सकूँ, यह कहते-कहते उनके नेत्रोंसे दो बूँद आँसू टपक पड़े।

स्वर्णने कहा—आशीर्वाद क्यों नहीं दूँगी मझली बहू। दिन रात भगवानसे प्रार्थना करती हूँ कि नारायण इस लड़कीको ठिकाने लगा दो ! देखोगी क्यों नहीं मझली बहू—मैं कहती हूँ तुम दामादका मुँह देखकर—

दुर्गामणिने चुपचाप आँचलसे आँखें पोंछ लीं। स्वर्ण जम्हाई ले, चुटकी बजा, जरा इधर उधर करके बोली—बाल-बच्चोंका परिवार है—सुननेमें बेद सौ पाते हैं, नहीं तो कुछ भी नहीं है, सब तो जानती हो। अपनी लड़कीके दोनों हाथ कैसे एक करेंगे, इसी चिन्तामें सूख कर काँटा होते जा रहे हैं। ऊपरसे ज्ञानदा भी है। सब कुछ तो जानती हो मझली बहू। इसीलिए देवर कह रहे थे कि—लज्जाके मारे खुद तो तुमसे कह नहीं सकते—तुम्हारे हिस्सेके मकानको गिरवी रखे बगैर तो खर्च-वर्चका इन्तजाम नहीं हो सकता। तुम्हें कुछ नहीं करना होगा। केवल दस्तखत भर कर देने होंगे। खाली हाथ कोई भी तो रुपए उधार

नहीं देना चाहता। ऐसा घोर कलिकाल आया है कि तुम मरो या जियो, कोई किसीका विश्वास नहीं करेगा।

दुर्गामणिने तुरन्त कहा—मैं अब के दिनकी हूं दीदी। मुझसे जो कुछ भी करनेके लिए कहोगी, करूँगी। केवल इतना ही ध्यान रखना दीदी, मेरी ज्ञानदा कहीं बिल्कुल अथाह समुद्रमें न बह जाय।

नहीं नहीं, वह कैसे जायगी मझली बहू! बाप-चाचा, माँ-ताई क्या कोई पराए होते हैं? अगर होते, तो हम लोग ही क्यों सोचके मारे आहार निद्रा त्याग देते? हमारे लिए ज्ञानदा और माधुरी दो नहीं हैं। बेटी ज्ञानदा, अपनी माँकी आँखें पोंछ तो दे जरा। बैठकर इन्हें पंखा भी झल दे। इतना कहकर एक साथ आशा और भरोसा देकर वह बाहर चली गई।

आज बहुत दिनोंके बाद दुर्गामणिके मृत्यु-म्लान चेहरेपर आनन्दकी दीप्ति दिखाई पड़ी। लड़कीके हाथसे पंखा छीनकर अपने जीर्ण हाथको उसके सिरपर फेरते हुए स्नेहमय स्वरमें कहा—यहीं लेट कर जरा सो तो ले बेटी। इसके बाद लड़कीको गोदमें खींचकर कहने लगीं—ऐसी अभागिनके पेटमें तू पैदा हुई बेटी कि इसी उम्रमें काम करते-करते और चिन्ताके मारे तेरा शरीर सूख गया। अगर जनमी ही थी तो लड़का होकर क्यों नहीं जन्मी बेटी!

आज बहुत दिनोंके बाद जननीका स्नेह पाकर लड़कीकी दोनों आँखोंसे चुप-चाप आँसुओंकी धारा बह चली। कुछ देरके लिए वे दोनों जरा सो गई थीं। अचानक माँके हिला देनेपर ज्ञानदा हड़बड़ा कर उठ बैठी।

उठ बेटी, उठ, जल्दी कर। अब दिन कहाँ है री! मेरी टिनकी सन्दूकमें शायद थोड़ा-सा साबुन होगा। जा, उसे लेकर जल्दीसे तालाबमें हाथ मुँह धो आ। नहीं बेटी, तुझमें यह बड़ा दोष है कि तू किसीकी बात नहीं सुनती। मैं कहती हूँ, जा, जल्दी कर।

माँकी आज्ञाके अनुसार ज्ञानदाने टिनका बाक्स खोला। उसमेंसे बहुत दिनोंका पड़ा हुआ साबुनका टुकड़ा और अँगोछा निकाल कर वह म्लान मुखसे तालाबपर चली गई। माँ कहती गई—जरा मल-मल कर नहाना बेटी, लापरवाही न करना, जल्दी आना बेटी। पता नहीं वे लोग कब आ पहुँचें।

तालाबपरसे लौट कर ज्ञानदा अवाक हो गई। मरणासन्न माँ इसी बीच

बिस्तरसे उठकर न जाने कैसे ट्रंकके पास पहुँच गई थीं और उसे खोले एक रंगाई हुई साड़ी और ब्लाउज निकाल कर बैठी थीं। लड़कीके आते ही कहा—भूल हो गई री! तेरे बाल तो बाँधनेको रह ही गए और तू नहीं आई। आ, झटसे बाँध दूँ।

कन्याने कातर कण्ठसे कहा—नहीं माँ, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, तुमसे यह न होगा। तुम लेटो, मैं खुद ही बाँधे लेती हूँ। तुम्हारी दोहाई माँ।

लड़कीकी बात सुनकर माँने आज जरा मुस्करा दिया। गर्दन हिलाकर बोलीं—हूँ, मुझसे नहीं होगा? जानती है ज्ञानदा, बाल बँधवानेके लिए इसी मझली बहूको टोले भरकी लड़कियाँ घेरे रहा करती थीं। मैं बाल नहीं बाँध सकूँगी! ले, आ, देर मत कर। यह कह कर उन्होंने जबर्दस्ती पास बैठकर बड़े यत्न और स्नेहसे अपने हाथोंसे अच्छी तरह ज्ञानदाके बाल बाँध दिये। शायद माँके हाथों ज्ञानदाका यही अन्तिम शृंगार था। पैरोंमें महावर, माथेपर कुमकुमकी बिन्दी और होठोंमें रंग तक लगाना न भूलीं। फिर उसके मुँहको इधर उधर घुमा कर एक चुम्बन अंकित कर दिया। इसके बाद अचानक उनके मनमें आया—कौन कहता है कि मेरी लड़की देखनेमें सुन्दरी नहीं है। जरा साँवली अवश्य है। किन्तु किसकी लड़कीका ऐसा चेहरा है, ऐसी आँखें हैं!

दुर्गामणिका ध्यान इधर नहीं गया कि किसकी लड़की माँको इस तरह प्यार करती है? किसका हृदय मातामें ऐसा बसा हुआ है! किस लड़कीके हृदयमें माताके प्रति इतनी अपार भक्ति और आन्तरिक स्नेह है, जिसकी दीप्ति उसकी समस्त कुरूपताको ढँक कर इस तरह बाहर विकसित हो उठती है? इन सारी बातोंका उन्हें पता ही नहीं चला। किन्तु लड़कीके बदनपर एक भी गहना नहीं पहना सकीं, इसके लिए पहिले जो क्षोभ उत्पन्न हुआ था, वह किस प्रकार विलीन हो गया, यह दुर्गामणिको मालूम भी नहीं हुआ। गहनोंका अभाव बहुत बड़ा अभाव है, ऐसा उन्हें नहीं लगा।

उस समय भी साँझ होनेमें काफी देर थी, लेकिन दुर्गामणिको किसी भी तरह लेटनेकी इच्छा नहीं हुई। सारे दुःखोंको भूलकर लड़कीको सामने लिए बैठी रहीं।

ज्ञानदाको देखनेके लिए आनेवाले हैं, यह सुनकर पड़ोसी नीलकण्ठकी स्त्री

आई, तरंगिणी दीदी आई। यथासमय लड़कीके लिए बुलावा आया। स्त्रियाँ बगलवाले कमरेसे झाँक-झाँक कर देखने लगीं।

आँखोंकी आड़में एक मात्र योग्य सन्तानपर आपरेशन होनेपर माँ जिस तरह समय काटती है दुर्गामणि उसी तरह मैले बिस्तरपर अकेली बैठी रहीं।

वर और अगुआ महाराज जलपानसे निवृत्त होकर निकले, दुर्गामणिको इस बातका पता चल गया। उनकी किराएकी गाड़ी धड़-धड़, खड़-खड़ करती चली-गई, यह भी उन्होंने सुना। इसके बाद तरंगिणी दीदीने कमरेमें आकर एक लम्बी साँस छोड़ते हुए कहा—नहीं, लड़की उन्हें पसन्द नहीं आई।

आँखें मूँदकर दुर्गामणि लेट गई, एक भी प्रश्न नहीं किया।

दीदी करुण स्वरमें कहने लगी—भला हाड़-हाड़ दिखाई पड़नेवाली लड़कीको कोई पसन्द करता है? मैंने कहा मझली बहू, ज्ञानदाको दो दिन खिलाओ-पिलाओ, बदनमें जरा ताकत आ जाय। हम लोगोंने बचपनमें देखा तो है, यह लड़की क्या ऐसी ही थी? ज्वरसे बच्चीके हाड़-पिंजर बाहर आ गये हैं। एक साल सब्र करके इसकी जरा देख-भाल तो करो, देखना फिर लड़की कैसी हो जाती है! पड़ी न रहेगी।

बात तो ठीक है। लेकिन इसके लिए सुविधा कहाँ? रुपए कहाँ? साल-भर इन्तजार करके इसकी ठठरीको ढँकनेके लिए समय कहाँ? लड़की पन्द्रहवेंमें पड़ी है। पुरखे प्रति दिन नरकके गहरेसे गहरे कुएँमें गिरते जा रहे हैं। किसी बड़े कुलीनकी लड़की है नहीं, इसीलिए गाँवके लोग बिरादरीसे निकाल देनेकी धमकी दे रहे हैं। प्रतीक्षा करनेके लिए क्षणभर भी मौका नहीं है। बस—हटाओ, इसे विदा करो। जैसे भी हो, जिस किसीके भी हाथ हो—वैधव्यको अनिवार्य जानकर भी, असहनीय दु ख और दारिद्र्यको आँखोंके सामने जीता जागता देखकर भी इसे सौंप कर जाति-धर्म और पुरखोंके परलौकिक प्राण बचाओ!

उस समय तक चिराग नहीं जला था। उस अँधेरेमें छिपकर ज्ञानदा अपनी लांछित साज-सज्जाको खोल डालनेके लिए चुपचाप कमरेमें आई। दुर्गामणि मुर्देकी तरह अपने बिस्तरपर पड़ी रहीं। थोड़ी देरके बाद लड़की घोर अपराधिनीकी तरह चुपचाप माँके चरणोंके समीप जा बैठी। लेकिन जानते हुए भी दुर्गामणि कुछ नहीं बोलीं। इसके बाद इसी तरह चुपचाप बहुत देर तक प्रतीक्षा करके भूखी पीड़ित कन्या थकावटके मारे वहीं लुढ़ककर सो गई। सब कुछ अनुभव करने पर भी माँके हृदयमें रंचमात्र भी दयाका संचार नहीं हुआ।

१०

दुर्गामणिकी ऐसी हालत थी कि कहा नहीं जा सकता। तिसपर जब टोलेकी सर्वशास्त्री-दर्शिनी वृद्धाओंके मुँहसे सुना कि सयानी अविवाहिता कन्या पुरखोंको ही दिन-ब-दिन नरकमें नहीं ढकेल रही है बल्कि मरनेपर भी वह उनके किसी काम नहीं आवेगी—उसके हाथका जल और अग्नि दोनों अस्पृश्य होंगे, उस समय शास्त्र-वचन सुनकर इस आसन्न-परलोक-यात्रीका पीला चेहरा कुछ देरके लिए कागजकी तरह सफेद हो गया।

बहुत दिनोंसे निरन्तर आघात सहन करते-करते दुर्गामणिके स्नेहका स्थल मानो स्पन्दहीन होता जा रहा था। जिस कन्याके प्रति उनके प्यारकी सीमा नहीं थी, उसीको देखकर वह जल उठा करती थीं। आज इस बातको सुनकर परलोकके कटक इस लड़कीके विरुद्ध उनका समस्त चित्त पाषाणके समान कठोर हो उठा। माया-ममताका लेश भी बाकी नहीं रहा।

अनाथनाथको बुलाकर कहा—सुनती हूँ कि उस मुहल्लेके गोपाल भट्टाचार्य फिर ब्याह करनेवाले हैं। मेरे मरनेके पहिले एक बार अन्तिम चेष्टा नहीं कर सकोगे देवर?

इस बातपर सोलहों आने अविश्वास करके अनाथनाथने उड़ा दिया और कहा—नहीं नहीं, गोपाल भट्टाचार्य अब क्या ब्याह करेगा? किसीने तुमसे हँसी की है भाभी?

दुर्गामणिने लम्बी साँस लेकर कहा—मुझसे कौन हँसी करेगा देवर! वे पुरुष हैं, बेटा होकर जन्म लिया है। उनकी उम्र पूछनेवाला कौन है? नहीं, नहीं, इतनी उम्रमें बहुतेरे ब्याह करते हैं देवर। मैं तुमसे विनती करती हूँ, जरा जाकर उनका पता लगाओ। जीवित रहते तो कुछ नहीं पाया, मरनेके बाद क्या थोड़ी-सी आग भी नहीं पाऊँगी!

अब दुर्गामणिकी सभी आशंकाओंमें यही सबसे बड़ी आशंका हो उठी है। उनके मनमें बार-बार यही आता कि मैंने जो इस लड़कीको गर्भमें धारण किया, इतने दुःखसे इसका लालन-पालन किया, अन्तकालमें क्या यह सब निष्फल हो जायगा! जिसके हाथसे आगतक मिलनेका ठिकाना नहीं, ऐसी लड़कीने क्यों जन्म लिया?

उद्वेगके मारे वे प्रायः उठकर बैठ गईं और बोलीं—देवर, जहाँ भी हो जिस किसीके भी हाथ हो, मेरे जिन्दा रहते सौंप दो। मैं कहती हूँ कि मेरे इस अन्तिम आशीर्वादसे तुम राजा होओगे देवर !

इस विषयमें देवरका खुद अपना स्वार्थ भी कम नहीं था। वे उसी दिन गोपाल भट्टाचार्यका पता लगाने गये और बात सच है जानकर कुछ देरके लिए स्तम्भित हो रहे। केवल सच होनेके कारण ही नहीं, बल्कि इसी बीच खबर पाकर चार-पाँच कन्यादायग्रस्त लोग बातचीत भी कर गये हैं इसलिए भी !

इतनी मुसीबतका ब्याह, तो भी जिस किसीने सुना कि गोपालको कन्या-दान किया जायगा, उसीने छि. छि' किया। परन्तु माताका मन इससे विचलित नहीं हुआ। वह परलोक-यात्राके लिए तैयार बैठी थीं, शास्त्रीय विधिके अनुसार उस यात्राके लिए जिस तरहसे भी हो पाथेय संग्रह कर लेना नितान्त आवश्यक था !

बंगालीकी लड़की—कितने जन्मजन्मान्तरसे शास्त्रकी बलि-वेदीपर लड़कियोंकी बलि देती आई है, वह आज कैसे पैर पीछे रखती ? और फिर दुःखके ऊपर और दुःख। उस गोपालने कहला भेजा कि वह लड़की देखकर ब्याह करेगा ! इस अभागे देशमें उसे भी शौक है और लड़कियोंको देख-सुनकर ब्याह करनेका सुभीता भी है ?

गर्मियोंकी सूखी घास वर्षाका एक पानी पानी पाते ही जिस तरह पनप उठती है, आशाके रंचमात्र सकेतसे ही दुर्गामणिकी मरी हुई आशा पलक मारते ही जी उठी। देवरका हाथ पकड़कर—विनती करके बोलीं—देवर, तुम मेरे छोटे भाईकी जगह हो, ऐसा करो कि जिससे अन्तकालमें इस अभागीके हाथों मुझे आग मिल सके। जहाँ तक हो सके अगली पँचें किसी तरह टलने न पावे। तुम कह आओ कि आज वे लड़की देखकर बातचीत पक्की कर जायँ।

ब्याह हुए बगैर माँका क्रिया-कर्म उससे नहीं कराया जा सकेगा। शास्त्रमें इसका निषेध है। इस बातको सुनकर ज्ञानदाने खाना-नहाना छोड़ दिया। वह भी तो बंगालीकी लड़की है, उसके भी हृदयमें अविश्राम चिताकी आग धधकने लगी।

तीसरे पहर ज्ञानदा रसोईघरमें अकेली बैठी माँके लिए पथ्य तैयार कर रही थी कि रूपकी परीक्षा देनेके लिए एक बार फिर पुकार हुई।

१०

दुर्गामणिकी ऐसी हालत थी कि कहा नहीं जा सकता। तिसपर जब टोलेकी सर्वशास्त्री-दर्शिनी वृद्धाओंके मुँहसे सुना कि सयानी अविवाहिता कन्या पुरखोंको ही दिन ब-दिन नरकमें नहीं ढकेल रही है बल्कि मरनेपर भी वह उनके किसी काम नहीं आवेगी—उसके हाथका जल और अग्नि दोनों अस्पृश्य होंगे, उस समय शास्त्र-वचन सुनकर इस आसन्न-परलोक-यात्रीका पीला चेहरा कुछ देरके लिए कागजकी तरह सफेद हो गया।

बहुत दिनोंसे निरन्तर आघात सहन करते-करते दुर्गामणिके स्नेहका स्थल मानो स्पन्दहीन होता जा रहा था। जिस कन्याके प्रति उनके प्यारकी सीमा नहीं थी, उसीको देखकर वह जल उठा करती थीं। आज इस बातको सुनकर परलो-ककी कंटक इस लड़कीके विरुद्ध उनका समस्त चित्त पाषाणके समान कठोर हो उठा। माया-ममताका लेश भी बाकी नहीं रहा।

अनाथनाथको बुलाकर कहा—सुनती हूँ कि उस मुहल्लेके गोपाल भट्टाचार्य फिर ब्याह करनेवाले हैं। मेरे मरनेके पहिले एक बार अन्तिम चेष्टा नहीं कर सकोगे देवर?

इस बातपर सोलहों आने अविश्वास करके अनाथनाथने उड़ा दिया और कहा—नहीं नहीं, गोपाल भट्टाचार्य अब क्या ब्याह करेगा? किसीने तुमसे हँसी की है भाभी?

दुर्गामणिने लम्बी साँस लेकर कहा—मुझसे कौन हँसी करेगा देवर! वे पुरुष हैं, बेटा होकर जन्म लिया है। उनकी उम्र पूछनेवाला कौन है? नहीं, नहीं, इतनी उम्रमें बहुतेरे ब्याह करते हैं देवर। मै तुमसे विनती करती हूँ, जरा जाकर उनका पता लगाओ। जीवित रहते तो कुछ नहीं पाया, मरनेके बाद क्या थोड़ी-सी आग भी नहीं पाऊँगी!

अब दुर्गामणिकी सभी आशकाओंमें यही सबसे बड़ी आशंका हो उठी है। उनके मनमें बार-बार यही आता कि मैंने जो इस लड़कीको गर्भमें धारण किया, इतने दुःखसे इसका लालन-पालन किया, अन्तकालमें क्या यह सब निष्फल हो जायगा! जिसके हाथसे आगतक मिलनेका ठिकाना नहीं, ऐसी लड़कीने क्यों जन्म लिया?

उद्वेगके मारे वे प्रायः उठकर बैठ गईं और बोलीं—देवर, जहाँ भी हो जिस किसीके भी हाथ हो, मेरे जिन्दा रहते सौंप दो। मैं कहती हूँ कि मेरे इस अन्तिम आशीर्वादसे तुम राजा होओगे देवर!

इस विषयमें देवरका खुद अपना स्वार्थ भी कम नहीं था। वे उसी दिन गोपाल भट्टाचार्यका पता लगाने गये और बात सच है जानकर कुछ देरके लिए स्तम्भित हो रहे। केवल सच होनेके कारण ही नहीं, बल्कि इसी बीच खबर पाकर चार-पाँच कन्यादायग्रस्त लोग बातचीत भी कर गये हैं इसलिए भी!

इतनी मुसीबतका ब्याह, तो भी जिस किसीने सुना कि गोपालको कन्या-दान किया जायगा, उसीने छि छि किया। परन्तु माताका मन इससे विचलित नहीं हुआ। वह परलोक-यात्राके लिए तैयार बैठी थीं, शास्त्रीय विधिके अनुसार उस यात्राके लिए जिस तरहसे भी हो पाथेय संग्रह कर लेना नितान्त आवश्यक था!

बंगालीकी लड़की—कितने जन्मजन्मान्तरसे शास्त्रकी बलि-वेदीपर लड़कियोंकी बलि देती आई है, वह आज कैसे पैर पीछे रखती? और फिर दुःखके ऊपर और दुःख। उस गोपालने कहला भेजा कि वह लड़की देखकर ब्याह करेगा। इस अभागे देशमें उसे भी शौक है और लड़कियोंको देख-सुनकर ब्याह करनेका सुभीता भी है!

गर्मियोंकी सूखी घास वर्षाका एक पानी पानी पाते ही जिस तरह पनप उठती है, आशाके रंचमात्र संकेतसे ही दुर्गामणिकी मरी हुई आशा पलक मारते ही जी उठी। देवरका हाथ पकड़कर—विनती करके बोलीं—देवर, तुम मेरे छोटे भाईकी जगह हो, ऐसा करो कि जिससे अन्तकालमें इस अभागीके हाथों मुझे आग मिल सके। जहाँ तक हो सके अगली पाँचें किसी तरह टलने न पावे। तुम कह आओ कि आज वे लड़की देखकर बातचीत पक्की कर जायँ।

ब्याह हुए बगैर माँका क्रिया-कर्म उससे नहीं कराया जा सकेगा। शास्त्रमें इसका निषेध है। इस बातको सुनकर ज्ञानदाने खाना-नहाना छोड़ दिया। वह भी तो बगालीकी लड़की है, उसके भी हृदयमें अविश्राम चिताकी आग धधकने लगी।

तीसरे पहर ज्ञानदा रसोईघरमें अकेली बैठी माँके लिए पथ्य तैयार कर रही थी कि रूपकी परीक्षा देनेके लिए एक बार फिर पुकार हुई।

स्वर्णने खुद उतावलीके साथ आकर कहा—अरी ज्ञानदा, उसे छोड़कर जल्दी आ, वे लोग देखने आए हैं। केवल एक साड़ी पहन कर चली आ। वे लोग ऐसे ही देख जायँगे। इतना कहकर वह तेजीके साथ चली गई।

अनाथ तबतक दफ्तरसे नहीं लौटे थे। इसीलिए स्वागत-सत्कारका भार उसीपर था। देखने आये थे वह महोदय स्वयं और उनका एक दूरके रिश्तेका भानजा। कम उम्रवालोंमें सौन्दर्यकी परख अधिक होती है, इसीलिए अक्लमन्दी करके गोपाल अपने भानजेको साथ लाया था और भानजेके परामर्शके अनुसार लड़कीको जैसी है वैसी ही दिखानेका आदेश हुआ था। क्योंकि सजाकर दिखानेमें धोखा हो सकता है।

भानजेको छह बजेकी गाड़ीसे कलकत्ता जाना था, इससे वह जल्दी मचाने लगा। स्वर्ण आड़में खड़ी होकर दबी जबानसे बार-बार पुकारने लगी, पर ज्ञानदा नहीं आई। केवल एक साड़ी पहनकर आनेमें जितनी देर लगती है उससे अधिक विलम्ब होते देखकर नौकरानी गई और ज्ञानदाको खींच लाई। उसकी ओर देखकर ताई क्रोधके मारे आपेसे बाहर हो गई। ऊँची आवाजमें बोली—खोल यह सब। किसने तुझसे इस तरह सज-धज कर आनेके लिए कहा है? जा, तुरन्त खोल आ—

जो लोग लड़कीको देखने आए थे, एकाएक इस तरहकी चीख-पुकार सुनकर उन्होंने अचरजसे गरदन बढ़ाकर देखा। मामला क्या है, यह समझकर युवकने कहा—तो ऐसे ही ले आइए और अधिक देर करनेकी गुंजाइश नहीं है।

नौकरानीने अब ज्ञानदाको लाकर सामने खड़ा कर दिया तब उसका विचित्र साज-शृङ्गार देखकर युवक बड़ी मुश्किलसे अपनी हँसी रोककर उठ खड़ा हुआ और कल खबर दूँगा, यह कहकर मामाको लेकर चला गया। जलपानका आयोजन किया था। पर गाड़ी छूट जानेके डरसे उन्हें उसे छूने तककी फुर्सत नहीं मिली।

कल खबर देनेका अर्थ क्या है, यह बात सबकी समझमें आ गई। ताईने चिल्ला-चिल्ला कर गालियाँ बकते-बकते क्षण-भरमें सारे मुहल्लेको मानो सिरपर उठा लिया।

मझली बहूकी हालत अच्छी नहीं है, इस आशंकासे मुहल्लेके चार छह आदमी वहाँ आ पहुँचे और उसी समय न जाने कहाँसे अकस्मात् अतुल भी आकर हाजिर हो गया। वह भी छह बजेकी गाड़ीसे कलकत्ता जा रहा था। रास्तेमें चिल्लाहट सुनकर ठीक इसी आशंकासे आ पहुँचा था।

अतुलको देखकर स्वर्णका क्रोध सौगुना और क्षोभ हजार गुना बढ गया। उस दुबली पतली संकुचित, भयसे मृतकल्प अभागी लड़कीको जोरसे गर्दन पकड़कर उन्होंने अतुलके मुखके पास ला दिया और गरज कर कहा—देख अतुल, जरा एक बार देख ! अभागी सौको खा बैठनेवाली बँदरियाके चेहरेको तो एक बार देख !

सचमुच ही उसके चेहरेको देखकर हँसी रोकना कठिन था। उसने होठोंमें लगानेका रंग गालोंमें और गालोंका ठुड्डीमें लगा लिया था। ललाटमें जो बिन्दी लगानी चाहिए थी, उसे बीच माथेमें लगा लिया था। सूखे बालोंको उतावलीमें प्याली भर तेल उड़ेलकर बाँधना चाहा था। उसकी दोनों कनपटियोंमें उस समय भी तेल चू रहा था।

दो-एक लड़कियाँ बगलसे खिलखिला कर हँस पड़ीं। एक लड़कीकी गोदमें एक बच्चा था। उसने तोतली बोलीमें कहा—गिनी बुआ छवांग (स्वाँग) बनी है। सुनकर वहाँ उपस्थित सभी लोग एक बार फिर खिलखिला कर हँस पड़े।

अतुलको ऐसा लगा मानो किसीने लाल सलाखोंसे उसके कलेजेको छेद दिया है। बहुत दिनोंसे इस तरहके प्रकाशमें ज्ञानदाके चेहरेको इतना स्पष्ट उसने नहीं देखा था। केवल दूसरोंके मुँहसे सुना था कि ज्ञानदाका चेहरा रोगसे बदसूरत हो गया है। लेकिन वह इतना बदसूरत हो गया है, इसकी कल्पना उसने स्वप्नमें भी नहीं की थी। एक दिन जब स्वयं अतुल भीषण बीमारीसे मरणासन्न हो गया था, तब इस मुखको उसने प्यार किया था। उस प्यारमें आँखोंका नशा नहीं था, कृतज्ञताका उच्छ्वास नही था—निष्कपट भावसे समस्त हृदय उड़ेलकर ही उसने प्यार किया था। आज जब अकस्मात् उसने देखा कि उस मुखके ऊपर यमराज डिगरी इजरा कराके आखिरी नोटिस तामील कर गए हैं, तब क्षण-भरके लिए वह अपने आपको भूल गया। मुँहसे कोई बात निकालने जा रहा था, लेकिन स्वर्णके पंचम स्वरमें उसकी आवाज दब गई।

एँ ? रडीको भी तूने मात दे दी ! घाटका एक मुर्दा, उसे मोहनेके लिए तू इस तरहका स्वाँग बनाकर आई ! मोह पाई क्या ? मुँहपर लात मारकर चला गया न !

किसीने पूछा—किसने इस तरह भूतका-सा चेहरा बना दिया बड़ी बहू ? शायद बूढेको पसन्द नहीं आई।

उसकी ओर देखकर गरजती हुई स्वर्ण बोली—अपने आप सजावट की है ? दूसरा कौन सजा देगा ? माँ तो अचेत पड़ी है। कह दिया कि एक साड़ीभर पहनकर चली आ। सो पसद नहीं आया। सोचा कि बन ठनकर आये बगैर बूढेका मन न भरेगा। तनपर पहननेके लिए है तो यही छपाई हुई साड़ी और अतुलकी दी हुई दो चूड़ियाँ। इन्हींको दिनभरमें दस बार उतार कर रखती है और दस बार पहनती है। इन चूड़ियोंको पहनकर निकलनेमें मुँहजलीको शर्म भी नहीं आती। हट जा, सामनेसे दूर हो जा!

बेहया लड़कीके इस निर्लज्जतापूर्ण चरित्रकी आलोचना करके छिः छि. करते हुए सभी लोग चले गए। केवल उन अन्तर्यामीके ही नेत्रोंसे सम्भवत एक बूँद चू पड़ा, जिनसे कोई बात छिपी नहीं रहती। केवल वे ही इस बातको जान गये कि जो लड़की जन्मसे लेकर आज तक लज्जाके मारे सिर उठाकर बोल तक नहीं सकती थी, वही आज किस तरह सारी लाजको लात मारकर अपने इस स्वास्थ्य और सौन्दर्यहीन शरीरको सजा ले आई थी, उस अत्यन्त वृद्धके चरणोंपर डालकर बेचनेके लिए। लेकिन बिक नहीं सकी, चालाकी पकड़में आ गई। वे सभी छि छिः करके, धिक्कार देकर चले गये। किसीने ज्ञानदाको क्षमा नहीं किया। किन्तु प्रत्येक व्यक्तिके अन्तःकरणमें बैठे जो सदा सबके पाप-पुण्यका विचार किया करते हैं, उन्होंने सम्भवतः उस अभागी बालिकाके इस अपराधका भार अपने श्रीहस्तोंमें ले लिया।

ज्ञानदा उठ खड़ी हुई। वह कभी दूसरोंके सामने रोई नहीं थी। लेकिन आज अतुलके सामने उसकी आँखोंसे आँसू झरने लगे। साथ ही एक भी बातकी सफाई उसने नहीं दी और किसीकी ओर देखा भी नहीं। चुपचाप आँखें पोछते हुए वह चली गई।

कलकत्ता जानेके लिए अब कोई गाड़ी नहीं थी। इसलिए शामको अतुल घर लौट गया। रास्तेमें छोटी मौसीकी सबसे अन्तमें कही गई बात ही सब बातोंको ढँककर बारम्बार याद आने लगी। उस दिन मायके जाते समय उन्होंने अतुलको एकान्तमें बुलाकर कहा था—हीरेको फेंककर जो आदमी काँचको गाँठमें बाँधता

है उसके मनस्तापकी सीमा नहीं रहती भैया! तब अतुल इस बातको ठीक तरहसे समझ नहीं पाया था। लेकिन आज उसे इस बातमें सन्देह नहीं रह गया कि यह बात उसीको लक्ष्य करके कही गई थी। लज्जाहीन कहकर आज सभी लोगोंने जिसे निन्दा करके विदा कर दिया, उसकी लज्जा-शरमकी सीमा-रेखा कहा है आज अतुलको वह बात भी स्मरण हो आई।

अभी भोर नहीं हुआ था। अनाथनाथ बुलाने आए—मँझली भाभीका दाह-सस्कार करना होगा।

चलिए, चलें। यह कहकर अतुल घरसे निकल पड़ा। उसने जाकर देखा कि डेढ वर्ष पहिले पिताके दोनों चरणोंको गोदमें लिये हुए तुलसीकी वेदीके समीप ज्ञानदा जिस तरह बैठी हुई थी, आज भी उसी तरह नीरव भावसे माताके दोनों चरणोंको गोदमें लिए बैठी है। केवल एक बार छोड़कर जीवनमें उसे किसीने कभी चंचल होते नहीं देखा था जब कि उसने अतुलके ही चरणोंपर पड़कर बार-बार माथा पटका था। अतएव उसके इस घोर मौनके कारण किसीके मनमें वैसी कोई बात नहीं आई। उधर किसीका ध्यान ही न था, दाह-सस्कारके आयोजनमें ही पास-पड़ोसके लोग व्यस्त थे।

यथासमय अर्थीको लेकर लोग श्मशानकी ओर चले। सबके पीछे ज्ञानदा भी गई। दुखियाकी बेटी थी, इसलिए टोलेकी कोई भी स्त्री उसके साथ नहीं गई। जानेका विचारतक किसीके मनमें नहीं आया।

वर्षा ऋतुकी भरी हुई भागीरथी श्मशानके ठीक नीचेसे ही तीव्र वेगसे प्रवाहित हो रही थी। माताका अन्तिम सस्कार कन्याने नीरव-भावसे ही सम्पन्न किया। चिता जब धू-धू करके जल उठी तब वह पुरुषोंकी भीड़से हटकर नीचे उतर जलके किनारे जा बैठी। उसे किसीने मना नहीं किया। कोई वैसी बात नहीं थी कि लोग उसे रोकते। बल्कि लोगोंको निश्चित रूपसे इसी बातका अनुभव हुआ कि अपने इस घोर शोकके दृश्यको दृष्टिपथसे परे करनेके विचारसे ही ज्ञानदा नीचे उतर गई है। इसलिए क्षणिक समवेदनामें सभीने 'आहा' कहकर लम्बी साँस ले ली।

यह चिर दिनकी शान्त, परम सहनशील लड़की कोई अनहोनी बात कर बैठ सकती है, इस बातकी आशंका किसीको नहीं हुई। अतुलको भी नहीं हुई। तो भी भागीरथीके अत्यन्त प्रबल प्रवाहके बिलकुल निकट बैठते देख उसके हृदयका

अभ्यन्तर न जाने कैसा हो उठा। एक बार सोचा, ज्ञानदाको ऐसा करनेसे रोके, एक वार सोचा उसके पास जाकर खड़ा हो जाय। परन्तु लज्जा और संकोचके मारे कुछ भी नहीं कर सका।

आगकी आँचसे बचकर जहाँ सब लोग बैठे थे, अतुल वहीं जा बैठा। सामनेकी प्रज्वलित चिताको देखकर सहसा उसके मनमें चिर दिनका पुराना प्रश्न फिर नया होकर जाग्रत हो उठा—कल जो था, आज वह नहीं है। आज भी जो था उसका यह नश्वर शरीर धीरे धीरे जलकर भस्म हुआ जा रहा है। अब उसे पहचाना ही नहीं जा सकता। तो भी उस शरीरको केन्द्र करके न जाने कितनी आशाएँ, कितनी आकांक्षाएँ, कितने भय, कितनी चिन्ताएँ, थीं! वे सब कहां गईं? एक निमेषमें कहाँ अन्तर्हित हो गईं! तो उनका दाम क्या है? और मरनेमें ही कितना समय लगता है?

सहसा उसका पिछला जीवन उसकी आँखोंके सामने नाच उठा। लगभग तीन साल पहिले वह भी तो मृतप्राय हो उठा था। लेकिन वह मरा नहीं। उसके अनजाने ही उसकी दृष्टि चिताके पीले धुएँकी तरंगित यवनिकाको भेदकर चली गई। उसे याद आया कि उस दिन जिसने मरने नहीं दिया था, वह वही है, वही जो जाह्नवीके मटमैले जलमें अपनी अस्पष्ट छाया बिखेरे मूर्तिमती शोककी तरह बैठी है—जिसके रूखे केश और मैला आँचल, हवामें उड़ रहे हैं।

उसकी दोनों आँखें छलछला उठीं। मन ही मन बोल उठा—भाड़में जाय रूप! रूपका ही यदि इतना दाम है तो तीन वर्ष पहिले रूपके बाजारमें वह स्वयं भी तो दिवालिया हो गया था। उन दिनों घनिष्ठसे भी घनिष्ठ सम्बन्धी घृणासे उसके मुँहकी ओर देख नहीं सकते थे।

किस प्रकार समय कट रहा था, इसका ज्ञान अतुलको नहीं था। चिताकी आग कब मन्द पड़ने लगी, इसे भी उसने नहीं देखा। उसकी समस्त दृष्टि मूर्तिकी तरह निश्चल भावसे बैठी ज्ञानदाकी ओर ही निबद्ध थी।

अनाथनाथने कहा—अब क्यों बैठे हो भैया, आओ, बाकी काम समाप्त कर दें।

चलिए। यह कहकर अतुल मानो दिनके चौथे पहरके स्वप्नसे जागकर उठ खड़ा हुआ।

इस समय सूर्य अस्ताचलपर पहुँच रहे थे। उस म्लान आलोकसे आलोकित घाटपर तोड़कर फेंकी गई दो चूड़ियोंपर दृष्टि जाते ही अतुल स्तब्ध होकर खड़ा हो गया। यह उसीकी दी हुई अति तुच्छ मूल्यवान् अलंकार थीं। सैकड़ों लाछनाएँ, हजारों धिक्कार सहकर भी ज्ञानदा इन दो चूड़ियोंकी मायासे मुक्त नहीं हो सकी थी। आज अपने ही हाथोंसे तोड़कर उसने अपनी सफाई दे दी है! तेजीके साथ पैर बढ़ाकर अतुलने उन्हें स्नेहसे उठा लिया। वे ही चूड़ियाँ जब समूची थीं, तब अतुल उनकी कोई मर्यादा नहीं रख सका। आज वे टुकड़े-टुकड़े हो गई थीं। काँचके बेकार टुकड़ोंके सिवा और कुछ न होनेपर भी अतुलके लिए वे महामूल्यवान् हो उठीं।

पीछेसे पैरोंकी आहट पाकर ज्ञानदाने मुँह फेरकर देखा। इस चितवनको अतुल सहन न कर सका। कदाचित् एक बार उसका हाथ पकड़नेके लिए भी वह लपका लेकिन अपनेको सँभालकर बोला—भूल सभीसे होती है ज्ञानदा, किन्तु—यह कहकर अतुलने जैसे ही मुट्ठी खोली वैसे ही सध्याकालकी रक्तवर्ण आभामें वे काँचके टुकड़े झक-झक करके चमक उठे। अतुल बोला—आज तुम जिन्हें तोड़कर फेंक आई, मैं उन्हींको श्मशानसे फिर इकट्ठा कर लाया हूँ।

बात ज्ञानदाकी समझमें नहीं आई, इसलिए उसने घोर शोकाच्छन्न उदास दृष्टि अतुलके मुँहपर डालकर आज बहुत दिनोंके बाद मृदु कंठसे पूछा—क्यों?

उत्तर देते समय अतुलकी दोनों आँखें आँसुओंसे परिपूर्ण हो उठीं। किन्तु अपनेको सँभालकर वह बोला—जानती हो, आज मझली मौसीकी चिताग्निमें एक वस्तु मैंने स्पष्ट देख पाई है कि जो टूटनेकी नहीं, उसे किसी भी तरह जबर्दस्ती तोड़ा नहीं जा सकता। जोर करके केवल काँचकी चूड़ियाँ ही तोड़ी जा सकती हैं, लेकिन हमारे बीच जो लेन-देन है, वह आज भी वैसा ही अटूट बना हुआ है, उसे तोड़नेकी शक्ति हम दोनोंमेंसे किसीमें भी नहीं है। जो करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है, उसे तुम भी नहीं कर सकोगी। इस बातको निश्चित रूपसे जान पाया हूँ, इसीलिए चूड़ियोंके इन टुकड़ोंको इकट्ठा करके हृदयसे लगाए घर जा रहा हूँ। ज्ञानदा चेतनाहीन-सी होकर अनिमेष दृष्टिसे देखती हुई खड़ी रह गई। अतुलने अकस्मात् अपने दोनों हाथोंको बढ़ाकर उसके शीर्ण दाहिने हाथको अपने हाथोंमें खींच लिया। लेकिन ज्ञानदा उसी तरह पत्थरकी मूर्त्ति-सी निश्चल खड़ी रही। क्षणभर निस्तब्ध भावसे खड़े रहनेके बाद आँसुओंसे रुँधे कण्ठसे अतुल बोला—

मेरे सारे पापोंके लिए कठोरसे कठोर दण्ड और कोई भी दे ले, पर तुम दण्ड देनेकी चेष्टा न करो। मैंने चाहे कितने भी अपराध क्यों न किए हों, मुझे तुम्हें फिरसे ग्रहण करना ही पड़ेगा। मेरा परित्याग करके मुझे दण्ड दो यह शक्ति तुममें कदापि नहीं है। इतनी देरके बाद ज्ञानदाने मस्तक झुका लिया। लेकिन मुँहसे कोई बात नहीं निकाली। केवल उसका दुर्बल और शीर्ण हाथ अतुलके हाथोंमें एक बार काँप उठा। कुछ क्षण दोनों निस्तब्ध रहे। अतुलने धीरे-धीरे ज्ञानदाका हाथ छोड़ दिया और कहा—घर चलो, वह सब दूर निकल गए हैं।

